॥ ओ३म् ॥

वनवासी सन्देश

वनवासी सांस्कृतिक समिति वेदव्यास, राउरकेला (उत्कल) का मासिक मुखपत्र
संस्थापक-स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

ओम यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसो।
भवन्। दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै
ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ अथर्व० १०-७-३४

भाव – परमेश्वर के विराट् शरीर का वेद ने कितना सुन्दर वर्णन किया हैं। वेद ने सरलता के साथ उपमा दी है। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में नाना प्रकार के भिन्न-भिन्न अङ्ग होते हैं। ये सारे अंग मिल कर शरीर कहलाता है। उसी प्रकार से उस विराट पुरुष ब्रह्म के विराट् शरीर का वर्णन है। वायु उस महान् प्रभु के श्वास प्रश्वास के समान कहा गया है। प्रकाश से भरी किरणमाला उस भगवान् के नेत्र के समान हैं। दिशाएं उस विराट् पुरुष के लिए ज्ञान के साधक हैं। इस प्रकार से यह सारा विशाल ब्रह्मांड उस सर्वव्यापक ब्रह्म का विराट् शरीर माना गया है। उसी को नमस्कार करो —स०

English—Our homage to the Great Lord who owns the windS as his inhaled and exhaled breath, COsmic Light as hls Eye and the Directions as His Ear (the Organ of knowledge from all around).

सम्पादकः- पं० श्री आत्मानन्द शास्त्री सह सम्पादकः- आचार्य विशिकेसन शास्त्री

— उद्देश्य —

१- वनवासी संस्कृति रक्षा ।

२- वनवासी शिक्षा ।

३. वनवासी समाज संगठन व उन्नति ।

विषय सूची

जुलाई १९७४

।। ओ३म ।।

वनवासी-सन्देश

उत्कल जनता संस्कृति रक्षा-बद्धकटिस्तमःस्ताम हतिवेश।
गुरुकुल सुपानपोषादुदियंति वनवासि सन्देशः । ।
यो भ्रष्ट खीष्टमत दीक्षित मज्ञलोकम्
संस्कृत्य दूरयति तद्धृदयान्धकारम् ।।
श्री वेदव्यास सुगुरोः कुल सन्निवेशः
सम्पूर्वदिरुदयते बनवासि संदेशः ।।

वर्ष ८	जुलाई १९७४	वार्षिक मूल्ल ५) रुपये
अंक ७	दयानन्दाब्द १४८	एक प्रति ५० पैसें

श्रुति-सुधा

नमस्ते अग्न ओजसे गृणान्ति देव कृष्टय: ।
अमैरमित्रमर्दय ।। १ ।। ११

ऋषि:—आयुंक्ष्वाहि:=कुटिलता को दूर करने वाला ।

(अग्ने देव) हे अग्नि-देव ! (ते ओजसे) तुझ ओज:स्वरूप को (कृष्टय:) (कर्म की) खेती कर मनुष्य (नम:) नमस्कार (गृणान्ति) करते हैं । (अमै:) शक्तियों [के प्रदान]से अमित्रम्) शत्रु (-भाव) को (अर्दय नष्ट कर दे । हे, हमें आगे ही आगे ले जाने वाली विश्व-याग की आग ! हमारे मानव जीवन में प्रकट हुई यज्ञ-भाव की प्रेरणा ! हमारे अंग २ में हो रहे जीवन-यज्ञ की संपादक अग्नि-देवता ! तेरा स्वरुप ओज है । तू अजेय शक्तिहै, अदम्य साहस है, अटल उत्साह है, धर्म-कर्म की दिव्य स्फूर्त्ति है । तुझे हम नमस्कार करते हैं, बार-बार नमस्कार करते है । तेरे चरणों में प्रस्तुत किया गया यह नमस्कार हमारी वाणी का ओज हो जाए ।

हमें कर्म की खेती करनी है। मानव जन्म का यही ध्येय है। मनुष्य किसान बनकर ही पृथिवी-तल पर आया है। सम्पूर्ण प्रकृति पृथिवी है-अन्न-पूर्णा शस्य-श्यामला, रत्नगर्भा पृथिवी। इसमें कर्म का हल चलाते जाओ। सद्भाव का बीज बोते जाओ और एक-एक के हजार२ बनाते जाओ, उठाते जाओ, कमाते जाओ। अच्छी भावना जो भी इस पृथिवी के तल पर बिखेरी जाएगी, सच्ची कामना जो भी इस आकाश की कोख में फेंकी जायगी-वह स्वयं सफलताओं के द्युलोक में जायगी और असंख्य समृद्धियों को साथ लिये लौट आएगी। यज्ञ की आग में डाली गई आहुति नष्ट नहीं हो सकती। आग उसे अपनी शक्ति प्रदान करती है। उसे मानो अपनी शक्ति की ज्वाला-सी बना लेती है। आहुति और फिर ज्वाला-सी। अग्नि में शक्ति थी, उसे आहुति का साधन मिल गया है। आहुति कोरा साधन थी, इसे सिद्ध कर देने वाला देवता मिल गया है। लंगडे का हाथ अकस्मात् लाठी पर जा पड़ा है। टांगों वाले अन्धे और आँखों वाले लँगड़े का मेल आश्चर्य-जनक हुआ है। देव को किसान के और किसान को देव के दर्शन हो गए हैं।

देवता के आशीर्वाद अकारथ जा रहे थे। किसान की कृषि-कामना सफलता को तरस रही थी। आज किसान का सिर देवताके चरणों में है और बीज धरती में देवता निहाल है कि उसकी शक्ति का उपयोग हुआ। किसान गद्‌गद् है कि उसका जन्म सुफल होने की संभवना निकल आई।

कर्म का शत्रु है आलस्य, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, अकर्मण्यता। सच तो यह है कि मनुष्य अपना मित्र भी आपि ही है और अपना अमित्र भी आप ही। खेती एक यज्ञ है। इसकी सिद्धि कृषकों के सहयोग से ही होती है। कोई अकेला कृषक एक क्यारी को भी तो नहीं पनपा सकता। जैसे विश्व में असंख्य देवता एक साथ हल चला रहे हैं, ऐसे ही मानव जीवन में। यज्ञ की मित्र मित्रता है और अमित्र अमित्रता। इसी अमित्र को — अमित्र-भाव को ही — बीच से हटाना है। जरा ध्यान से देखा जाये तो अमित्रता वास्तव में निर्बलता ही का दूसरा नाम है। वैर, विरोध, ईर्ष्या द्वेष — ये सब अशक्त मनुष्यों की विवशता के ही प्रकाश है। मैं प्रतियोगिता में सीधे रास्ते से आगे निकल नहीं सकता। प्रतियोगी से अनुचित स्पर्धा अर्थात् ईर्ष्या के रूप में द्वेष करने लगता हूं। किसी का भलाई से अपना बना नहीं सकता, बुराई से अपना बनाना चाहता हूं। यह सारी कमी ओज ही की है।

हे मेरे ओज:स्वरूप अग्नि-देव! तू शक्तियों का पुंज है। मुझे शक्ति प्रदान कर। मेरे हृदय में उत्साह की, साहस की स्फूर्ति की प्रतिमा बनकर आ। मैंने तुझे नमस्कार किया है। अपनी इन्द्रिय २ को सत्कर्म का हल बनाकर नमस्कार किया है। एक मुख की वाणी से नहीं, अंग-अंगका जीभ बनाकर नमस्कार किया है। हे मेरे ओज:स्वरूप देव! तू मेरे मन का, मेरी वाणी का, मेरी क्रिया का ओज बन जा। तेरी सहस्त्र-धार शक्ति मेरी नाड़ी २ में से यज्ञिय ज्वाला बनकर बह निकले।

अकर्मण्यता, असहकारिता, ईर्ष्या, शत्रुता—एक शब्द में अमित्रतानीरसत, निःस्नेहता— भस्मीभूत होकर नष्ट हो जाए। मेरी कर्म की खेती हरीभरी हो। यज्ञ ज्वाला-मुखी बनकर लहलहाये। ऋद्धि-सिद्धि के इस वसन्त में देवता का आशीर्वाद पा-पाकर लहलहाये। उसका झूम-झूमकर लहलहाना एक लम्बा नमस्कार हो जाए।

दर्शनों (शास्त्रों) में अविरोध:-

धर्मदेव मनीषी गुरुकुल कालवा

महर्षि दयानन्द जी महाराज, सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में दर्शनों (शस्त्रों) में अविरोध है, यह स्पष्ट लिखा है। उसको यहाँ उद्धृत करते हैं — "परन्तु विरोध उनको कहते है कि एक कार्य में एक ही विषय पर विरुद्धवाद होवे। छः शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार है। मीमंसामें ऐसा कोई कार्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्म चेष्टा "न की जाय। वैशेषिक में (समय न लगे बिना बने ही नहीं) न्यायमें 'उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता,। योगमें 'विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय तो नहीं बन सकता,। सांख्य मे 'तत्त्वोंका मेल न होने से नहीं बन सकता,। और वेदान्तमें 'बनानेवाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके,। इस लिये सृष्टि छः कारणो से बनती है। उन छः कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में हैं। इसलिये उसमें विरोध कुछ भी नहीं,,। इस सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द जी ने स्पष्ट दर्शनों में अविरोध माना है। मैंने महर्षि के इन वाक्यों को और अधिक स्पष्ट रुप दर्शाने के लिये यह संग्रह किया है इस सग्रह में -वेद ईश्वरीय ज्ञान ईश्वर, कर्म-फल प्रदाता, पुनर्जन्म, संसार धर्म- अधर्म पांच महाभूत, मोक्षके साधन, मन-अणु, ईश्वर, जीव, प्रकृति इत्यादि विषयों पर अति सक्षेप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आशा है इस सग्रह से पाठकगण लाभउठायेंगे।

गच्छत:स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादत:।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जना:।

1 वेद ईश्वरीय ज्ञान

वेदान्त दर्शन—

"शास्त्रयोनि त्वात्, १। १ । ३॥

(शास्त्रयोनित्वात) वेद = शास्त्र का कारण होने से = पाया जाता है कि सब जगत् के स्थूल सूक्ष्म पदार्थों का, तथा सब विद्याओं के बीजरु। भण्डार वेद शास्त्र का कर्ता वा प्रकाशक ब्रह्म है।

"अत एव च नित्यत्वम्,, १। ३। २९॥

(अत:) इससे (एव) ही (नित्यत्वम) नित्यता है। नित्यता का अर्थ यहां अखण्डनीयता है। प्रत्यक्षानुमानादि प्रमाण सब, शब्द प्रमाण के सहायक है, अत एव वह खडिण्त नहीं हो सकता।

प्रश्न — तो क्या वेद प्रलय में रहते हैं वे तो प्रति सृष्टि के आरम्भ में नये सिरे से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर — "समान नाम रुपत्वाच्चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च ॥,, १। ३। ३०॥

(समान नामरुपत्वात) एक से नाम और रुप होने से [आवृत्तौ] बार २ आवृत्ति में [अपि] भी [अविरोध:] विरोध नहीं [च] और [स्मृते:] स्मृति के [दर्शनात्] देखने से भी।

स्मृत्यादि ग्रन्थों में भी और वेदों में भी देखा जाता है कि प्रलय के पश्चात् प्रत्येक सृष्टि की आवृत्ति में वेद और जगत् पूर्व सृष्टि के समान नाम और रुप वाला होता है। इस सृष्टि में जैसा वेद का शब्द अर्थ और संबंध देखा जाता है, वैसा पूर्व सृष्टि में था तथा जगत के सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, पर्वत, नदी समुद्रादि भी

पूर्व सृष्टि के समान ही होते हैं।

वैशेषिक दर्शन—

"तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्,, १। १ ३।।

[तद्वचनात्] उस वेद प्रकाश ऋषि=परमात्मा के उपदिष्ट होने से [आम्नायस्य] वेद भगवान् का [प्रामाण्यम्] स्वतः प्रामाण्य है।

क्योंकि वेदादि शास्त्र धर्म का वर्णन करते हैं। इस कारण लोक उसको प्रमाण मानता है। यदि वेदादि शास्त्रमें अभ्युदय और मोक्षके साधन धर्म का वर्णन न होता तो लोक उसको निरर्थक जानकरप्रमाण न करता, परन्तु वेदादि शास्त्रमें धर्म का निरूपण है और धर्म मनुष्य के ऐहिक आमुष्मिक कल्याण का साधन है, इस लिये लोक वेदादि शास्त्रमें प्रामाण्यबुद्धि रखता है और रखनी चाहिये भी।

न्याय दर्शन—

"मन्त्रायुर्वेद प्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्त प्रामाण्यात्,, २।१ ६९।।

मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवत् च] और वेद का मन्त्र भाग तथा आयुर्वेद के प्रमाण होने के समान भी, [तत्प्रामाण्यम्] उस सम्पूर्ण वेद शब्दमें प्रमाणता है, [आप्तप्रामाण्यात्] वेदवक्ता पुरुषके प्रमाण होने से।

जिस प्रकार विष, भूतप्रेतादि बाधा इत्यादि उपद्रवों को दूर करने वाले मन्त्रविशेषों का पाठ करने से उक्त उपद्रव दूर हो जाते हैं, अतः इन मन्त्रों को सभी प्राणी प्रमाण मानते हैं तथा आयुर्वेद=वैद्यकशास्त्र में कही हुई अमुक औषधि करने से यह रोग दूर हो जायेगा ऐसावैद्य से सुन कर औषधि का निदान के अनुसार सेवनकरने से वह रोग निवृत हो जाता है, इस कारण आयुर्वेद शास्त्र भी प्रमाण माना जाता।है अतः जिस प्रकार मन्त्र तथा आयुर्वेद ईश्वर धन्वन्तरि आदि आप्तपुरुषों से निर्मित होने के कारण प्रमाण है उसी प्रकार संपूर्ण वेद शब्द भी ईश्वररुप आप्त पुरुषके द्वारा निर्मित होने के कारण प्रमाण है यह सिद्ध होता है।

इस सूत्र में सूत्रकार ने संपूर्ण वेदवचन, प्रमाण हैं ईश्वररुप विशेषवक्ता कथित होनेके कारण मन्त्र तथा आयुर्वेद वाक्यके समान, ऐसे अन्य भी अनुमान का प्रयोग सूचित किया है।

योग दर्शन—

"सः एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्,, २।६।।

[सः] वह पूर्वोक्त ईश्वर पूर्वजों का भी गुरु है काल से उसका बाध न होने के कारण, सूत्र में पूर्व शब्द से अभिप्राय अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा महर्षियों का है। सृष्टि के आदि में जिनके हृदयों में ईश्वर वेदों का प्रकाश करता है, पूर्वज शब्द सबसे प्रथम जन्म होने के कारण उनके लिये आता है।

सांख्य दर्शन—

"यस्मिन्नदृष्टेऽपिकृत बुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम्,, ५।५०

[यस्मिन् अदृष्टे-अपि] जिस अदृष्ट वस्तु में भी [कृत बुद्धिः] पुरुष कृतत्वबुद्धि-पुरुष द्वारा की गई है ऐसी बुद्धि-पुरुष का कार्य होने की बुद्धि [उपजायते] निश्चित हो जावे-उपपन्न हो जावे [तत्पौरुषेयम] वह पुरुषकृत जानना चाहिये वैसे वेद नहीं हैं वे प्रादुर्भूत हुयेज्ञान दृष्टिसे नित्य हैं। अत—

"निज शक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ५।५१

[निजशक्त्यभिव्यक्तेः] वेदों के कर्तृत्व के अभावमें मनुष्यकृत होने न पर निजशक्ति से—शाश्वती स्वाभाविक शक्ति से अभिव्यक्त होने प्रादुर्भूत होने से। जैसा कहा है "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः,, शतपथ १४। ५। ८। १०॥ इस महान् परमात्मा के निश्वास की भांति स्वाभाविक रूपमें प्रकट हुये ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद हैं। "स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च "श्वेता० ६। ८॥ परमात्मा की ज्ञान किया स्वाभाविकी है। अतः वेदों का [स्वतः प्रामाण्यम्] स्वतः प्रमाणत्व है।

मीमांसा दर्शन-

"नित्यस्तु स्याद् दर्शनस्य परार्थत्वात,, १। १। २८

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेदनित्यत्व विषय में महर्षि दयानन्द जी इस सूत्र पर लिखते हैं।—"शब्द में जो अनित्य होने की शंका आती है, उसका 'तु' शब्द से निवारण किया है। शब्द नित्य ही है, अर्थात् नाश रहित हैं क्योंकि उच्चारण क्रिया से जो शब्द का श्रवण होता है सो अर्थ के जनानेही के लिये है, इससे शब्द अनित्य नहीं हो सकता,, जो शब्द का उच्चारण किया जाता है उसकी प्रत्यभिज्ञा होती है कि श्रोत्र द्वारा ज्ञानके बीच में वही शब्द स्थिर रहता है, फिर उसी शब्द से अर्थ की प्रतीति होती है। जो शब्द अनित्य होता तो अर्थ का ज्ञान कौन कराता क्योंकि वह शब्द ही नहीं रहा, फिर अर्थ को कौन जनावे। और जैसे अनेक देशों में अनेक पुरुष एक काल में ही एक गो शब्द का उच्चारण करते है, इसी प्रकार उसी शब्द का उच्चारण बारम्बार भी होता है, इस कारण से भी शब्द नित्य है। जो शब्द अनित्य होता तो यह व्यवस्था कभी नहीं बन सकती। सो जैमिनि मुनि ने इस प्रकार के अनेक हेतुओं से पूर्वमीमांसा शास्त्रमें शब्द को नित्य सिद्ध किया है।,,

इसी प्रकरण में महर्षि दयानन्द जी ने वेद ईश्वरीय ज्ञान है यह मन्त्र द्वारा प्रस्तुत किया है, वह यहां लिखा जाता है—

"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ यजु० ४०। ८॥

(सपर्यगात्) यह मन्त्र ईश्वर और उसके किये वेदों का प्रकाश"करता है, कि जो परमेश्वर सर्वव्यापक आदि विशेषण युक्त हैं सो सब जगत् में परिपूर्ण हो रहा है, उसकी व्याप्ति से एक परमाणु भी रहित नहीं है। सो ब्रह्म (शुक्रम्) सब जगत् का रचने वाला और अनन्त विद्यादि बलसे युक्त हैं, (अकायम्) जो सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों के संयोग से रहित है अर्थात् वह कभी जन्म नहीं लेता, (अव्रणम्) जिसमें एक परमाणु भी छिद्र नहीं कर सकता इसी से वह छेद रहित है (अस्नाविरम्) वह नाडियों के बन्धन से अलग है, जैसा वायु और रुधिर नाडियों में बंधा रहता है, ऐसा बन्धन परमेश्वर में नहीं होता, (शुद्धम्) जो अविद्या अज्ञानादि क्लेश और सब दोषों से पृथक् है (अपापविद्धम्) सो ईश्वर पापयुक्त वा पाप करने वाला कभी नहीं होता, क्योंकि वह स्वभाव से ही धर्मात्मा है (कविः) जो सबका जानने वाला है, (मनीषी) जो सबका अन्तर्यामी है, और भूत भविष्यत् तथा वर्त्तमान इनतीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जानता है (परिभूः) जो सबके ऊपर विराजमान हो रहा है, (स्वयम्भूः] जो कभी उत्पन्न नहीं होता और उसका कारण भी कोई नहीं, किन्तु वही सबका कारण अनादि और अनन्त है, इससे वही सबका माता पिता है, और अपने ही सत्य सामर्थ्य से सदा वर्तमान रहता है, इत्यादि लक्षणों से युक्त जो सच्चिदानन्द स्वरुप परमेश्वर है, [शाश्वतीभ्यः समाभ्यः] उसने सृष्टि की आदि में अपनी प्रजा को जो कि उसके सामर्थ्य में सदासेवर्त्तमान है उसके सब सुखों के लिये [अर्थान् व्यदधात्] सत्य अर्थों का उपदेश किया है। इसी प्रकार जब जब परमेश्वर सृष्टि को रचता है, तब तब प्रजाके हित के लिये सृष्टि की आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है, और जब जब सृष्टि का प्रलय होता है तब तब वेद उसके ज्ञान में सदाबने रहते हैं॥,,

इस प्रकार दर्शन कारों तथा वेदों का ऐक्यमत है।

वेद मन्त्रों को अपने जीवन की निधि बनाइये

(ले०—वेदप्रकाश वेदालंकार)

भारतीय वर्तमान आध्यात्मिक वटवृक्ष का मूल वेद हैं। अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं में विविध विचारों के पत्र-पुष्पों को लेकर यह फैला हुआ है। इसमें संयोगवश कुछ कलमें भी कालक्रम से लग गई है जिन्होंने इस के रूप एवं आकार को एक अद्भुत सा ढांचा दे दिया है।

इसमें हम वेदान्ती, द्वैतवादी अद्वैतवादी मूर्तिपूजक, शैव वैष्णव आदि सभी को टंका हुआ देखते हैं।

जैन बौद्ध चार्वाक आदि कुछ ऐसे भी वर्ग इस विशाल वट वृक्ष में लगे हुए हैं जो अपने को अवैदिक कहते हैं। मुसलमान और ईसाई जैसे वर्ग भी है जो इन विशाल वट वृक्ष की छाया में बैठे हुए हैं और अपना सम्बन्ध विदेशों से जोड़ते हैं।

वेदों से सम्बन्ध अनिवार्य

पर, जबतक हम अपने को भारतीय कहते और मानते हैं, जबतक हम भारतभूमि की मिट्टी हवा और पानी से अपना सम्वन्ध जोड़ते हैं, जबतक यहां के पर्वतों, नदियों और यहां के समुद्रों में समाया हुआ प्राण हमारी चेतना में बहता है तब तक क्या हम में से कोई भी भारतीय अपना सम्बन्ध उस मूल धारा से विच्छेद कर सकता है जो कि यहाँ के कण कण में सबसे पहले प्रविष्ट हुई और अब भी जो यहां यथा पूर्व कहीं ऊपर, कहीं नीचे कहीं अतिनीचे स्पन्दन कर रही है। भारत की भूमि में कोई भी अध्यात्म विचार-धारा जब तक भारतीय आध्यात्मिक वट वृक्ष के मूल से सम्बन्धित न हो वह भारतीय होकर रह ही नहीं सकती। वेद भारतीय आध्यात्मिक वट वृक्ष के मूल है अतः उससे अपना सम्बन्ध जोड़ना प्रत्येक आध्यात्मिक वर्ग के लिये भारत में जरूरी है। भारत के तीर्थों का भारत की नदियों का, भारत के पर्वतों का भारत के समुद्रों का, भारत के रीति रिवाजों का अर्थ हम तब तक नहीं समझ सकते जबतक कि हम अपना सम्बन्ध इनमें स्पन्दमान प्राणों से न जोड़ें। भारतीय आध्यात्मिक वट वृक्ष को अपना रूप देने के लिये भी हमें इसके मूल को समझना होगा और इसकी प्राणधारा को अनुभव करना होगा। अपने को अपनी अपनी साम्प्रदायिक कोठरियों में बन्द रखकर हम यदि परस्पर आलोचना में लगे रहेंगे तो कभी भी हम उस आध्यात्मिक एकता में अपने को नहीं पिरो सकेंगे जिसकी प्रत्येक समझदार व्यक्ति भारत में इच्छा करता हैं एवं जिसे प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक जगत में चाहता है।

वेदमन्त्रों का महत्व

भारतीय आध्यात्मिक वट वृक्ष के जो सदस्य वेदों में श्रद्धा रखते हैं उन्हें वेदों की व्याख्याओं के वनो में न भटक कर वैदिक मन्त्रों से अपनी आत्मा को स्पन्दित करना चाहिये। व्याख्यायें तो मन्त्रों के आत्मा में स्पन्दित होने पर स्वयं झंकृत होने लगेगी। हम व्याख्याओं को पढ़े उनमें प्रवेश करें उनकी सहायता लें पर वैदिक मन्त्रों को न छोड़ें। आज यदि वे परस्पर एक मत नहीं है तो कल हो सकते हैं। जब मूल

एक है तो उसका फैलाव कैसे एकता से विमुक्त हो सकता है । दूर दूर शाखाओं पर बैठे वेदों में श्रद्धावान् व्यक्ति जब अपने मूल को एक स्वर से गायेंगे तो अवश्य ही वे उस एकता के स्वर से गुंजरित होंगे ।

भारतीय आध्यात्मिक वट वृक्ष के जो सदस्य वेदों में श्रद्धा नहीं रखते हैं उन्हें भी वैदिक मन्त्रों को पढ़ना चाहिये । वैदिक व्याख्याओं के आधार पर ही उन्हें अपनी विमत बुद्धि नहीं बनानी चाहिये । इसका एक लाभ यह भी उन्हें होगा कि वे अपनी पृथकता को जब तक कायम रखना चाहते हैं रख सकते हैं तथापि वे उस सूत्र से बन्धे रहेंगे जो कि भारत भूमि में सर्वत्र व्याप्त हैं । चार्वाक, बौद्ध जैनी व अन्य वर्ग जो भारतभूमि में ही जन्मे है उनका वेदों से रिश्तेदारी का सम्बन्ध है । ईसाइयों और मुसलमानों का सम्बन्ध रिश्तेदारी का नहीं है वे विदेशी वर्ग माने जाते हैं । पर भारतीय आध्यात्मिक वट वृक्ष का अंग एक आध्यात्मिक छत्र छाया के बन्धन से बंधने पर ही हो सकते हैं, और यह बन्धन भारतभूमि में उन्हें स्वीकार ही करना चाहिये

मानसिक एकात्मकता के लिये वेद जरुरी

आज भारत में जब मानसिक एकात्मता के लिये हम और हमारे नेता व्याकुल हैं, वेदों से सम्बन्ध प्रत्येक भारतीय के लिये परम आवश्यक है । हम वेदों के समर्थक बनें या बिरोधी, पर हमे उनका अपनी मानसिक भित्ति पर स्थान अवश्य देना होगा । यह भी, वेदों के गलत भाष्यों को सही मानकर उनका विरोधी भी नहीं बनना होगा । वेदों का सही अर्थ सुनना समझना और जानना हमे चाहिए ।

भारत भूमि की ख्याति का वर्णन करते हुए यह यहाँ के लोगों में, यहां के रिबाजों में, यहाँ के प्राकृतिक दृश्यों में यहां की ऐतिहासिक घटनाओं में गर्व अनुभव करते है पर कैसे हम उस विराट एवं व्याप्त संदेश को स्वीकार नहीं करना चाहते जो वेदों के रूप में हमारे सम्मुख संकलित है । हमारी यही असमर्थता उस सूत्र को हमारी पकड़ में नहीं आने देती जो कि भारतीयता में आदि से अन्त तक पिरोया हुआ है ।

वेद सुन्दर हैं ? गम्भीर हैं

वेदों में सुन्दर शिक्षायें और गम्भीर विषयों का वर्णन है ।

प्रभु के अनेक नाम हैं

ओ३म् तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म, ता आपः स प्रजापतिः ।। य० ३२ ।

वह प्रभु अग्नि हैं, वह सूर्य हैं, वह चन्द्रमा हैं, वह शुक्र हैं, वह आप हैं, वह प्रजापति हैं ।

जन्मदाता प्रभु हैं

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां
मनामहे चारु देवस्य नाम
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्
पितरं च दृशेयं मातरं च ।।
।। ऋ० य० १ । सू० २४ । म०

प्रभु को मुक्तिदाताओं में हम प्रथम मानते हैं । वह हमें पृथ्वी को एवं सूर्य का पुनः देता है जिससे हम माता पिता को देख सकें ।

आत्मा इन्द्रियों से प्रभावित

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः

सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्सरित्

पाँच इन्द्रियां नदीवत् अपने-अपने संस्कार प्रवाह को आत्मा को पहुंचाती है और आत्मा इन संस्कारों से प्रभावित होकर कार्य करता है।

मैं सत्य वादी बनूं

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि
तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैं॥

हे प्रभु मैं असत्य को छोड़कर सत्य का व्रत अपनाना चाहता हूं। मेरा व्रत सफल हो। मैं उसे पूर्ण कर सकूं।

मुझे तीन-सात का बल दे

ये त्रिषप्ताः परियन्ति
विश्वारूपाणि बिभ्रतः
वाचस्पतिर्बला तेषां
तन्वो अद्य दधातु मे।

प्रभु मुझे सत्वरजतम तीन और उनकी विकृति महत्तत्त्व, अहकार और पचतन्त्र मात्रायें हैं उनका बल दे।

शत्रुओं को नीचा दिखा

वि न इन्द्र मृधो जहि।
नीचा यच्छ पृतन्यतः।
अधम गमया तमो।
ये अस्मां अभिदासति॥

हे राजन्! हमें मारने वालों को विशेष रुप से मार। हमारे शत्रुओं को नीचा दिखा। जो हमें दास बनाने का प्रयत्न करें उनको गहन अंधकार में डाल।

परिवार

इहैव स्त मा वियोष्टं
विश्वमायुर्व्यश्नुतम्
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभि
र्मोदमानौ स्वे दमे।

तुम दोनों(पति-पत्नी) यहाँ रहो अलग मत होओ। सम्पूर्ण आयु का भोग करो। घर में पुत्र और नातियों के साथ खेलो और आनन्द मनाओ।

इसी प्रकार वेदों के मन्त्र-मन्त्र में सुन्दर २ संदेश एवं गम्भीर विचार समाविष्ट है।

महर्षि दयानन्द के भाव

महर्षि दयानन्द ने जब भारत के आध्यात्मिक वट बृक्ष का अध्ययन किया तब उन्होंने वेदों के इस मूलत्व एवं श्रेष्ठता की ओर ही ध्यान आकर्षित किया था। सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्दश समुल्लास के अन्त में महर्षि ने भारतीय आध्यात्मिक वट बृक्ष के सदस्यों में परस्पर संकीर्णता की ओर ध्यान आकर्षित किया और उसको दूर करने का उपाय भी बताया। हम यहां वह प्रश्नोत्तर देते हैं—

(प्रश्न) देखो हमारा मत कैसा अच्छा है कि जिसमें सब प्रकार का सुख और अन्त में मुक्ति होती है।

(उत्तर) ऐसे ही सब मतवाले अपने बारे में कहते हैं कि हमारा ही मत अच्छा है बाकी सब बुरे, बिना हमारे मत के दूसरे मत में मुक्ति नहीं हो सकती। अब हम तुम्हारी बात को सच्ची मानें या उनकी?

हमतो यही मानते हैं कि सत्य भाषण, अहिंसा दया आदि शुभ गुण सब मतों में अच्छे हैं बाकी वाद-विवाद, ईर्ष्या-द्वेष, मिथ्या भाषणादि कर्म सब मतों में

...रे है ।

यदि तुमको सत्य मत ग्रहण की इच्छा हो तो वैदिक मत को ग्रहण करो ।

आर्य बन्धुओं का कर्त्तव्य

आर्य-बन्धुओं, का जो कि अपने को महर्षि के उपदेशों का पालक कहते हैं, यह सर्वप्रथम कर्तव्य हो जाता है कि वेदों के मन्त्रों को अपने जीवन की निधि बनायें । इसकी सुन्दरता का परिचय अन्य व्यक्तियों को करायें, जो वेदों के प्रति श्रद्धावान् हैं, पर इनके यथार्थ अर्थ नहीं करते हैं और जो वेदों के प्रति श्रद्धावान् नहीं हैं ।

आर्यसमाज का मुख्य ध्येय मन्त्रों का प्रचार है । इससे आर्य भाई भारतीय आध्यात्मिक बटवृक्ष में उस एकात्मता का सुलभ कर सकेंगे जो कि इससमय परमावश्यक है ।

भूतकाल में द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी लोग हुआ करते थे । आजकल हम कम से कम शतमन्त्री, सहस्त्रमन्त्री आदि ही बनने का प्रयास करें ।

।। आर्य जगत ।।

महर्षि दयानन्द उच्च विद्यालय का उद्घाटन

फुलवाणी जिला के सब से पिछड़ा हुआ इलाका बालीगुड़ा तहसील के घनघोर जंगल नुआंगा पंचायत समिति के अन्तर्गत दारिंगबाडी गांव में दि० १७ । ७ । ७४ को महिष दयानन्द उच्च इराजी बिद्यालय की स्थापना हुई । यह स्थान चारों ओर पहाड़, पर्वतों से घिरा हुआ है । जाने का कोई मार्ग या गातायात की कोई सुविधा नहीं है । अतः पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ८ मील पैदल चल कर इस विद्यालय का उदघाटन किये । स्वामीजी महाराज को ईसाई और हिन्दू [आर्य] जनता हजारों संख्या में उपस्थित होकर स्वागत किये । स्वामीजी महाराजने इस विद्यालय के संचालनार्थ रु० ५०१—०० [पांच सौ एक रुपया] प्रदान किये और साथ ही इस इलाका के दीन हीन गरीब आदिवासी जनता के लिये १०१ वस्त्र प्रदान किये । इत्यवसर पर निकटवर्त्ती गाँव में स्वामी श्रद्धानन्द माध्यमिक विद्यालय की भी स्थापना हुई ।

ब्रह्मपुर में ग्रामपंचायत और आदिवासी ग्राम मंगल विभाग मंत्री के साथ दि १८ । ७ । ७४को वहां के परिस्थिति के सम्पर्क में आलोचना कर कें समस्त विषयवस्तु से अवगत कराये । दि १९ । ७ । ७४ को आदिवासी ग्राममंगल मंत्री श्री युत रामचन्द्र उल्का को साथ लेकर बालीगुड़ा आदिवासी वहुल क्षेत्र में दौरा किये । पिछले वर्ष स्थापित दयानन्द उच्च इंराजी विद्यालय पावुरिया [जि० उदयगिरि] को देखकर मंत्री महोदय अत्यंत प्रसन्न हुए । जहां पर सरकार के तरफ से कोई स्कूल नहीं है, वहां पर स्कूल खोलने के लिये मंत्री महोदयने स्वामीजी महाराज को अनुरोध किये एवं सरकार तरफ से जो सम्भव हो वह सहायता देने केलिये पूर्ण आश्वासन दिये हैं । तदर्थ हम "वनवासी संदेश" परिवार के ओर से मंत्री महोदय को धन्यवाद ज्ञापन करते हैं ।

श्रीवत्स गोरक्षाश्रम का स्वर्ण जयन्ती

जब समस्त आर्य जगत् में आर्यसमाज शतवार्षिक शताब्दी पालन बड़े उल्लास के साथ पालन हो रहा है। इसी अवसर पर उड़ीसा में सर्व प्रथम वैदिक मिशनरी, आर्यप्रचारक, गंजाम जिला के प्रथम ग्रजुएट, रेजिष्ट्रार, उग्र संस्कारवादी, कुसंस्कार, कुरीति निवारक श्रीवत्स पंडा जी के द्वारा स्थापित श्रीवत्स गोरक्षाश्रम का स्वर्ण जयन्ती भी अक्टूबर १ तारिख १९७४ से अक्टूवर ३ तक बडे हर्ष एवं उल्लास के साथ पालन किया जा रहा है।

श्रद्धेय श्रीयुत पंडा जी ने तत्कालीन आर्य समाजी विद्वान श्रीयुत राम शंकर राय जी के सम्पर्क में आये एवं उग्रराष्ट्रवादी, स्वदेशप्रेमी महान क्रान्तिकारी पंजाब केशरी लाला लाजपत राय द्वारा लिखित The Arya Samaj तथा युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित क्रान्तिकारी महान आर्ष ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश,, पढ़कर आर्य समाजी बन गये एवं आजीवन सच्चे ऋषिभक्त बनकर अपने शरीर के तिल तिल ऋषि के मिशन के लिये जला ड़ाले। पूज्य पंड़ा जी ने महर्षि द्वारा लिखित "गोकरुणा निधि,, पुस्तक पढ़कर गोसंबर्धन के लिये १९२३ में श्री वत्स गोरक्षाश्रम ना[म] से १० एकड़ जमीन पर एक संस्था स्थापना कर [के] "सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा,, नाम से रेजिष्ट्[री] करके १९२८ में गोशाला विधिवत् रुप से स्थापि[त] किया। ओड़ीसा में वैदिक धर्म प्रचारार्थ २९२८ [में] महर्षि प्रणीत "सत्यार्थ प्रकाश,, का ओड़िया भाषा [में] अनुवाद करके प्रकाशित किया एवं उत्कलीय जनता के अन्दर नवचेतना जाग्रत कराने के लिये "आर्य,, और संस्कारक नामक पत्रिका प्रकाशन किया। उड़ीसा में सर्व प्रथम भजनगर में आर्य समाज मन्दिर स्थापना किये एवं स्थान-स्थान पर वेद विद्यालय, आर्य मन्दिर स्थापना किये।

आज इसी स्थान पर पंड़ा जी के शतवार्षिक उत्सव पर १९७२ में कन्या-गुरुकुल की स्थापना हुई एवं यह गुरुकुल दिन दुगुनी रात चोगुनी उन्नती के शिखर पर है। इस समय, स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती महाराज ट्रष्टी हैं। स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती महाराज ने निश्चय कर लिये हैं कि १ अक्टूवर से ३ अक्टूवर १९७४ तक श्रीवत्स गोरक्षाश्रम तनरड़ा का स्वर्ण जायन्ती उत्सव बडे समारोह के साथ पालन किया जायगा। जिसमें देशके वरेण्य नेतृवर्ग तथा आर्य वैदिक साधु संन्यासियों को निमन्त्रण किया गया है।

मानव-धर्म

वेद धर्म नहीं है। वेद तो सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद में धर्म नहीं है, सत्य है। वेद का पढ़ना पढ़ाना धर्म नहीं है, तदनुसार आचरण करना धर्म हैं।

मनुष्य का धर्म न वेद है न जन्दावस्था, न उपनिषद है न गीता, न धम्मपद है न बाइबिल, न पुराण है न कुरान, कोई भी पुस्तक मनुष्य का धर्म नहीं हो सकती। पुस्तक केवल सत्य विद्याओं की पुस्तक हो सकती है।

वेद में धर्म नहीं है, सत्य है, निभ्रम और निर्भ्रान्ति दिव्य सत्य। किसी भी ग्रन्थ में सत्य हो सकता है, धर्म नहीं।

सत्य जब तक पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने का विषय रहता है, तबतक वह सत्य है। सत्य जब जीनव में धारण किया जाता है, आचरण में लाया जाता है, तब वह धर्म बनता है। तभी तो कहा है, 'सत्यं वद, धर्मं चर—सत्य बोल, धर्माचरण कर''।

पठित और वदित सत्य जब आचरण में आता है, तब ही वह धर्म होता है। वदित सत्य जब जीवन में धारित होता है, तब ही वह धर्म कहाता है। धारित सत्य धर्म है। अधारित सत्य अधर्म है

वेद में धर्म नहीं है, ज्ञान है, निर्भ्रान्ति निभ्रंम दिव्य ज्ञान। वेद का अर्थ धर्म नहीं है, ज्ञान है, ज्ञान दिव्य ज्ञान। अन्य ग्रन्थों में भी ज्ञान होसकता है, धर्म नहीं।

ज्ञान जब तक पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने का विषय रहता है, तब तक वह ज्ञान है। आचारण में आने पर वह धर्म बनता है। धारित ज्ञान धर्म है। अधारित ज्ञान अधर्म।

तो क्या सत्याचरण और ज्ञानाधार मनुष्य का धर्म है? मनुष्य का धर्म है मनुष्यता विशुद्ध मानवता। सत्याचरण और ज्ञानाचर मानव धर्म का एक अंग है। पूर्ण मानवता ही मानव का धर्म है।

कोई किसी पुस्तक को अपना धर्म बताता है तो कोई किसी संस्था को। कोई नहीं कहता कि मैं मानव हूं और मानवता मेरा धर्म है। यह कैसी विडम्बना है।

मानव धर्म न पुस्तक में है न संस्था में न आश्रम में है न विहार में, न मन्दिर में है, न मठ में, न चर्च में है न मस्जिद में। मानव धम हो सकता है तो केवल मानव-जीवन में।

मानव धर्म का मन्दिर मानव-मानव का जीवन ही है। मानव धर्म धर्मस्थल मानव जीवन के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है।

"मानवता ही मानव का धर्म है

और

मानव जीवन ही मानव धर्म का महा मन्दिर है,,।

प्रार्थना की उपयोगिता

सार्वदेशिक, सितम्बर, १९६४ में छपे श्री नारायण स्वामी के लेख से उद्धृत

(१) जो लोग यह कहते हैं कि कर्मानुसार ही फल मिलता है तो प्रार्थना क्यों करें ? उनको समझना चाहिये कि प्रार्थना भी एक कर्म है, उसका फल भी अवश्य मिलेगा। प्रार्थना शुद्ध भावानुसार होनी चाहिए।

(२) प्रार्थना से मनुष्य में निरभिमानिता आती है अंग्रेजी में कहावत है 'Pride hath a fall')।

३—प्रार्थी जिस वस्तु की प्रार्थना करता है, ईश्वर देता है जब कि प्रार्थना उसे समीप से सुनाए अर्थात् हृदय-मन्दिर से क्योंकि वहां परमात्मा और आत्मा दोनों मौजूद हैं। प्रार्थना में किसी दूसरे के अनिष्ट की भावना नहीं होनी चाहिए।

४—जिस वस्तु की हम प्रार्थना करते हैं उसकी प्राप्ति के लिए हमें पहले स्वयं पूरा प्रयत्नशील होकर ही प्रार्थना करनी चाहिये। उदाहरणार्थ जैसे एक छोटा बच्चा भूख लगने पर अपनी माता की ओर रेंगता चला जाता है जो कुछ दूरी पर खड़ी है। बच्चा उसकी टांगपकड़ लेता है और जबाने हालसे कहता कि माता ! मेरा प्रयत्न अब खतम हो गया। अब तू ही दयावान् होकर मुझे उठा और दूध पिला। तब माता फौरन ही प्यार से स्तन उसके मुख मे देकर उसे दूध से तृप्त कर देती है।

५—मनुष्य की इच्छा-शक्ति उसके अन्त: करण की एक वृत्ति है, जो अन्त: करण के अनुकूल काम करने से पुष्ट हुआ करती है। प्राथना विज्ञान बतलाता है कि प्रार्थना अन्त: करण के अनुकूल काम है। अत: स्पष्ट है कि प्रार्थना से इच्छा-शक्ति का विकास और पुष्टि हुआ करती है और इच्छा शक्ति विकास से मनुष्य की इच्छा पूरी हुआ करती है। यह आजकल का सर्वतन्त्र वैज्ञानिक सिद्धान्त है।

धर्म सहायक बिचार

एक एव सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति य: ।

शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ।। मनु०

सबका परम मित्र एक धर्म ही है जो मरणोपरान्त भी साथ जाता है। संसार के अन्य सब पदार्थ शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं।

महाभारत शान्तिपर्व ३०४।४

अर्थ—मनुष्य अधर्म के पाश को काटकर धर्म में प्रवृत्त होता है और किसी के दबाव से डरते हुए नहीं, अपितु अपनी श्रद्धा से प्रेरित हो एवं कर्त्तव्य-भावना से सात्त्विक दान देता है, तब अपने जीवन को सफल करता है।

महाभारत वनपर्व २०७।६७

ज्ञान का सार सत्य, सत्य का सार आत्मसंयम और आत्मसंयम का सार त्याग है।

४—कोई बाहरी शक्ति मानव को नीचे नहीं ले जा सकती। मानव को गिराने वाला मानव स्वयं ही है-गांधी जी।

५—श्री स्वामी सत्यानन्द जी आर्यसमाज के छठे नियम की व्याख्या में लिखते हैं—आर्य धर्मी वाणी की कठोरता, कटुता, अक्खड़पन, अपवाद और कुवचनादि दोषों से बचे। उसके कर्म कोमल और विनययुक्त हों।

उनमें अवज्ञा, निरादर, अपमान, तिरस्कार और तर्जनादि लाञ्छन न लगने पाएं।

६—एक महात्मा कहते हैं कि प्रातःकाल शान्ति, आनन्द, भक्ति भलाई इन चार चीजों को अपने अन्दर धारण करने का विचार करो। क्रोध से शान्ति, चिंता से आनन्द, अभिमान से भक्ति और लालच से भलाई नष्ट हो जाती है। सायंकाल देखो कि आप इन अवगुणों में फंसे तो नहीं।

७· निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

अर्थ—नीतिज्ञ चाहे निन्दा करें चाहे स्तुति करें, लक्ष्मी आए चाहे जाए, मौत आज आती हो तो आज आ जाए और सौ वर्ष बाद आती हो तो तब आए, धैर्यशाली पुरुष न्याय-पथ से एक पग भी विचलित नहीं होते।

८ - जाहि प्रसंग दूषण लगे तजिये ताको साथ।
मदिरा माने है जगत दधि कलालन हाथ॥
९·सन्त समागम हरि कथा तुलसी दुलभ दोय।
सुत दारा और लक्ष्मी पापी गृह भी हय॥

तीन स्मरणीय बातें (विश्व ज्योति अप्रैल,, 1968)

१ तीन के लिए लड़ो	आजादी	ईमान	इन्साफ
२ तीन के लिए मर मिटो	धर्म	देश	मित्र
३ तीन से अच्छा व्यवहार करो	नौकर	गरीब	वृद्ध
४ तीन के लिए तैयार रहो	दुःख	मृत्यु	विपत्ति
५ तीन बातें मत भूलो	उपकार	उपदेश	उदारता
६ तीन का मजाक मत करो	अंगहीन	विधवा	अनाथ
७ तीन से बचे रहो	द्वेष	घमण्ड	आडम्बर
८ तीन को नित्य प्रणाम तथा उनकी सेवा करो	माता	पिता	गुरु
९ तीन भाव रखो	प्रेम	ममता	धैर्य
१० तीन को वश में रखो	मन	इन्द्रियाँ	क्रोध

चित्तौड के स्नातक का शुभ परिणय संस्कार

विगत ९ जुलाई को श्री आर्य गुरुकुल महाविद्यालय चित्तौड़ के स्नातक "श्री पं० बलदेव जी वेदवागीश के शुभ पाणिग्रहण संस्कार उत्कल प्रान्त, नरहरिपुर ग्राम, कटक जिला निवासी श्रीमान् पं० गणनाथ पाणीग्राही जी की सुपुत्री "सौ० अहल्या जी से" पूर्ण वैदिक रीति से सुसम्पन्न हुआ। इस शुभकार्य में गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास राउरकेला-४ के श्री प० देवव्रत जी" ने पौरोहित्य पदको समलकृत किया था, साथही "श्रीगुरुकुल चितौड से श्री चन्द्रदेव जी" B.com ने भी अपना अमूल्य समय दिया था। इस पूर्ण वैदिक पद्धति से विवाह संस्कार को देखकर उपस्थित बजुर्गों एव प्रधानाध्यापकों, संस्कृत पण्डितों और अन्य बुद्धि जीवियों ने मुक्त कण्ठ से प्रंशसा की।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥

(मनुष्य को चाहिए कि वह सत्य बोले, प्रिय बोले, कड़वे-सत्य को न बोले, या असत्य प्रिय मीठे लगने वाले झूठ को भी न बोले । यही सनातन धर्म है ।)

— मनुस्मृति

।। ओ३म् ।।

वनवासी सन्देश

वनवासी सांस्कृतिक समिति वेदव्यास, राउरकेला (उत्कल) का मासिक मुखपत्र
संस्थापक-स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

वैदिक कालीन राज धर्म

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्याद्राष्ट्री विशं घातुकः।
विशमेव राष्ट्रयायां करोति यस्माद्राष्ट्री विशमन्ति
न पुष्ट पशुं मन्यत ॥ इति ॥

शतपथ का० काण्ड १३ प्र० २, ब्रा० ३।

भावार्थ:—अगर राजा और राजवर्ग प्रजा से स्वतन्त्र हों, निरकुंश रुप में तानाशाहों की तरह व्यवहार करें तो राज्य में अन्धाधुन्ध घुसकर प्रजा का नाश कर देंगे। अतः मनमर्जी से शासन करने वाला शासक उन्मत्त पशु के समान राष्ट्र का घातक होता है

सम्पादकः-
पं० श्री आत्मानन्द शास्त्री

सह सम्पादक:-
पं० श्री देशबन्धु विद्यावाचस्पति

— उद्देश्य —

१- वनवासी संस्कृति रक्षा ।

२- वनवासी शिक्षा ।

३- वनवासी समाज संगठन व उन्नति ।

विषय सूची

अगस्त १९७४

॥ ओ३म् ॥

वनवासी-सन्देश

उत्कल जनता संस्कृति रक्षा-वद्धकटिस्तमःस्तोम हृतिवेश।
गुरुकुल सुपानपोषादुदियंति वनवासि सन्देशः । ।

यो भ्रष्ट ख्रीष्टमत दीक्षित मज्ञलोकम्
संस्कृत्य दूरयति तद्धृदयान्धकारम् ।
श्री वेदव्यास सुगुरोः कुल सन्निवेशः
सम्पूर्वादिरुदयते वनवासि संदेशः ॥

वर्ष ८	अगस्त १९७४	वार्षिक मूल्य ५) रुपये
अंक ८	दयानन्दाब्द १४८	एक प्रति ५० पैसे

श्रुति-सुधा

आहुति-रूप अग्नि

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥
ऋषिः—भरद्वाजः=यज्ञशील ।

(समिद्धः) खूब प्रज्वलित हुई (शुक्रः) चमक रही आहुतः। [विश्व-याग की आग में] आहुति बन कर पड़ी [अग्निः] मेरी -जीवन-अग्नि [द्रविणस्युः] मेरा धन-धान्य धरा देने के लिए [विपन्यया]-विशेष विशेष, विविध-विविध स्तुतियों से [वृत्राणि] इस यज्ञ के आवरक—अवरोधक भावों को (जङ्घनत) नष्ट-भ्रष्ट कर दे।

व्यक्तियों के जीवन यज्ञ का रूप तभी धारण करते हैं जब वे विश्व-याग की आग में आहुति बनाकर डाल दिये जाएँ। व्यष्टि, समष्टि का अंग होती है। छोटे-छोटे यज्ञ विशाल यज्ञ के अवयव हैं। इसी अनुभूति से व्यक्तियों के जीवन में तेज आता है। वे चमकने लगते हैं। जीवन-अग्नि भड़कती तभी है जब उसका संबंध विश्व-याग

की आग से हो। चिनगारी आग में पड़ी जलती रहती है। आग से अलग कर दी गई, शीघ्र बुझ जाती है। यही अवस्था हमारे वैयक्तिक जीवन की है। यह छोटी-सी आग ब्रह्माण्ड की महान् आग शाकल्य बनकर ही जल सकती है। शाकल्य आग में पड़कर स्वयं ज्वाला बन जाता है।

मेरी जीवाग्नि भूखी है। उसे अन्न चाहिये। (खाद्य) द्रव्य चाहिए। वह मेरे तन को, मन को, धन को धरा लेना चाहती है। मेरा सर्वस्व इस जीवनाग्नि का ग्रास-रूप है। तो क्या मैं यह ग्रास इस भूखी आग के मुख में डाल दूँ ? मेरे जीवन की सफलता तभी होगी जब मैं अपने शरीर की आहुति परिश्रम की वेदी पर दे, दूँगा। मेरी ज्ञानाग्नि तभी चमक उठेगी जब मैं अपने मन को अध्ययन तथा ध्यान की तपस्या से बचाऊँगा नहीं—उसे भट्टी में डाल दूँगा। धन को जोखिम में डालूँगा, तभी तो वह बढ़ेगा। ये सब कार्य साहस के हैं, उत्साह के। साहस आग है, उत्साह अग्नि है, यज्ञ है। इन यज्ञों पर वृत्रों ने घेरा डाल रखा है। यह बात आज की नहीं, यज्ञ के रास्ते में राक्षसों ने हमेशा विघ्न उपस्थित किये हैं। साहस तथा उत्साह के मार्ग में आलस्य विघ्न है। वह वृत्र-रूप है। हमें ज्ञानोपार्जन में संकोच होता है, अनुचित लज्जा की अनुभूति होती है। अपना अज्ञान कैसे प्रकट करें ? गुरु-जनों के सम्मुख भी अपनी अल्पज्ञता का प्रकाश करते झिझक होती है। अपने सहपाठियों से ईर्ष्या का व्यवहार कर हम उनके साथ वास्तविक सह-पाठ नहीं करते। यह सब ज्ञान-यज्ञ के वृत्र हैं। क्षत्रिय का वृत युद्ध का तथा मृत्यु का डर है। वैश्य के लिए घाटे का भ वृत्र है। इन भावों के विपरीत निर्भयता, उत्साह आदि— ये सब भाव अग्नि के विविध रूप हैं। ये उन वृत्रों का समूल नाश कर देते हैं।

संकुचित दृष्टि हमें अपने जीवन को विश्व के यज्ञ का अंग बनाने से रोकती है। हमारा घर-बार, हमारे वैयक्तिक स्वार्थ, धन-लोभ, जन–लोभ, यशो-लोभ हमारे आत्मोत्सर्ग के रास्ते में बाधक हैं। इन वृत्रों का उपाय है—यज्ञाग्नि का अधिक प्रज्वलित होना। उनकी ज्वालाओं में वह तेज हो कि उसे देखते ही सभी प्रलोभन, सभी भय तथा संकोच भस्म होकर रह जाएँ। यदि वृत्र अपनी मनोमोहक माया का प्रसार करता है तो अग्नि की भी एक सुन्दर मनोहारी दिव्य माया है। उसका रूप है—अन्तरात्मा की प्रेरणा। हमारे हृदय में बैठा कोई सत्कार्य की स्तुति-सी बखानता रहता है। चुपके-चुपके शाबाशी देता रहता है। परिश्रम का तपस्या का, ज्ञानोपार्जन का, लोकोपकार का, अपनी जीवनाग्नि को विश्व याग की आहुति बना डालने का अलौकिक श्रेय हमारी आँखों के सामने लाता रहता है, लाता रहता है। अपने आत्म-त्याग का फल हमने आज न भी पाया तो क्या हुआ ? कभी तो इस सुकृत का फल मिलेगा ही। हमें न मिला, हमारे पड़ोसियों को, देश भाइयों को, मानव सहोदरों को, आज की न सही, कल की पीढ़ी को मिल कर रहेगा। हमें इसका दृष्ट नहीं तो अदृष्ट फल अवश्य प्राप्त होगा। इस लोक में नहीं ता पर लोक में। किसी न किसी जन्म में हम सफल हो कर रहेंगे। कोई भी सत्कार्य करते हुए यह धीमी-धीमी गुञ्जार हमारे हृदय की तंत्री से हमेशा उठती है। इस गुञ्जार की उठानेवाली शक्ति प्रज्वलित—समिद्ध —यज्ञाग्नि ही है। यह अग्नि जितनी अधिक तेज होगी, उसकी प्रेरणा में – आत्मोत्सर्ग के इस महिमा गान में – उत्ता

ही अधिक बल होगा । विश्व-याग की उसकी स्तुति विशेष प्रभाव रखती हैं । उसके यज्ञ-भाव के गौरव-गीत के अनेक प्रकार हैं । कभी घर की आने के नाम पर, कभी कुल की शान के नाम पर, कभी पूर्वजों की बान के नाम पर, कभी पुंस्त्व मर्दानगी की कसम दे देकर, कभी वीरता का वास्ता डाल-डाल कर यज्ञ की आग हमारी संपूर्ण विभूति झट धरा ही तो लेती है । उसकी "विपश्या" में—अनेक प्रकार के स्तुति-स्तोमों में—एक जादू है । धन हर लेने का जादू है । आत्मोत्सर्ग के रास्ते को घेर कर खड़े हो जाने वाली वृत्र-भावनाओं को नष्ट भ्रष्ट कर देने का जादू है ।

हे मेरे जीवन की आग ! भड़क, भड़क ! आत्मोत्सर्ग के तेज से जाज्वल्यमान हो-होकर, विश्व-याग की एक उज्ज्वल ज्वाला सी बनती जा, बनती जा ! विश्व याग के पवित्र स्तोत्र मेरे हृदय के कानों में डाल डाल कर मेरा सर्वस्व इस आग के लिए धराती जा, धराती जा । इस अपने लालग रहे स्तोत्र की लपट में संपूर्ण हिचकिचाहटों, संपूर्ण संकोचों, भीरुताओं, लज्जाओं, राग—द्वेष लोभ-मोह, मत्सरादि रिपुसे-नाओं को राख की मुट्ठी बन-बना कर गिराती जागिराती जा । हे मेरी जीवनाग्नि ! तू विश्व-याग की आहुति बन ।

×

उड़ीसा के स्वास्थ्य मन्त्री जी का गुरुकुल वैदिक आश्रम में

शुभागमन

दिनांक २२—८—१९७४ को उड़ीसा के स्वास्थ्य मन्त्री श्रीमान् माननीय सोमनाथ जी रथ गुरुकुल में पधारे थे । गुरुकुल के सुन्दर एव शान्ति पूर्ण वाता वरण को देखकर उन्हों ने हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की एवं निम्नलिखित विचार दिये हैं ।

" मैं इस अनुष्ठान को परिदर्शन करके विशेष आनन्दित हुआ हूं । पूज्यस्वामी ब्रह्मानन्द जी के कार्यों को मैं पहले से ही जानता हूं । समाजों में निम्नस्तर के जो लोग हैं, उनकी उन्नति एव शिक्षा के लिये स्वामी जी का अवदान चीरस्मरणीय रहेगा । इस अनुष्ठान के सभी छोटे बड़े ब्रह्मचारी केवल संस्कृत में श्लोक आदि की आवृत्ति ही नहीं करते अपितु संस्कृत में बार्तालाप करने में भी सक्षम हैं । यह अतीव आनन्द की बात है । मैं सदैव इस अनुष्ठान की उन्नति की कामना करता हूं ।

हस्ताक्षर
सोमनाथ रथ
स्वास्थ्य एवं नगर उन्नयन मन्त्री
उत्कल सरकार
२२—८—१९७४

।। निराकार की उपासना ।।

शान्ति स्वरूप गुप्त

मनुष्य चिंतनशील प्राणी है। इस नित्य परिवर्त्तनशील-नाशवान अनित्य जगत् के मूल में जो एक अपरिवर्त्तनशील अविनाशी, नित्य सत्य है उसका अन्वेषण वह सृष्टि के आदि काल से करता आया है। इस तत्व का साक्षात्कार करने की अभिलाषा मानव मात्र का जन्म जात स्वभाव है। अतः प्रत्येक काल-प्रत्येक देश एवं प्रत्येक धर्म ने अपने-अपने ढंग से साक्षात्कार करने का प्रयास किया है। मनुष्य विश्व की विविधता एवं उसका सौंदर्य देखकर चमत्कृत होता है, एवं सौंदर्य के मूल में जो निहित तत्व है उसके जानने की जिज्ञासा करता है, चिन्तन करता है—प्रयोग करता है। एवं देश, काल, पात्र के अनुसार परिर्वतित नहीं होने वाले इस सत्य का अन्वेषण करता है। यह तत्व कार्य कारण से परे, पुण्य, पाप, सुख दुःखादि द्वन्द्वों से परे, अखण्ड अद्वय, एवं स्वयं भूः है। चर्म चक्षुओं से अदर्शनीय, नित्य पूर्ण है। बुद्धि से ग्राह्य है। अतः असम्प्रज्ञात समाधि में योगियों ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है।

अब प्रश्न उठता है कि इस अखण्ड, एक रस द्वन्दातीत तत्व से यह सादि, सान्त, द्वन्दात्मक सृष्टि किस प्रकार उत्पन्न हुई।

तदैक्षन बहुः स्यां प्रजाये येति। सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजाये येति। सत्व रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः (सांख्य) तैत्तिरीयोपनिषद।

परमात्मा ने इच्छा की कि बहुत हो जाऊँ—और यह सृष्टि हो गई। सृष्टिके प्रारम्भ में यह तत्व निश्चेष्ट था। परमात्मा की इच्छा से त्रिगुणात्मक प्रकृति-सत, रज, तम में गति उत्पन्न हुई। एव पंच भूतात्मक सृष्टि की उत्पत्ति हुई। यह परमात्म तत्व अचर से चर में, चर से चेतन में, चेतन से जीव में, जीव से बुद्धियुक्त मनुष्य में, बुद्धियुक्त से सत्व गुण प्रधान मनुष्यों में अधिक दृष्टिगोचर हुआ। अतः सत्व गुण प्रधान मनुष्य ही इस आत्म तत्व को साक्षात्कार करने में सफली भूत हो सकते हैं।

इसके विपरीत भौतिक सुखवादी न इस सत्य का अनुसंधान करने में सफल हुए हैं और न हो सकेंगे। भौतिक सुखवादी भौतिक सुखों के पहाड़ तो खड़े करने में समर्थ हो सकते हैं—लेकिन कामिनी, काञ्चन के प्रलोभन में फंसकर काम क्रोधादि विकारों के कारण जन्म, मृत्यु चक्र में घूमते रहकर दुःख भोगते रहते हैं। ये न शाश्वत सुख की प्राप्ति कर सकते है, और न नित्यानन्द प्राप्ति में हेतु बन सकते हैं।

इस शाश्वत सुख प्राप्त्यर्थ हमारे ऋषि मुनियों ने भौतिक सुखों को हेय समझकर उनका परित्याग किया, एवं हृदय गह्वर में प्रवेश कर चित्त में उठने वाली प्रत्येक वृत्ति का निरीक्षण एवं परीक्षण किया एवं जाना कि—

बाह्य स्पर्शेस्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत् सुखम्।
गी० ५। २१

अर्थात् इन्द्रियों के विषयों में अनासक्त पुरुष ही उस शाश्वत सुख का अधिकारी हो सकता है।

मनुष्य के हृदय में जन्माजन्म के नाना प्रकार के संस्कार एकत्रित है। उन्हीं के कारण नाना प्रकार की कामना, वासनाएं चित्त में उठती रहती है एवं उन्हीं संस्कारों के वशीभूत हुआ जीव नाना प्रकार के पाप कर्मों में प्रवृत्त होता है। अतः इन्हीं चित्तवृत्तियों का

निरोध करना योग है।

" योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। "

अतः चित्त में उठने वाली वृत्तियों को उनके मूल स्थान में ही रोक दीजिये। वृत्ति नहीं होगी तो इच्छा भी नहीं होगी। कामना का जब विषयों के साथ संस्पर्श होता है तो मन चञ्चल होता है। अतः इन वृत्तियों को एक ही केन्द्र बिन्दु पर स्थित कर दीजिये। मन स्वयं वश में आ जायगा।

इस योग को आठ अंगों में विभक्त किया है।

१ यम-अहिंसा, सत्य, आस्तेय, इन्दिय परिनिग्रहाः यमाः।
२ नियम- शौच, संतोष, तपः स्वाध्याय-ईश्वर प्रणिधानानि नियमाः।
३ आसन
४ प्राणायाम
५ प्रत्याहार
६ धारणा
७ ध्यान
८ समाधि।

इन आठों को चार भाग में विभक्त किया है।

१ समाधि पाद
२ साधन ,,
३ विभूति ,,
४ कैवल्य ,,

यमः

अहिंसा : के अभ्यास से निर्वैरता एवं विश्वप्रेम उत्पन्न होता है।

सत्य : ईश्वर का प्रतीक है इसके पालन से ही साक्षात्कार संभव है।

अस्तेय : पराये धन का सर्वथा त्याग, तथा वैध उपायों द्वारा जो कुछ प्राप्त हो उसी से जीवनयापन करना।

ब्रह्मचर्य : मन, बचन तथा कर्म से शुद्धता एवं स्त्री का त्याग।

अपरिग्रह : लोभ से सर्वथा मुक्ति। संग्रह का त्याग। दूसरों पर भार न होना।

नियम :

शौच : आन्तर तथा बाह्य। स्नानादि द्वारा बाह्य एवं कामना-वासना एवं असद् विचारों से मनको रिक्त करना! जप कीर्त्तन, प्रार्थना द्वारा मन को पवित्र करना।

संतोष : सद साधनों द्वारा जोकुछ प्राप्त हो जाय उसी में सतुष्टि। इससे सुख शांति की प्राप्ति होती है। साधना को बल प्राप्त होता है।

तप : सर्दी, गरमी, अपमान, कटुवचन, हानि, क्षुधा तृषा, आदि में मन का संतुलन रखना। मन एवं इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखना।

स्वाध्याय : सद्ग्रन्थों का सतत पठन पाठन मनको सद विचारों की ओर प्रेरित करता है—तथा उन्नति की ओर अग्रसर करता है।

ईश्वरप्रणिधान : शुद्ध हृदय एवं निर्मल चित्त से परमात्मा के चरणों अहंकार का अर्पण कर ईश्वर के शरणागत होना। कर्त्तापन के अभिमान से सर्वथा मुक्ति। "इदन्नमम" की भावना को जीवन में क्रियात्मक रूप देना।

आसन : इसके अभ्यास द्वारा शरीरनिरोग एवं स्वस्थ्य हो जाता है। मन शान्त एवं प्रचुर शक्ति, बलवीर्य की प्राप्ति होती है। एवं बिना शारीरिक श्रान्ति के साधना करना संभव होता है।

ध्यान के लिये उपयुक्त पद्मासन, सिद्धासन हैं। बंध तथा मुद्रा भी आसन में सहायक होते हैं।

प्राणायाम : प्राण के रहस्य का ज्ञान। इसके साधन द्वारा मन की चञ्चलता नष्ट होकर एकाग्रता प्राप्त होती है। साधारण चेतना का अतिक्रमण कर योगी अति चैतन्यावस्था प्राप्त करता

है। प्राण स्पंदन पर नियन्त्रण के द्वारा तत्वों का साक्षात्कार एवं ज्ञान की प्राप्ति करता है। चित्त की वृत्तियाँ नियंत्रित हो जाती हैं एवं मन तथा शरीर पर अधिकार हो जाता है। एव आत्मा की अपरोक्षानुभूति होकर मनुष्य अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

प्रत्याहार : इन्द्रियों को उसके विषयों से पृथक् कर लेना है। विषयों की ओर प्रवृत्ति इन्द्रियों का स्वाभाविक गुण है अत: जब तक मन रूप, रस गध, शब्द और स्पर्श के चक्कर में उलझा रहता है। बहिर्मुखी रहता है-अत: इसको इन विषयों से पृथक् कर अन्तर्मुखी किये बिना इसका अन्तरात्मा में विलीन होना संभव नहीं। प्रथम योग के चार अंगों द्वारा शरीर एवं नाड़ियाँ शुद्ध होती है अत: वास्तविक योग का प्रारम्भ प्रात्यहार से ही होता हैं।

धारणा : अन्तर अथवा बाह्य किसी एक केन्द्र बिन्दु पर मनको स्थित करना धारणा है। इस प्रकार मनके अनुशासित होने पर मन अन्तर्मुखी होकर आत्मा की ओर स्थित होने लगता है।

ध्यान : दो प्रकार का है सगुण एवं निर्गुण। प्रारम्भ में साधक भौतिक वस्तुओं पर मन को केन्द्रीभूत करता है। इसके पश्चात् साधक मनको अपनी आत्मा में ही स्थित करता है। सगुण के पश्चात् निर्गुण ध्यान सरल हो जाता है।

समाधि : यही ध्यान जब ध्येय के साथ विलीन होने लगता है तो समाधि में परिवर्तित हो जाता है। ध्याता और ध्येय एकता अनुभव करने लगते हैं। मन दिव्य चक्षु बन जाता है। साधक बाह्य चेतना शून्य हो जाता है। एक अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति होने लगती है। वह दिव्य मानव होकर परमात्मा के स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसीलिये गीता में भगवानने अर्जुन को योगी होने का उपदेश दिया है।

तपस्विभ्योधिकोयोगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोधिक
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्याद्योगी भवार्जुन।

—उपर्युक्त सारे साधन इस मन को वशीभूत कर एक केन्द्रबिन्दु पर स्थापित करने में सहायक होते हैं।

"समदु:खसुखधीरं-सोऽमृतत्वायकल्पते"
गी० २।५

अत: द्वन्दों पर विजय प्राप्त करने वाला साधक ही इस अमृतत्व का अधिकारी हो सकता है। अत: इस सत्य प्राप्ति का आधारभूत मन है जो अन्त:करण में प्रविष्ट होकर इस सत्य का साक्षात्कार करता है। मनुष्य का मन एक अखण्ड शक्ति है जो तीन भागोंमें विभक्त हैं—(१) बुद्धि (२) भावना (३) स्फूर्ति।

बुद्धि : तर्क प्रधान है। ज्ञात से अज्ञात वस्तु का तर्क द्वारा ज्ञान प्राप्त करना। भावना श्रद्धा प्रधान है। ज्ञात अथवा श्रुत आप्त वचनों पर श्रद्धा सहित विश्वास करना।

स्फूर्ति : विवेक प्रधान है। मन की सूक्ष्म भाई षता। इसके द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान की उपलब्धि होती है। एवं यही स्फूर्त्ति सत्य के साक्षात्कार की आधारशिला है। साक्षात्कारी के लिये देश काल-पात्र का कोई बन्धन नहीं हैं। समय-समय पर विशाल मानव कुल की प्रत्येक शाखा में साक्षात्कारियों का प्रादुर्भाव हुआ है।

पञ्चभूतात्मक देह नाशवान है। मन प्राण का खेल हैं। कर्म शक्ति का इसमें अपना क्या है। इस तत्व की अनभिज्ञता के कारण ही मनुष्य अपने स्वरूप से अपरिचित रहता है। इस तत्व से अनभिजबद्ध एवं भिज्ञ मनुष्य मुक्त है। अनभिज्ञता कें कारण मनुष्य अपने को देहमान करता है। इसके सुख दु:ख सें-दु:खी सुखी होता रहता है, इस कारण आत्मविस्मृति रहती है। इसी अविद्या के बवण्डर के कारण ज्ञान की ज्योति डगमगाने लगती है। कामना, वासना,

आकांक्षाओं की वृद्धि होने लगती है-लोकैषण। वित्तैषणा के वशीभूत होकर मनुष्य नाना प्रकार के पापों का अर्जन करता है। इसी अविद्या के कारण दुःख की परम्परा प्रारम्भ होती है। देहवान के कारण ही मनुष्य शारीरिक सुखों की आकांक्षा करता है एवं वैध अवैध सभी उपायों द्वारा उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है। यही दुःख प्राप्ति का मूलभूत कारण है। गीता में अर्जुन के प्रश्न करने पर इसी तत्व का उपदेश भगवान ने दशवें अध्याय के केवल मात्र चार श्लोकों में किया हैः —

> अहं सर्वस्य प्रभवो, मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते
> इति मत्वा भजन्ते मां, बुधा भाव समन्विताः।
> मच्चित्ता मद्गतप्राणा, बोधयन्तः परस्परम
> कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।
> तेषां सतत युक्तानां, भजतां प्रीति पूर्वकम्
> ददामि बुद्धि योगं तं, येन मामुपयान्ति ते।
> तेषा मेवानुकम्पार्थं महमज्ञानजं तमः
> नाशयाम्यात्मभावस्थो, ज्ञानदीपेन भास्वता।

प्रथम श्लोक में भगवान कहते हैं अर्जुन ! साधारणतया मनुष्य परमात्म तत्व से सर्वथा अनभिज्ञ है। लेकिन जिस प्रकार घट को देखकर उसके निमित्त एवं उपादान कारण मृत्तिका एवं कुम्भकार का अनुमान हो जाता है उसी प्रकार इस विशाल सृष्टि की विविध विचित्रताओं को अवलोकन कर उसके उत्पत्तिकर्त्ता एवं नियामक का भी अनुमान कर लेता है। प्रारम्भ में इसका ज्ञान नगण्य के बराबर होता है। इसीलिये भगवान कहते हैं कि प्रारम्भ में 'इति मत्वा''—केवल मात्र ऐसा मानकर कि इस दृश्यमान जगत् का उत्पत्तिकर्त्ता परमेश्वर है एवं इसी प्रेरणा से विश्व के सब पदार्थ चेतना प्राप्त कर अपने-अपने कार्य में रत हैं। कोई भी पदार्थ स्वयं सर्वतन्त्र रूप से चेष्टा करने में अशक्य है। सूर्य चन्द्रमा में आकाश गंगा स्थित लाखों मील लम्बे चौड़े विस्तृत ग्रह अबाध गति से एक परिधि के भीतर गतिशील हैं लेकिन कभी उन्मार्गगामी नहीं हुए और न होंगे। वायु निरन्तर प्रवाहित होती रहती है स्वेदज, अण्डज, जरायुज उद्भिज चारों प्रकार की सृष्टि एक नियमबद्ध रूप से जन्म लेकर मृत्यु को प्राप्त होती रहती है। आवागमन का यह चक्र निरन्तर परन्तु नियमबद्ध रूपसे चलता रहता है और समस्त प्राणी एक कठोर शासन के अन्तर्गत अपने कृत कर्मों का फल भोगते रहते हैं। ऐसी सृष्टि का कोई कर्त्ता अवश्यमेव है ऐसा मानकर चलने से दूसरी स्थिति आती है।

अब दूसरे श्लोक में साक्षात्कार का उपाय भगवान बताते है। हे अर्जुन किसी भी वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिये भगवान् प्रदत्त तीन साधन मनुष्य के पास हैं। चक्षु-श्रोत्र एव स्पर्शेन्द्रिय। प्रकाश में भौतिक चक्षुओं द्वारा, अन्धकार में कानों द्वारा श्रवण की अथवा स्पर्शेन्द्रिय द्वारा स्पर्श कर मनुष्य प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता है। परमात्म तत्व इन किन्हीं भी साधनों द्वारा प्रत्यक्ष करना सभव नहीं है। अतः भगवान कहते हैं यह ज्ञान " बुद्धि द्वारा ग्राह्य मतीन्द्रिय " —

बुद्धि द्वारा ग्राह्य है-इन्द्रियों द्वारा कदापि नहीं।

अब और क्या साधन हमारे पास उपलब्ध हैं। स्वप्नावस्था में हम देखते हैं कि इन्द्रियां ज्ञान शून्य हो जाती हैं और अपने प्रेमक मन से उनका सबन्ध विच्छेद हो जाता है फिर भी मन की शक्ति से इन्द्रियों के सभी व्यापार सम्पादित रहते हैं। इसमें मन की एक सहायक शक्ति और है 'प्राण'। ये दोनों शक्तियां मिलकर अंतःकरण में एक विराट सृष्टि की रचना कर लेती हैं। इसीलिये भगवान् कहते हैं कि "मच्चित्ता मद्गतप्राणा,, —अर्थात इन प्राणों और मन का परमात्मा में लीन कर दो। अर्जुन कहता है भगवान यह मन—

> चञ्चलं हि मनः कृष्ण, प्रमाथी बलवद्दृढम्
> तस्याऽहं निग्रह मन्ये, वायोरिव सुदुस्करम्।

वायु से भी अधिक बलवान है—ऐसे मनको वशी

भून कर तुम्हारे में लगा देना क्या बच्चों का खेल है। तों भगवान् कहते हैं—अभ्यासेन तु कौंतेय । अभ्यास द्वारा ही शनैः शनैः यह संभव है।

अतः चित्त की वृत्तियों कों निरोध किये बिना मन की चञ्चलता दूर होकर स्थिरता नहीं आती तो हठयोग प्रदीपिका में लिखा है:—

"चले वाते चलं चित्तं, निश्चले निश्चलं भवेत् ।,,

अर्थात् प्राणों के चञ्चल रहने से मन चञ्चल रहता है। अतः मन की चञ्चलता का निराकरण करने के हेतु प्राणो का नियमन आवश्यक है।

"मारुते मध्य संचारे, मनः स्थैर्यं प्रजायते,,
(हठयोग प्र०)

अर्थात् प्राण मध्य संचारी होने से चित्त की स्थिरता प्राप्त होती है—

"मारुतं धारयेद्यस्तु समुक्तो नाम संशयः ।
(हठयोग)

चित की स्थिरता प्राप्ति के पश्चात् साधक निश्चित् रूप से जन्म मरण के बन्धन से रहित हो जाता है। मनकी स्थिरता के लिये एक और भी उपाय है:—

'यथात्मनः प्राणगतिः स्वभावान्
अंतर्बहिश्चापि भवेत् सुशान्तः
तथैव सेऽयं सुनिरीक्षणीया
नयोजनीया न निरोधनीया। "

अर्थात् प्राणों की स्वाभाविक गति का निरीक्षण करते रहने से मनुष्य का बाह्य एवं अन्तर दोनों सुशान्त हो जाते हैं। नहीं केन्द्रीभूत करने की आवश्यकता है न निरोध की। उपयुक्त प्राकृतिक उपाय से मन स्वयं शान्त होकर समाधिस्थ हो जाता है।

ध्यान के लिये किसी ध्येय की आवश्यकता होती है अतः भगवान् कहते है—मच्चित्ता-मद्गत प्राणः साक्षात्कार के एकमात्र साधन इस प्राण तथा मनको परमात्मा में लीन कर दो। लीन किये बिना मन की स्थिरता नहीं, कभी स्थिरता बिना मन पर अधिकार नहीं होता, मन पर अधिकार हुए बिना शक्ति की प्राप्ति संभव नहीं, शक्ति के अभाव में कल्पना की सिद्धि संभव नहीं, सिद्धि के बिना मन अशुभ से शुभ की ओर अग्रसर नहीं होता। अतः लीन करने का उपाय बताते हुए भगवान् कहते हैं—"कथयन्तश्च मानियत्म्,, अर्थात् सतत परमात्मा का ही उपासना करो, उसी का ध्यान करो उसी का जप एवं चिन्तन करो—उसीका कीर्त्तन, उसीकी वार्ता करो, उसीका स्वाध्याय करो, उसी की कथा हो, उसी के बारे में बोलो, उसी के बारे में सुनो। सारांश यह कि तुम्हारा सारा कार्यकलाप उसीके निमित्त हो।

" यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्
यत् तपस्यसि कौंतेय तत् कुरुस्व मदर्पणम्।"

अर्थात् मनुष्य जो खाता है, जो यज्ञ करता है, जो दान देता है, जो तपस्या करता है और जो जो भी कर्म करता है सबको भगवान् के चरणों में अर्पण कर दे।

इस प्रकार कर्म करने से फल प्राप्ति की आकांक्षा मिट जाती है। कर्म सर्वभूत हिते रता होकर निष्काम होने लगते हैं जीवन ईश्वर को समर्पित होने लगता है। अहंकार का भाव सर्वथा मिट जाता है। मैं मेरे का भाव पृथक् होकर सब कुछ तेरा ही है—यह भावना दृढ़ से दृढ़तर होती चली जाती है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में भी मैत्रेयी की जिज्ञासा के उत्तर में महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी बताया था कि—

" आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निद्धियासितव्यः आत्मनो वा अरे । दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेद सर्वविदितम् । " (बृ० २-४ ५)

मैत्रेयी परमात्मा का साक्षात्कार संभव है। प्रथम उसके बारे में सुनो, स्वाध्याय कर ज्ञान प्राप्त करो, पश्चात् पढ़े हुए का मनन करो, ध्यान करो, चिन्तन करो, स्मरण करो, जप करो, उसके पश्चात् निदिध्यासन द्वारा उसके यथेष्ट ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी।

मनको परमात्मा में लीन करने का एक और सहज उपाय मुसलमान भक्त शिरोमणि रसखान ने भी वताया है—

रसखान गोविन्दहिं यूं भजिये, जिमि नागरिको चित गागरमें''

अर्थात् जिस प्रकार पनिहारी जल से पूर्ण पात्र को सर पर विना किसी आधार के रखकर, हँसती बोलती चलती रहती है लेकिन मनमें निरंतर घड़े का ध्यान बना रहने से घड़ा सर पर स्थित रहता है, नीचे नहीं गिरता, इसी प्रकार मनुष्य भी यदि योगारूढ होकर संसार के समस्त कार्यों में रत रह कर भी उसका सतत चिन्तन करता रहता है। वह मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ—

धर्म—अर्थात् कर्त्तव्यपालन

अर्थ-सम्यक् उपायों द्वारा धर्मानुकूल अर्थ प्राप्ति

काम—सम्यक् कामोपभोग

मोक्ष—आवागमन के बन्धनों से मुक्ति।

प्राप्त करने में सतत प्रयत्नशील रहे। एतदर्थ आवश्यक है कि मनुष्य ईश्वर प्रदत्त सभी योग्य पदार्थों का केवल मात्र स्वयं उपभोग नकर शेष को उसी की दी हुई वस्तु समझकर उसी की प्रजा के निमित्त व्यय कर दे उसके चरणों में समर्पित करता रहे। लोकसेवार्थ व्यय करना ही समर्पण है। जो मनुष्य इसके विपरीत भगवत् प्रदत्त भोगों का स्वयं ही उपभोग करता है इसके लिये वेद ने कहा—

'केवलाघो भवति केवलादी ." (ऋग्वेद १०, ११, ७,६)

अकेला खाने वाला अघका खाने वाला होता है। इसी भाव को गीता में भगवान् ने भी कहा—हे अर्जुन—

भुञ्जते त्वधं पापा-ये पचन्त्यात्मकारणात्"

अपने लिये ही संग्रह कर स्वयं उपभोग करने वाला पाप का भक्षण करने वाला होता है।

अतः सर्व भूतहितेरता कर्म करने वाले मनुष्य का मन विषयों की आसक्ति से पृथक होने लगता है। सद् असद् के विवेक से जीवन उच्च से उच्चतर होने लगता है। मन विषयों से उपरत होने लगता है। काम क्रोधादि विकार क्षीण होने लगते हैं। आशा आकांक्षाएं दूर हो जाती हैं। लोकैषणा वित्तैषणा के वशीभूत होकर वह पाप का अर्जन नहीं करता। इन्द्रिय सुखों की निस्सारता, एवं अनित्यता अनुभव कर मन सत्य के साक्षात्कार की ओर अग्रसर होने लगता है। अतः भगवद्प्रदत्त सभी वस्तुएं लोक सेवार्थ व्यय कर-परमात्मा के चरणों में सर्वात्म समर्पण कर कृतकृत्य हो जाता है। चिंतन करते करते मन गद गद हो उठता है। स्मरण करते-करते मन द्रवीभूत होकर भावावेश में अश्रुपात होने लगते हैं। प्रेमातिशय के आवेश में नृत्य करने लगता है, सतत आत्मचिंतन में तल्लीन होकर जीव मात्र चर, अचर सब में उस प्रभु के दर्शन कर धन धन्य हो जाता है। इन्द्रिय सुखों से उपरत होकर उन्हें हेय समझने लगता है उनकी नश्वरता का उसे भान होने लगता है। अतः उनसे आसक्ति रहित हो जाता है।

ऐसी अवस्था होने पर तीसरे श्लोक में भगवान् कहते हैं कि इस प्रकार सतत अभ्यास से जब साधक का हृदय शुद्ध हो जाता है। चित्तवृत्तियाँ सात्विक हो जाती हैं, तो उसको परमात्मा ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रदान करते हैं। उस साधक के शोक मोह सब निवृत्त हो जाते हैं। संशय मिट जाते हैं। सब ग्रन्थियाँ टूट जाती है।

भिद्यते हृदय ग्रन्थि-छिद्यते सर्व सशयाः"

साधक निष्पाप होकर अमृतत्व प्राप्ति का अधिकारी हो जाता है। उसके संकल्प विकल्प सब दूर हो जाते हैं वासना के विकार मिट जाते हैं।

वह निष्काम और निष्पाप हो जाता है। निर्द्वन्द होकर सर्वात्म समर्पण के दिव्य मार्ग पर चलता हुआ साधक प्रारम्भमें बिजली की चमककी भांति सत्य की झलक दृष्टिगोचर करता है। पश्चात् साधक इस झलक को

स्थिर करने लिए व्यग्र हो जाता है। उसके साक्षात्कार की उत्कण्ठा तीव्र से तीव्रतर होती चली जाती है।

फारसी के एक शायर ने लिखा है:—

वादये वस्लचूं शबद नजदीक-आतिशेशो कतू
तेजतर गर्दद।

अर्थात् यार से मिलने का वादा ज्यूं ज्यूं समीप होता जाता है—संयोग की उत्कंठा रूपी अग्नि तीव्र से तीव्रतर होती जाती है।

विद्युत की भाँति क्षणभर चमक कर लुप्त हो जाने वाले प्रकाश को प्रत्यक्ष करने के लिये साधक व्यग्र हो उठता है। अज्ञात प्रेमतिशय से चुम्बक द्वारा आकर्षित और पाषाण की भाँति साध्य की ओर निरन्तर खिचने लगता है। इस प्रकार श्रद्धा, तप, शम, दम, ब्रह्मचर्य, सत्यनिष्ठा, अहिंसा, एकान्तवास, उपासना एवं निष्काम कर्म सम्पादित कर साधक चित्त शुद्धि का मार्ग प्रशस्त करके समाधि की स्थिति को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। उस स्थिति में विद्युत की भांति क्षण भर दृष्टिगोचर होकर बिलुप्त हो जाने वाले प्रकाश को सूर्य की भांति स्थिर देखने लगता है।

इसी भाव को चौथे श्लोक में कहते हैं:-

तेषामिवानु कम्मार्थ-अहं अज्ञामज तमः
नाशयामात्मभावोस्थ ज्ञान दीपेन भास्वतः

इस प्रकार सतत चिन्तन करने वाले अपने भक्त के हृदय में ज्ञान का दीपक प्रकाशित कर देते हैं और उससे उसका अज्ञानांधकार सब दूर कर वह अपने साध्य के साथ एक हो जाता है। साधक इस प्रकाश में अपने में पूर्णता अनुभव करता है। अन्त: करण अनुभव गम्य दिव्य आनन्द से भरपूर हो जाता है ऐसा आनन्द जिसके लिये उपनिषद् ने लिखा—"न शक्यते वर्णयितुं गिरातदा" वाणी जिस आनन्द के वर्णन करने अशक्य है—मौन है।

साधक इस ज्योति की रूप माधुरी से आनन्द विभोर होकर इस आनन्द की अनुभूति भौतिक शरीर में भी अनुभव करने लगता है। कभी कानों से दिव्य संगीत सुनता है, कभी जिह्वा से विचक्षण स्वाद की तृप्ति अनुभव करता है। कभी नासा से आकाश पुष्प की दिव्य सुगंधि सूंघता है और कभी दिव्य स्पर्श से पुलकित होकर रोम-रोम से दिव्य आनन्द की अनुभूति करने लगता है। यह आनन्द अब साधक के रोम-रोम से टपकने लगता है। वह जीव मात्र का बन्धु हो जाता है। न वह किसी से द्वेष करता है न और कोई उससे द्वेष करते हैं "वसुधैव कुटुम्बकम्"-सारी वसुधा उसकी कुटुम्बवत् हो जाती है।

संशय रहित होकर निर्द्वन्द हो जाता है। अपने में पूर्णता का अनुभव करता है। अभाव जैसी कोई वस्तु उसके जीवन में शेष नहीं रह जाती। इस प्रकार साधक शरीर में रह कर शरीर, मन में रह कर मन एव विषयों में रहकर विषयों के आधीन नहीं होता। उनपर उसका शासन का अधिकारी हो जाता है। परमात्मा के हृदय गह्वर में घुसकर वह दिव्य मानव हो जाता है। उसकी बुद्धि निश्चल, भाव शुद्ध मन बाह्य स्पर्शो में अनासक्त, शरीर तेजस्वी, कर्म निष्पाप, चित्त एकाग्र, एव कर्म सर्वभूत हितेरता हो जाते हैं। साधक नम्र, निष्काम एवं अहंकार शून्य हो जाता है। किसी अपार्थिव आनन्द की माधुरी उसके रोम रोम से टपकने लगती है। वह मौन होकर भी बोलता है-बोलकर भी मौनवत् रहता है। देखकर भी नहीं देखता, सुन कर भी नहीं सुनता। अभाव जैसी कोई वस्तु उसके जीवन में शेष नहीं रह जाती। अपने में ही कृतार्थ अनुभव करता है।

'एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति, इस प्रकार जीवन बिता कर जहां से आया था उसी प्रभु की गोद में वापस लौट जाता है।

।। आर्य जगत् ।।

श्रीवत्स गोरक्षाश्रम स्वर्ण-जयन्ती समारोह तथा आर्य कन्या गुरुकुल तनरड़ा का

चतुर्थ वार्षिक महोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया जायगा।

विद्वानों तथा महात्माओं के पवित्र प्रसाद पाने के लिये आप अपने परिवार तथा इष्ट मित्रों सहित इस उत्सव में सम्मिलित होकर पुण्य के भागी बनें। इस अवसर पर वेद पारायण वृहद् यज्ञ, कन्याओं के आसन श्लोकान्त्याक्षरी, कविता पाठ आदि अनेक आकर्षक सांस्कृतिक कार्यक्रम होंगे।

निवेदक वृन्द

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती
प्रधान

श्री शिवराम पंड़ा
मन्त्री

श्री दीनवन्धु बेहेरा
उप—प्रधान

श्री उदयनाथ महापात्र
कोषाध्यक्ष

श्री वत्स गोरक्षाश्रम स्वर्ण जयन्ती स्वागत समिति
तनरड़ा-भंजनगर (गंजाम)

❁

गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास में वेद प्रचार सप्ताह पालन ।।

गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास में ३ से ११ अगस्त ७४ तक वेदप्रचार सप्ताह पालन किया गया। प्रदि दिन यज्ञ हवन, सन्ध्योपासना के पश्चात् आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान वयोवृद्ध आर्य सन्यासी शिवानन्द जी तीर्थ बड़े ही सुमधुर भाषा में वेद मन्त्रों का व्याख्या एवं प्रवचन करते थे। आस-पास के जन-समूह तथा आश्रमवासी प्रतिदिन दत्तचित्त होकर श्रवण करते थे।

❁

उड़ीसा में आर्य समाज शत वार्षिक

शताब्दी की तैयारियां प्रारम्भ हो गई है।

समस्त आर्य-जगत् में आर्य समाज शताब्दी समारोह बड़े उत्साह से मनाने के लिये बड़े बड़े आयोजन हो रहा है। यह शताब्दी समारोह आर्य जगत् में एक नवीन उत्साह एवं प्रेरणा प्रदान कर रही है। आर्ष ग्रन्थों का प्रचार, प्रसार करने का आर्य जगत् में एक नवचेतना आई है। उड़ीसा में भी इस महा समारोह को सफल बनाने के लिये पिछले दि० १८।७।७४ को आर्य सामाज हिराकुद में शतवार्षिक पालन करने के लिये विशेष आयोजन किया गया था। जिस में स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, पं० धर्मदेव जी स्नातक आदि अनेक साधु संन्यासी एवं विद्वान तथा प्रचारक एकत्रित हुए थे। उत्कल आर्य प्रतिनिध सभा के प्रधान श्री सत्यपाल जी जुनेजा के अध्यक्षता में आलोचना हुई। जिसमें निम्न लिखित प्रस्ताव पारित हुई थी—

१—शतवार्षिक उत्सव के लिये जनता से रु० २५०००—०० एकत्रित किया जाय।

२—महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के समस्त ग्रन्थों का उड़ीया भाषा में प्रकाशन।

३—उड़ीसा के प्रत्येक शहर तथा तहसिल के अन्दर आर्य समाज का प्रचार प्रसार का आयोजन।

इस आयोजन को सफल बनाने के लिये दि० १५।९।७४ को सम्बलपुर शहर में उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा के ओर से ओड़ीसा के सारे आर्य समाजियों को एकत्रित कर के उड़ीसा के शतवार्षिक उत्सव को सफल वनाने के लिये अपने ढ़ंग का एक अनुठा कार्य क्रम प्रस्तुत किया जायगा।

आर्य समाजी अधिकारियों का कर्त्तव्य है कि वे अपने अपनें नगर में अभी से इसके प्रचार में जुट जाय और अधिक से अधिक सहयोग देने की कृपा करें।

❁

कल्याण आश्रम में बृहद् यज्ञ

गत अगस्त ५ को गुरुकुल वेदव्यास, राउरकेला-४ के शाखा, कटक जिलान्तर्गत मंगलपुर समीप स्थित थालुकुडी ग्राम में संस्थापित "कल्याण आश्रम" में एक त्री दिवसीय बृहद् यज्ञ का अनुष्ठान हुआ। जिसका आयोजन श्री गोपीनाथ पथाल, श्री दुर्योधन पृष्टि एवं श्री पद्मलाभ पात्र ने किया था जिसके ब्रह्मा पद को श्री गुरुकुल चित्तौड़ गढ़के स्नातक श्री पं० बलवेवजी' वेदवागीश, शास्त्री ने सुशोभित किया था। इसमें, प्राचार्य श्री रास विहारी नायक, श्री पं० प्रमोद कुमार मिश्र (सं० पण्डित रामवाग हाई स्कूल) श्री पं० सुभाष चन्द्र मिश्र, सहायक प्रधानाध्यापक गुरुकुल सप्तसज्याश्रम ढ़ेंकानाल ने भी अपना अमुल्य समय देकर सहयोग प्रदान किया था, साथ ही ग्रामवासियों ने उत्साह वर्धक योगदान भी दिया था।

❁

शोक सम्वाद

मद्रास आर्य समाज के प्राण स्वरुप कर्मठ कार्यकर्त्ता और लगनशील ऋषिभक्त श्री युत सत्यदेव जी चल बसे

दुःख है कि आर्य समाज मद्रास के प्रधान, कर्मठ कार्यकर्त्ता, सच्चे ऋषिभक्त श्री सत्यदेव जी का निधन दि० ५-८-७४ को प्रातः चार बजे हो गया है।

सत्यदेव जी मद्रास आर्य समाज का प्राण स्वरुप थे। हर समय आर्य समाज के कार्यों में बढ़ चढ़ कर भाग लेते थे। उन्हीं के प्रयत्नों से आर्य समाज मद्रास सक्रीय समाज का कार्य कर रहा था। वेद प्रचारके लिये दिन रात लगे रहते थे। हर सप्ताह उनके मुख से आर्य जनता वेद कथा सुनती थी। आप बड़े ही लगनशील, विद्वान, समाजसेवी एवं मिलनसार व्यक्ति थे। आपकी निधन पर आर्य समाज का महती क्षति हुई एवं उसकी पूर्ति निकट भविष्यत में होना असम्भव है। उड़ीसा के सामाजिक कार्य में भी यदाकदा उनके प्रयत्नों से सहायता मिलता ही रहता था। तदर्थ गुरुकुलवासी एवं "वनवासी-सन्देश, परिवार अत्यधिक दुःख प्रकाश करता है और दिवंगत आत्मा को सद्गति तथा शोक संतप्त परिवार को धैर्य प्रदान करने के लिये परमात्मा से प्रार्थना करता हैं।

सुमन-संचय

१ -केवल मूर्ख और मृतक ये दो ही अपने विचारों को कभी नहीं बदलते —लावेल

२ -जुगनू तभी तक चमकता है जबतक उड़ता रहता है, यही हाल मन का है, जब रुक जाते हैं तो अन्धकार प जाते हैं। —बेली

३ -आदत रस्सी की तरह है हर रोज इसमें हम एक बट देते हैं और अन्त में हम इसे तोड़ नहीं सकते। थामस मान

४ -वही ब्राह्मण है जो समग्र वेद और परमेश्वर को जानता है, जो प्रतिष्ठा से विष के समान सदा ड़रता और अपमान की इच्छा अमृत के समान किया करता हैं। —मनु

५- क्रोध से मोह उत्पन्न होता है। मोह से स्मृति में भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। स्मृति की भ्रान्ति से कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का विवेक नष्ट हो जाता हैं। बिवेक के अभाव में मानव पतन की और अग्रसर हो जाता है। -गी

६ -दुर्बल प्राणियों के लिये संसार में कोई स्थान नहीं हैं। दुर्बल होना पाप है और निर्बल सन्तान उत्पन्न कर

भी पाप है । —स्वामी विवेकानन्द

७ -जो मनुष्य किसी का ऋणी नहीं है और जो परदेश में नहीं है, वह चाहे अपने घर में पांच छः दिन में साग पात पका कर खाता है, तो भी वह सुखी है । —महाभारत वनपर्व

८ -माता का गौरव पृथिवी से भी अधिक है ! पिता आकाश से भी ऊंचा है । मन वायु से भी तेज गति वाला है और चिन्ता तिनकों से भी अधिक असंख्य एवं अनन्त है । महाभारत वनपर्व

।। श्री कृष्ण की गीता ।।

गीता ज्ञान भानु का प्रकाश वसुधा पै पड़े,
अन्धकार दूर हो अविद्याजन्य मन्दका ।
नीति के सरोज खिलें, न्याय का पराग झरे,
पान करे मन भृंग प्रेम मकरन्द का ।।
लम्पट लबार घूक तम की गुहा में दुरें,
धर्म प्रिय साधु ध्यान करें चिदानन्द का,
सत्य की सुरश्मियां मिटा दें मोह मानव का,
तारे उपदेश ब्रजराज कृष्ण चन्द का ।। १ ।।

मोहजन्य तम को विदीर्ण कर फैले रश्मि,
गीता ज्ञान इन्दु की विमल मन सर में ।
शील सदाचार के कुमुद खिले चारों ओर,
प्रेम मकरन्द झरे सुजनों के घर में ।।
सत्य के पराग से सुवासित हों नीति न्याय,
जागें मुनि संयमी निशा में ध्यान हर में ।
दानी कृष्णचन्द्र की दया की दिव्य ज्योति करे,
'अखिल' प्रकाश मुदिता का चराचर में ।। २ ।।

अनिल

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥

(मनुष्य को चाहिए कि वह सत्य बोले, प्रिय बोले, कड़वे-सत्य को न बोले, या असत्य प्रिय मीठे लगने वाले झूठ को भी न बोले । यही सनातन धर्म है ।)

— मनुस्मृति

BANABASI SANDESH August 1974 Regd. No. O—178

GURUKUL VEDIC ASHRAM

Vedavyas, Rourkela-4, Dt. Sundargarh.

With Best Compliments From :

The Library
Gurukul Kangri Univer sity
Haradwar.
(U.P)

MAFATLAL GROUP

BOMBAY

प्रकाशक- स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती एवं पण्डित आत्मानन्द शास्त्री द्वारा सम्पादित,
तथा शांति आश्रम प्रेस, गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास राउरकेला-४ में मुद्रित ।

- ओ३म् -

वनवासी संदेश

वनवासी सांस्कृतिक समिति वेदव्यास, राउरकेला-४
(ओडिसा) का मासिक मुख पत्र

संस्थापक- स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतंगमयेति ।।
शतपथ ब्रा० (२४।३।२।३०)

हे परमगुरो परमात्मन् ! आप हमको असत् मार्ग से पृथक् कर सन्मार्ग में प्राप्त कीजिये । अविद्यान्धकार को छुड़ा के विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कीजिये । और मृत्यु रोग से पृथक् करके मोक्ष के आनन्दरूप अमृत को प्राप्त कीजिये ।

O Great teacher, Supreme Being ! lead us from the path of falsehood to that of truth, take us from the darkness of ignorance to the light of knowledge and save us from the disease of death & give us the happiness of salvation & immortality.

सम्पादक
पं० श्री आत्मानन्द शास्त्री

सह सम्पादक
पं० श्री देशबन्धु विद्यावाचस्पति

ओ३म्

उद्देश्य

प्रथम— वनवासी संस्कृति की रक्षा
द्वितीय – वनवासी शिक्षा
तृतीय— वनवासी समाज संगठन व उन्नति

शुभ दीपावली के शुभ अवसर पर पाठकों को "वनवासी सन्देश" परिवार की ओर से हार्दिक अभिनन्दन

विषय — सूची

अक्टूबर १९७५

* ओ३म् *

वनवासी संदेश

उत्कल जनता संस्कृति रक्षा वद्धकटिस्तमः स्तोमहृतिदेशः
गुरुकुल सुपानपोषादुदयति वनवासी संदेशः ॥
यो भ्रष्ट ख्रीष्टमत दीक्षित मञ्जलोकम्
संस्कृत्य दूरयति तद्धृदयान्धकारम् ॥
श्री वेदव्यास सुगुरो कुल सन्निवेशः
सम्पूर्वादेरुदयते वनवासी देशः ॥

वर्ष ९ अंक १०	अक्टूबर १९७५	वार्षिक मूल्य ५ रु एक प्रति ५० पैसे

श्रुति–सुधा

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ऋ० १०–५७–४ ॥

शब्दार्थः— (मनः) मनका (ते) तुझमें (पुनः) फिर (आएतु) प्रवेश हो जावे । जिससे कि तू (क्रत्वे) कर्म करने लगे (दक्षाय) तुझ में बल आजाए (जीवसे) जीवन आ जाय (ज्योक् च) और तू चिरजीवी होता हुआ (सूर्य दृशे) निरन्तर सूर्य दर्शन करता रहे ।

भावार्थः-- हे मनुष्य ! जो तू इतना निर्बल, हतोत्साह और शिथिल हो गया है, इसका कारण तेरे मन की निर्जीवता है । तेरा मन निर्जीव हो गया है, मानो तुझ में मन रहा ही नहीं है ।

तेरे रोग का और कोई कारण नहीं है। तू अपनी इस मन्दता को-निर्बलता को दूर करने के लिये यों ही अप्राकृतिक दवायें। खाता फ़िरता है, इनसे कुछ नहीं बनेगा, "बहम का इलाज लुकमान के पास नहीं है"। जरा वहम को छोड़कर अपने अन्दर उस जगद् व्यापक मन की धारा को प्रविष्ट होने दें जो कि सब संसार में व्यापक है सब संसार को चला रही है– प्रत्येक मनुष्य के मन को हिला रही है। उस मनोमय धारा को तू जितना अपने अन्दर ग्रहण करेगा उतना तेरा मन सजीव होता जायेगा तब तू फिर से ठीक तरह "क्रतु" - कर्म - कर सकेगा, तेरे अन्दर "दक्ष" बल आ जाएगा। और तुझ में एक नये जीवन का संचार हो जाएगा और जगत को प्राण देने वाले जो सूर्य देव है उनका दर्शन करता हुआ– उनसे प्राण लेता हुआ- दीर्घ आयु तक जीवित रहेगा। यह सब मनः शक्ति के प्रवेश का चमत्कार है। अतः हमारी तो परमात्मा से यही प्रार्थना है कि तुझ में मनः शक्ति का प्रवेश हो। इसी में तेरा कल्याण है। मनः शक्ति के बिना तो अन्य भी किसी उपाचार से लाभ नहीं उठाया जा सकता। अतः मन ही को बढ़ा, मन ही को जगा, मन ही को चैतन्य कर।

वेद भगवान ने कितने प्रवल शब्दों में मनुष्य मात्रके कल्याण के लिये, समाज में मनुष्य मन में आई शिथिलता को जगाने के लिये, निर्जीवता में जीवन का रूप देने के लिये उपदेश दिए हैं, अगर प्रत्येक मनुष्य इस पर मनन करें तो अवश्य ही मानव मात्र का कल्याण होगा तथा राष्ट्रीय चरीत्र को बल मिलेगा। 'वसु'

अन्धा कौन है? जो अकर्तव्य में लगाता है।
बहरा कौन है? जो हित की बात नहीं सुनता।
गूंगा कौन है ? जो समय पर प्रित बचन नहीं बोलना जानता।

— शङ्कराचार्य

—। ओ३म् :—

युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

* ओ३म् *

—: ऋषि निर्वाण दिवस के उपलक्ष में :—

राष्ट्रीयता के मन्त्रदाता महर्षि दयानन्द

* श्रीमती अहल्या शास्त्री

जब भारतीय संस्कृति विदेशियों के क्रुर-कूट नीति का शिकार बन अपने केन्द्र विन्दु से हटकर अनेकों दूर में भटक रही थी। देश दासता के गहरेगर्त्त में पडा तथा निराशा की भंवर में डूबा ज़ा रहा था, एवं विदेशियों की घातक शिक्षा नीति से पकड़ाहुआ निरोह पशुओं की भांती रोदन कर रहा था। ऐसे ही विषम परिस्थिति और घोर दुर्दिनों में "महर्षि दयानन्द सरस्वती जी" का गुजरात्त प्रान्त के टङ्कारा ग्राम में संन् १८२४ में एक सम्भ्रान्त औदिच्य ब्राह्मण परिवार में ज़न्म हुआ था। उनका आगमन मानो देश की सब प्रकार विकृत्तियों के लिये रामबाण दबा के तुल्य ज़ीवन दायी बन गया।

महर्षि ने देश की सोई हुई ज़नता को ज़गाया ही नहीं अपितु व्यक्ति एवं समष्टि गत रूप में ज़न ज़ीवन की प्रत्येक दिशा में योग्य तथा वेदोक्त भारतीय सभ्यता व संस्कृति का मूल मन्त्र पढ़ा कर आर्यसमाज के संगठन रूप में दीक्षित कर संग़ठित कर दिया।

उन्होंने अपने वैदिक ज्ञान रूपी दिव्य रश्मियों से आप्यायित कर देश वासियों को झकझोरकर जागृत किया। अपने दृढ़ और सिंह गर्जन के साथ भारतियों को आह्वान करके कहा कि हे भोले भारतवासियों ! उठो, तुम अपने आपको पहचानों अपने पूर्वजों के गुणों का स्मरण करो और दासता की बेड़ियों को टूक टूक कर तोड़ फ़ेंकों। वे भारतियों के लिये स्वतन्त्रता का प्रथम मन्त्र दाता थे।

(अवशिष्टांस २३ पर देखें)

जो रोगी मांगे, सो वैद्य फरमावे

अब शराब पीना केवल अनुचित ही नहीं बल्कि अपराध भी है ।

वनवासी सन्देश के पाठक गण ! अत्यन्त हर्ष का विषय है, कि हम आर्य बन्धुओं का सैकड़ों वर्ष का संघर्ष आज सफल हुआ । एक लोकोक्ति है कि–

करत करत अभ्यास से जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात ते शील पर परत निशान ।।

आर्य समाज या यों कहिए कि वैदिक सिद्धान्त में शराब पीना, या अन्य प्रकार के नशीले पदार्थ का सेवन करना अत्यन्त निन्दनीय है । शराब पीने पर प्रतिबन्ध लगानें के लिये आर्य समाज ने करीब सौ वर्ष से गिड़ गिड़ा रहा था अन्ततः परिणाम यह हुआ कि हमारी आर्तनाद को सुन कर परमात्मा ने सरकारी अधिकारी गण को शराब बन्दी के लिये शक्ति दी सुमति दी । इस पावन कार्य के लिये हमारी शुभेच्छा सरकार के साथ है ।

यह जान कर अअत्यन्त खुशी हुई कि भारत सरकार पूज्य राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी के पावन जन्म दिवस २ अक्टूबर १९७५ से शराब पीने पर प्रतिबन्ध लगाने की घोषणा की है जो इस प्रकार है :–

१- छात्रावास, होटेल, क्लब एवं समारोहों पर शराब पीने पर रोक ।
२- औद्यौगिक, सिंचाई, और विकास परियोजनाओं के निकट शराब की दूकाने नहीं रहेंगी ।
३- शराब पीने के लिये विज्ञापन करने पर प्रतिबन्ध ।
४- धार्मिक संस्थानों, राज मार्गो एवं शिक्षण संस्थानों के निकट शराब की दूकाने नहीं रहेंगी ।
५- महिने के सात तारिख को और वेतन मिलने के दिन शराब की दूकानें नहीं खुलेंगी ।
६- ड्राईवरों तथा पाईलटों को शराब पीने की पूर्ण मना ही । उलंघन करने पर लाईसेन्स रद्द करने की व्यवस्था ।

७- सरकारी कर्मचारियों के लिये ड्यूटी पर शराब पीना अपराध होगा और कानून क़े नजर में दण्ड़नीय होगा ।

८- शराब बिक्री के लिये नई दूकानें नहीं खोली जायेगी और न लाईसेन्स का नवकरण होगा ।

९- शराब से हानि का प्रचार सरकार तथा स्वेच्छा सेवी संस्थाओं द्वारा अधिक प्रबलता से होगी ।

भारत सरकार की उपरोक्त घोषणाएँ अत्यन्त सराहनीय है, और मदिरा पान की ओर एक सक्रिय कदम है । हम सभी को इस महान् कार्य के लिये सरकार को सहयोग देना परम कर्तव्य है ।

आर्य समाज अपने प्रादुर्भाव से ही मदिरा एवं मादक वस्तुओं के प्रयोग के विरोध में है । इसी कार्य के उन्मूलन के लिये आज जब केन्द्रिय सरकार सक्रिय हुई है तो इस सुनहले अवसर को अत्यन्त कार-गर सहयोग देने से पीछे हटना भी अपराध सावित होगा । अतः हमें ध्यान रखना चाहिए ।

शराब को रातों रातों खतम करने की एक अत्यन्त अचूक दवा यह है कि जो शराब पिये उसी को जल्दी से जल्दी पकड़ कर कानूनी सजा दी जाये ताकि वह व्यक्ति शराब न पिये हम सरकार के इस पवित्र कार्य में सदैव साथ हैं ।

धर्मनारायण सिंह
बी० काम०
मगध विश्व विद्यालय

—: ओ३म् :—

ज्योतिष सुधा

पं० इन्द्रदेव जी विद्याभूषण

जब आप इन पदार्थों पर विचार करंगे, तब आपके हृदय में आश्चर्य की प्रवल तरङ्ग उठेंगी। उन तरङ्गों को शान्त करने के लिये आप ज़्योतिष शास्त्र की शरण में जाना पड़ेगा और ज़्योतिष के प्रश्न हल करने के लिये रेखाग़णित बीजगणित और अङ्क गणित की आवश्यकता पड़ेग़ी। वस्तुतः ग़णित शास्त्र के अङ्गों की उत्पत्ति भी इसो ज़्योतिष शास्त्र से ही हुई और अब भी ज्योतिष विज्ञान के कारण इस युग में गणित शास्त्र की उन्नति हो रही है। क्योंकि नक्षत्रों, ग्रहों, उपग्रहों, सूर्य तथा चन्द्रमा के परस्पर सम्बन्ध, उत्पत्ति और विकास को जानने के लिये- गोलीय त्रिकोणमिति आदि गणितों की आवश्यकता पड़ती है। गणित की अनेक शाखायें (ज़्योतिष की अनेक समस्याओं को हल करने के लिये) निकाली गई है। इस ज्योतिष शास्त्र द्वारा उस परम- पिता आ३म् की ही सत्ता है और उसके आधार पर ठहरे हुए हैं। इस उन्नत संसार को ओ३म् ने इस प्रकार विभक्त किया है कि जिस प्रकार एक राजा अपनी सेना को कई सेनापतियों के अधीन रखता है, उसी कार ओ३म् ने इन चमकते हुये पदार्थों को उनके सेनापतियों के अधीन किया है, जो इन चमकते हुये पदार्थों पर शासन करते हैं। इन सेनापतियों का नाम सूर्य है जो दिन रात्रि तथा ऋतु आदि का कारण है, और सभी प्राणियों को प्राण देने वाले हैं। जिस प्रकार हमने अपनी पृथ्वी को अनेक भागों में विभक्त किया है उसी प्रकार ओ३म् ने इस संसार को अनेक ब्रह्माण्डों में विभक्त किया है, तथा एक सूर्य एक ब्रह्माण्ड की रक्षा करता है। इन आकाशीय पिण्डों में परम तेजस्वी सूर्य ही अपने अपने ब्रह्माण्डों को अपने आश्रित करके अपने कक्षाओं में घुमता है आप विचार करते होंगे कि इस शून्य आकाश में यह सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र इत्यादि किस आधार पर ठहरे हुए हैं, और

इनका राजा सूर्य इतने बड़े-बड़े पिण्डों को किस प्रकार अपने अधिकार में रखता है । इस विषय में हम आपके सामने एक वेद का प्रमाण रखते हैं। इस वेद मन्त्र मैं परमपिता ओ३म् ने सूर्य की आकर्षण शक्ति का वर्णन किया है :—

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेवन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्य येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन् ।।

भावार्थः— प्रकाश-स्वरूप सूर्य आकर्षण शक्ति के साथ वर्त्तमान् लोक लोकान्तरों को अपनी कक्षा में स्थित करता हुआ, और सब प्राणियों अप्राणियों में अमृत पूर्ण किरणों द्वारा अमृत को प्रवेश करता हुआ और प्रकाशमय, रमणीय स्वरूप से पृथ्वी आदि लोकों को प्रकाशित करता हुआ अपनी धुरी पर घुमता है। इस मन्त्रों में सूर्य की आकर्षण शक्ति की विद्यमानता बताई है और साथ ही यह भी कहा है कि दूसरों लोकों को प्रकाशित करता हुआ और स्व स्व कक्षा में उन लोकों को घुमता हुआ अपनी धुरी पर अर्थात् अपने अक्ष पर घुमता है, जिस प्रकार चुम्बक लोहे की वस्तुओं को अपनी और खींचा लेता है, उसी प्रकार सूर्य भी इन पृथ्वी आदि लोकों को अपनी ओर खींचें हुये हैं, इसी प्रकार इस अनन्त संसार में प्रत्येक ब्रह्माण्ड के राजा सूर्य अपनी ओम् प्रदत्त आकर्षण शक्ति से अनेक पिण्ड़ों को बान्ध कर घुमा रहे हैं।

—: हमारा ब्रह्माण्ड :—

अपने इस ब्रह्माण्ड का वर्णन प्राचीन और आधुनिक ज्योतिष को सामने रख कर किया जा रहा है । हमारे मध्य काल अर्थात् "वेदाङ्ग ज्योतिष काल" के पीछे से अबतक ज्योतिष शास्त्र ने किस प्रकार इस ब्रह्माण्ड का वर्णन किया है । क्योंकि भारतीय ज्योतिषी इस ब्रह्माण्ड में सात ग्रहों को ही मानते हैं और आधुनिक ज्योतिष जो पाश्चात्य विज्ञान के अनुगामी हैं वह जहाँ ग्रहों को मानते हैं । उसी तरह वे लोग उपग्रहों को भी मानते हैं। पाश्चात्य ज्योतिषी ग्रहों की संख्या नौ मानते हैं । हमारे

मध्यकालीन ज़्योतषियों में कुछ मत भेद पाया जाता है, हमें उसी बात पर विचार करके पुनः अपसे उसी उद्देश्य पर आना है। जिस प्रकार आधुनिक ज्योतिषी ग्रहों की स्थिति मानते हैं उसी प्रकार हमारे वैदिक कालीन ज़्योतिषी भी मानते हैं, क्योंकि वेदों में ग्रहों उपग्रहों का वर्णन स्पष्ट रूप से लिखा है, इस अन्तर का कारण यही है कि अन्य देशों से आये हुये राजाओं ने हमारे प्राचीन साहित्य को जला दिया और ज़्योतिष सम्बन्धी साहित्य तो बिलकुल नष्ट कर दिया जो कुछ बचा–खुचा साहित्य प्राप्त होता है उससे हमें प्राचीन ज्योनिष सम्बन्धी विज्ञान का पता चलता है, जो एक विचित्र हो विज्ञान है। हमारे प्राचीन आचार्यों के बनाये सूत्र विज्ञान से भरे हुये हैं।

(क्रमशः)

माता की महत्ता

ले० श्रीमती शान्ति देवी ज़ी मन्त्रिणी महिला आर्यसमाज़
नामनेर (आगरा)

अथर्व वेद के २० वें कान्ड के छवें सूक्त के मन्त्र ३ में आया है कि अर्थात् "पहले ही पहले माता उत्तम शिक्षा से मनुष्य में उत्तम संस्कार उत्पन्न करें। तब वह मनुष्य विद्वान्, बलवान् और धनवान् होकर संसार में कीर्ति पाता है"।

वेदों में माता का यश गाया गया है माता ही सन्तान की प्रथम गुरु है। इसलिये माता का सुशिक्षित होना बहुत आवश्यक है। जितने महापुरुष इस भारत में ही नहीं सारे विश्व में हुये हैं उन सबों को उनकी माता ने ही बनाया है। माता गर्भ से ही बच्चों पर संस्कार डालती है, जन्म लेने के बाद उत्तम उत्तम शिक्षायें देकर उत्तम आचारण सिखाती हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज़ ने कन्याओं को शिक्षा पर इसिलिये बहुत जोर दिया था, उन दिनों कन्याओं की शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। और इन्हें वेद पढ़ने का तो अधिकार ही नहीं था। राम चरित मानस के रचयिता श्री तुलसी दास ज़ी ने नारियों का बड़ा अपमान किया और अपने अमर ग्रन्थ में इसको

छाप कर कई वर्षों तक नारियों के हृदय में हीनता की भावना को भर दिया हैं। उनको बनाने वाली भी उनकी माता नारी ही थी जिसकी उत्तम शिक्षा के क़ारण वे इतनी ख्याति प्राप्त कर सके। स्वामी दयानन्द ने, ऐसे अन्धकारमय युग में कन्याओं को शिक्षा की आवाज उठाई पर उस समय लोगों के मनमें यह बात भली प्रकार न समाई। बाद में धीरे धीरे कन्या शिक्षा का बहुत प्रचार हुआ। अनेक कन्या महाविद्यालय, विद्यालय, गुरुकुल आदि खुलते चले गये और उनमें शिक्षा प्राप्त कर हमारी वालिका शिक्षिता बन कर चमकने लगी। उन्नति करते करते यहाँ तक आज देश की प्रधान मन्त्री भी एक नारी ही है, जो बड़ी विदुषी है और अपनी सूझ बूझ से शासन की नौका भली प्रकार खे रही है।

समय ने पलटा खाया। कन्याओं के शिक्षाने बढ़ते बढ़ते दूसरा रूप लिया। शिक्षा यहाँ तक बढ़ी कि लड़कों की बराबरी होने लगी। सब लाइनों में लड़कियाँ जाने लगी यहाँ तक कि पुलीस, होमगार्ड़ मुन्सिफ, वकील, माजिष्ट्रेट आदि में लड़कियां बड़ी तेजी से आने लग़ी। नारी होने के नाते मुझे नारी के उत्थान पर गर्व है। उन्नति का धेय होना ही चाहिये। परन्तु चौमुखी उन्नति, जिसका कि वेदों में ज़गह जगह उपदेश आया, होनी चाहिये

आज भारतीय ललना की भारतीयता प्राय समाप्त हो रही है। शिक्षा की उन्नति है भाषा, भेष, भूषा की उन्नति है परन्तु वेद में जिसका आदेश है कि "माता उत्तम शिक्षा से मनुष्य में (वालक में) उत्तम संस्कार उत्पन्न करें" इसका समाधान कहाँ है। आज की माता किधर ज़ा रही है और आज के बालक किधर जा रहे हैं दोनों अलग अलग और गलत मार्ग़ पर चल पड़े हैं। माता को समय नहीं कि बालक को बनावे, समझावे उत्तम शिक्षा दे (जन्म से नहीं गर्भ से ही) अच्छी प्रकार पालन पोषण करें, योग्य बनावे। उसको या तो सर्विस से स मय नहीं य़ा फ़िर क़लब, सोसायटी आदि से समय नहीं। घर पर बच्चे नौकरों पर पलते हैं और नौकरों के बच्चों के साथ खेल कर उन्हीं के गुण-दोष सीखते हैं।

इन कारणों से आज घर का वातावरण आनन्द दायक नहीं रहा। हर एक मन में तनाव है सब लोग तनाव पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं पहले घर पर आनन्द था, लोग काम से छुट्टी पाकर घर भागते थे आज इसका स्थान होटलों के अनाप-शनाप ले खाने पीने केलिया है धीरे धीरे यही तनाव पूर्ण जीवन मानसिक बीमारियों का कारण बन रहा है। ऐसे भी वेदों हमें उपदेश दे रहा है परआज के मानव को वेदों को पढ़ने का समय कहाँ ? उसे तो उपन्यास, कहानियाँ पढ़ने का चाव है भगवान आज फ़िर नारी की बुद्धि जाग्रत करें जिससे संसार में फिर सुख शान्ति बढ़े और सब सुखी होवें।

ओम् शम

पाठकों से

प्रिय पाठक वृन्द !

आपकी आदि भूमी वनस्थली से जो संदेश आपके पास पहुँचता है वह "वनवासी सन्देश" अब नवम वर्ष के दशम अंक में प्रवेश कर चुकी हैं। साथ बहुघात प्रतिघात और तूफ़ानों से टकराते हुये किसी का भी परवाह न करके आपके हाथ में है।

क्या इस अङ्क आपको पसन्द है ?

अगर यदि आप इस अङ्क को पसन्द करते हैं तो इस महंगाई और कागज की मूल्य वृद्धि को देखते हुए पत्रिका का वार्षिक शुल्क ५ रूपया मात्र भेजने को न भूलें अपनी धरोहर की रक्षा करना आप क़ा क़र्त्तव्य है। नहीं तो यह 'सन्देश' विक़शित नहीं होने पायेगी। जिससे अमर हुतात्मा पं० लेख-राम क़ी अन्तिम वाणी लेखन कार्य बन्द न हो क़ि आवाज इस धरासे विलिन हो जायेगी। **यदि पसन्द नहीं** तो आप पत्रिक़ा क़ो देखते हुये वनवासी सांकृतिक़ समिति के सहायता के लिये पूर्ण उदारता के साथ ५ रू० अवश्य एवं शीघ्र भेजेंगे यही आशा करते हैं।

—: ओ३म् :—

रत्नगर्भा

ले० डा० प्रज्ञादेवी वाराणसी – ५

यजुर्वेद का सम्पूर्ण अष्टमाध्याय गृहस्थ धर्म के उच्च व्यवहारों एवं आदर्शों से भरा हुआ है। याज्ञिकों ने एवं अन्य भाष्यकारों ने इस अध्याय के मन्त्रों का कुछ भी अर्थ किया हो किन्तु ऋषि दयानन्द तो इन मन्त्रों का एक सर्वग्राह्य एवं सर्वमान्य व्यवहारिक पक्ष ही उपस्थित करते हैं। प्रकरणानुसार इस अध्याय के पञ्चम मन्त्र को देखें—

विवस्वान्नादित्यैष ते सोमपथिस्तस्मिन् मत्स्व ।
श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्धं दम्पती वाममश्नुतः ।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारय एधते गृहे ॥
(यजु० ८।५)

इस मन्त्र का भावार्थ है –

हे विवस्वन् आदित्य= हे सूर्य के समान तेजस्वी गृहस्थजन एषः ते सोमपीथः= यह तुम्हारा सोमपान करने योग्य स्वच्छ प्रभुभक्त घर है तस्मिन् विश्वाहा= उसमें सदैव मत्स्व= प्रसन्न रहो। हे नरः अस्मै वचसे= इस गृहस्थाश्रम में वाणी का व्यवहार करने के लिये श्रत्‌दधातन= सत्य को ही धारण करो। इस प्रकार यत् गृहे= जिस गृहस्थाश्रम में दम्पती= पति पत्नी वामम= सुन्दरता से धर्म को अश्नुतः= प्राप्त होते हैं उसमें आशीर्दा= इच्छाओ को पूर्ण करने वाला अरवः= निष्पाप धार्मिक पुमान्= पुरुषार्थी पुत्रः= पुत्र जायते= उत्पन्न होता है जो कि उत्तम वसु विन्दते= धन प्राप्त करता है अध= तथा वह एधते= खूब धम ऐश्वर्य से बढ़ता है।

इस मन्त्र में कामना पूर्ण करने वाले निष्पाप तथा पुरुषार्थी जो सदा उत्तम धन एवं ऐश्वर्यों को प्राप्त करेगा ऐसे पुत्र के प्राप्ति की बात कही है। ऐसा दिव्य पुत्र किस गृहस्थ को प्राप्त हो सकेगा? इसके लिये मन्त्र में दो विशेष बातें कही हैं –

(१) प्रथम परिवार सोमपोथः हो अर्थात् वहाँ सोमलता आदि औषधियों के रस का पान याज्ञिक विधि से किया जाता हो। अथवा सोम परमात्मा को कहते हैं सो जहाँ ब्रह्मानन्द रूपी रस का पान किया जाता हो यानि दम्पती पूर्ण ईश्वर भक्त= आस्तिक हों।

(२) दूसरी बात है परिवार में दम्पती= पति पत्नी दोनों ही सत्य का व्यवहार करने वाले हो परस्पर में किसी के मन में दुराव छिपाव अथवा छल-कपट न हो। सम्पूर्ण व्यवहारों में वे सत्यनिष्ठ हों। वस्तुत: गृहस्थ जीवन में परस्पर असत्य भाषण करना एक प्रकार से दूध में खटाई डालना है। इस दुर्गुण के बड़े भयङ्कर परिणाम परिवारों में देखे गये हैं। असत्य से अविश्वास का जन्म होता है और परिवार नरक बन जाते हैं। बच्चे इस असत्य भाषण को माता पिता से सीखकर अवज्ञाकारी बन जाते हैं।

मन्त्र में उल्लिखित पूर्वोक्त प्रकार के शुभ गुण सम्पन्न पुत्र की प्राप्ति के लिये ये दो ही विशेष बातें बताई गई हैं। आज इस युग में प्रत्येक गृहस्थ प्राय: सन्तान के दु:ख से दु:खी है। "चार पुत्रों में से प्रथम पागल है, दूसरा घर की सम्पत्ति को बेच बेच कर खा जाता है तो तीसरा घर से बार बार भाग जाता है और चौथा अस्वस्थ रोगी है" यही सब कुछ आज सूनने को प्रत्येक गृहस्थ परिवारों से मिल रहा है। यह सब क्या है? एवं क्यों हो रहा है। कहाँ राम जैसी आज्ञाकारी सन्तान, भीम जैसे बलवान् पुत्र और कहाँ ये नालायक !!! वस्तुत: इन सबका कारण गृहस्थ जीवन का असन्तुलित व्यवहार ही है। आज कल के गृहस्थ परिवारों में सच्ची ईश्वरभक्ति एवं धार्मिकता का अभाव होता जा रहा है। न वहाँ जड़ पूजा है न निराकार सच्चे ईश्वर की पूजा। केवल, केवल भौतिकता एवं भोगवाद है।

सन्तान को योग्य एवं सुशिक्षित बनाना गृहस्थ जीवन का सबसे बड़ा तप एवं कर्त्तव्य है ऋग्वेद १।७१।७ वें मन्त्र का भावार्थ करते हुये ऋषि दयानन्द लिखते हैं— 'पुत्रों के लिये विद्या वा उत्तम शिक्षा करने के समान कोई बड़ा उपकार नहीं है'। यहाँ सन्तानों को सुशिक्षित करने से बढ़कर कोईबड़ा उपकार

महर्षि ने नहीं माना है । शोक है कि आर्यजन आज कुपथ का अनुसरण करके सबसे बड़े इस श्रेष्ठ कर्त्तव्य से विमुख हो रहे हैं। अपनी सन्तान को धड़ा धड़ कनवेंट स्कूलों में भेजा जा रहा है, जहाँ प्रारम्भ से ही उन्हें अंग्रेजीभक्त एवं धर्म विमुख बनाने के कार्य तेजी के साथ किया जाता है स्कूलों में तो इस प्रकार के राष्ट्र-विरोधी विष का पान ये बच्चे करते ही हैं किन्तु घर पर भी माता पिता के द्वारा इन्हें विरासत में कुसंस्कार ही प्राप्त होते हैं ।

भगवान् की इस सृष्टि में मातृपद सर्वाधिक महनीय एवं गौरवास्पद माना गया है । मातृपद से उत्कृष्ट * कोई पद संसार में नहीं है । मुझे आश्चर्य होता है महाभारत काल के पश्चात के साहित्य ग्रन्थों को देखकर जिनमें स्त्री के कटाक्ष, नयनबाण, उरोज एवं नखशिख वर्णन आदि की भरमार है । यही उन ग्रन्थों में नारी की प्रशंसा मानी गई है । स्त्री के श्रेष्ठतम मातृ रूप की झलक तो कहीं ही आ पायी है । सच तो यह है कि उस मातृ रूप की परिकल्पना में भी श्रृङ्गाररस को ही जोड़ने का प्रयास किया गया है । इस विषय में माता पार्वती आदि के वर्णन साहित्य ग्रन्थों में विशेष रूप से देखे जा सकते हैं । वास्तव में वह वाममार्ग का युग था जिसका ऐसा परिणाम हुआ । जिस समय इस देश में वैदिक मर्यादाओं का श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचरण होता रहा उस समय लोग इस तत्व को यथार्थतः जानते थे कि गृहस्थाश्रम की वास्तविक सफलता योग्य सन्तान की प्राप्ति में हैं, और सन्तान की सुशिक्षा में माता का प्रमुख स्थान है । इतना ही नहीं एक पीढ़ी को उत्तम बनाने के लिये इससे पूर्व की तीन पीढ़ी का उत्तम होना आवश्यक है। यजुर्वेद २३।१८ में कहा—

'अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मा० ...."

अर्थात् अम्बा= माता अम्बिका= दादी अम्बालिका= पर-दादी ये तीनों मिलकर सन्तानों को अच्छी शिक्षा दें । स्पष्ट है कि

---

* उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ।।

।। मनु० २।१४५।।

सन्तान को योग्य बनाने में केवल माता ही नहीं बल्कि दादी, परदादी आदि वृद्धा मातायें जिनके सम्पर्क में बच्चा आता है सबको योग्य सुसंस्कृत भाषा बोलने वाली होना चाहिये । प्रायः परिवारों में ऐसा भी देखा जाता है कि माता के समझदार एवं धार्मिक सुशिक्षित होने पर भी दादी एवं नानियाँ अपठित होने के कारण अपने कुसंस्कारों से बच्चे को लाड़ लाड़ में दूषित एवं कुसंस्कृत बना देती हैं । माता की चलने ही नहीं देती । यह स्थिति बच्चे के हित में बड़ी दुःखद है ऐसा नहीं होना चाहिये । घर में वृद्धा माताओं को चाहिये कि वे हर बात में पौत्र एवं पुत्र वधू के बीच में दखल न देकर व्यर्थ लाड़ न करें । इससे सन्तान का भविष्य नष्ट होता ।

यहाँ वेद के उपर्युक्त उदाहरण से अच्छी प्रकार स्पष्ट हो गया कि सन्तान को बनाने एवं बिगाड़ने दोनों में ही नारी का कितना प्रमुख हाथ है। इस मातृपद की गरिमा इसी बात में है कि वह पृथिवी के समान क्षमाशीला गम्भीर तथा नाना प्रकार की विद्याओं से सुशोभित हो। नारी सम्पूर्ण परिवार के लिये पूषा= (यजु० ३८।३) पुष्टि प्रदान करने वाली एवं अपनी प्रिय सन्तान के लिये सुषदा * = (यजु० १०।२६) जिसकी गोद में प्रेम से बैठा जा सके ऐसी है। अपने इन दैवी गुणों तथा अलौकिक वैदुष्य के कारण उसने इतने नर पुङ्गवों का सृजन किया है कि जिन्हें देखकर सारा विश्व चकित है । प्रकृत मन्त्र (यजु० ८।५) के अनुसार धार्मिक एवं सत्य निष्ठ परिवार बनाने पर आज भी कोई आश्चर्य नहीं कि वह सहस्रों नर-रत्न उत्पन्न कर सकती है क्योंकि वह वीरसूः जीवसूः एवं रत्नगर्भा है ।

गुणिगणगणनारम्भे
न पतति कठिनी ससम्भ्रमाद्यस्य ।
तेनाम्बा यदि सुतिनो
वद वन्ध्या कीदृशी भवती ॥

* सु + षद्लृ (बैठना) = सुषदा ॥

आर्य समाज रिलीफ सोसाईटी का उड़ीसा में सेवा कार्य

इस वर्ष बिहार और उड़ीसा में जो प्रलयकारी बाढ़ आया वह सर्व विदित है। उड़ीसा में जो भयङ्कर क्षति हुई है, यह अपूर्णीय है। इन बाढ़ ग्रस्त दुःखी जनता की सेवा करना हम आप सबकी सहायता परम आवश्यक है। बाढ़ पीड़ीत जनता की सेवा "आर्यसमाज रिलीफ़ सोसाईटी" महर्षि दयानन्द भवन रामलीला मैदान नई दिल्ली द्वारा बिहार और उड़ीसा में किया जा रहा है। जैसा कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मुख्य पत्र **सार्वदेशिक साप्ताहिक** वर्ष १० अंक ५१ में बाढ़ पीड़ीत क्षेत्रों में सेवा कार्य का विस्तृत विवरणी प्रकाशित हुई है। आर्य जगत् को विदित होगा।

बाढ़ से विशेष रूप से उड़ीसा के उत्तर पूर्व क्षेत्र प्रभावित हुए है। आर्य समाज रिलीफ़ सोसाईटी उत्कल केन्द्र की ओर से कटक जिला के राजकनिका प्रखंड. बालेश्वर जिला के चांदबाली और धामनगर प्रखंड में ५०० नये तथा २५०० पुराने वस्त्र वितरण किये गये हैं। दुस्थ, अपंग, रूग्ण, एवं असहाय जनता को बचाने के लिये निःशुल्क भोजन केन्द्र खोला गया है; नित्य-प्रति ५०० लोगों कों खिचड़ी बनाकर खिलाया जाता है हर व्यक्ति दिन में एक बार एक किलो वजन का दिया जाता है। निम्नलिखित निःशुल्क भोजन केन्द्र चलाये जा रहे हैं।

१- ग्राम पोस्ट दुबल, वाया धामनगर, ज़िला बालेश्वर
२- सुजान सिंहपुर पोस्ट सोहड़ा जिला बालेश्वर
३- मिश्रपुर पोस्ट कंटापारी वाया दशरथपुर जिला बालेश्वर

उपरोक्त केन्द्रों का उद्घाटन बालेश्वर जिला के जिला पाल (Collector) ज़ी ने किये हैं । आर्य समाज़ केन्द्रीय रिलीफ़-सोसाईटी की ओर से १- श्री स्वामी हरिहरानन्द ज़ी वानप्रस्थी, अहमदाबाद, २- स्वामी ओमानन्द ज़ी तपोबन शान्ति आश्रम उड़ीसा ३- ब्रह्मचोरी रमेश प्रसाद एवं पीतवास ज़ी सेवा कार्य में लगे हैं । ये लोग घूम घूम कर गरीब ज़नता के बीच यथा शक्ति औषध वितरण भी कर रहे हैं ।

उड़ीसा बाढ़ पीड़ीत सहायतार्थं निम्नप्रकार धन प्राप्त हुए हैं ।

१- ५०००) और १२ बन्ड़ल पुराने कपड़े, मन्त्री जी, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली
२- ५०१) मेसर्स जय को० एफ० ट्रस्ट भुवनेश्वर'
३- ५००) रूक्मीणी देवी, वीर सिंह सरोत मटुँगा बम्बई,
४- ५००) मन्त्री जी आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज़्वालापुर सहारन पुर ,
५- ५०१) श्रीमान् सीताराम जी आर्य कलकत्ता
६- २००) सावित्री देवी कौरा आर्य बानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर,
७- १०१) मन्त्री जो ओलावर कालेज राजकनिका कटक,
८- १००) माता कर्त्तार देवी चड्डा, कलकत्ता,
९- १००) इंदर सिंह ज़ी, अपरइंडिया ट्रेड़िंग क० मद्रास,
१०- १००) श्रीमती चन्द्रकान्ता देवी मंत्रीणी आर्य स्त्री समाज़ सहारन पुर,
११- ५०) श्याम सुन्दर लाल जी वर्मा राजामंड़ी आगरा

१२- २०) चन्द्र भूषण लाल जी, देहरादून
१३- १०) माता शुशीला देवी, आर्य बानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर
१४- ५०१) आर्य समाज स्थापना शताब्दी समारोह समिति, कलकत्ता
१५- ५०१) श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल जी, कलकत्ता
१६- ५००) सी० एल० बाहरी चैरीटेबुल ट्रस्ट, शिवपुर हबड़ा
१७- ३००) श्री राजेन्द्र प्रसाद जी, प्रसाद ट्रेडिंग कं० कलकत्ता
१८- २५१) श्रीमती महादेवी चैरिटेबुल ट्रस्ट कलकत्ता
१९- २५०) श्रीमती सावित्री देवी कुमार, कलकत्ता
२०- २०१) श्री हरिशंकर अग्रवाल जी, केनिंग स्ट्रीस्ट कलकत्ता
२१- १०१) श्री सोमदेव गुप्ता जी, कलकत्ता
२२- १०१) श्री खुशहल चन्द्र आर्य, महात्मा गांधीरोड़ कलकत्ता
२३- १०१) श्री महेश प्रसाद ज़ी जायसवाल, कलकत्ता
२४- १०१) श्री अलगू राम वर्मा क़ैलास वोस स्ट्रीट कलकत्ता
२५- १०१) श्रीमती शान्ति देवी, सैनी कलकत्ता
२६- १०१) श्रीमती शुनीती देवी शर्मा, कलकत्ता
२७- १००) श्री डी०सी० मलहोत्रा आर्यसमाज़ सेन्ट्राल ट्रस्टवोर्ड, लायड्सरोड़, मद्रास - ८६
२८- १००) श्रीमती सावित्री मलहोत्रा ,, ,,
२९- १००) श्रीराम जी, ,, ,,
३०- १००) श्री जयदेव जी, ,, ,,
३१- ५१) ,, लक्ष्मण सिंह ज़ी, आर्य समाज कलकत्ता
३२- ५१) ,, गणेश प्रसाद जी आर्य, ,, ,,
३३- ५१) ,, आर्० एन्० आनन्दजी, आर्यसमाज सेन्ट्राल ट्रस्ट-बोर्ड, लायड्स रोड़, मद्रास - ८६
३४- ५१) ,, गयान देवी ग्रोबर ,,
३५- ५०) ,, भी० एन्० बाजाज़् ,,
३६- ५१) ,, कलकत्ता से गुप्त दान

३७- २५ श्री राम यश आर्य, आर्यसमाज कलकत्ता
३८- २१ श्री मेवालाल ज़ी आर्य, ,,
३९- २१ ,, किशोरीलला जी द्विवेदी, कलकत्ता
४०- २१ ,, बनारसी दास जी आरोड़ा ,,
४१- २१ श्रीमती शकुन्तला देवी सैनी ,,
४२- २१ श्रीमती विद्यावती सबरवाल ,,
४३- ११ श्री राम सकल ज़ी आर्य ,,
४४- ११ ,, धर्मपाल जी गुप्ता ,,
४५- ११ ,, जगदीश प्रसाद ज़ी आर्य ,,
४३- ११ ,, रामधनी जायसबाल जी ,,
४७- ११ ,, राम लखन जी ,,
४८- ११ ,, सोना राम जी मेहता ,,
४९- ११ सेठ सत्यनारायण ज़ी ,,
५०- १० श्री रामचरण जी जायसबाल ,,
५१- ५ ,, ननकुराम जी, आर्यसमाज कलकत्ता
५२- ५००) ,, कर्मनारायण जी कपूर, करोलबाग़ दिल्ली- ५

श्री सीताराम जी आर्य, प्रधान, आर्यसमाज कलकत्ता की ओर से बाढ़ पीड़ीतों में बांटने के लिये ५०० थाली प्राप्त हुए जिसका किमत १,५००) रूपया है ।

माता विद्यावती दत्ता जी, कलकत्ता द्वारा ५० नये कपड़े २४ सुती कम्बल और १००० तक पुरानी वस्त्र बाढ़ पीड़ीतों के लिये प्राप्त हुए हैं ।

३० अक्टूबर १९७५ तक सहायता कार्य में २५,०००) रूपये खर्च हो चुके है । कर्त्तव्य की दृष्टि से ऋण लेकर यह कार्य करना पड़ा । सार्वदेशिक सभा के अधिकारी गण एवं आर्य जनता अधिक से अधिक सहायता भेजकर इस महान् धार्मिक कार्य में हाथ बटाये और यश के भागी बनें ।

स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

——

—* ओ३म् *—

रावण जल न सका	सङ्कलित कुञ्ज	शारदी पूर्णिमा
दशहरा		दीपावली
भगवती जागरण		ऋषि निर्वाण

हमारे जीवन में पर्वों का बड़ा महत्व है । ये पर्व हमारी न्यूनताओं केपूरक है । पर्व हमारे जीवन को पूर्ण करते हैं। पर्व का एक अर्थ गांठ, ये पर्व प्रेम की गांठ है, अथवा प्रतिज्ञा की गांठ है। पारस्परिक स्नेह को दृढ़ करने के लिये इन पर्वों पर हम जीवन स्तर को उंच्चा उठाने के लिये व्रत लेते हैं । प्रतिज्ञा करते हैं। आर्यों के रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली और होली इन चार महा पर्वों में दीपावली का स्थान सर्वोपरि है । इसके सन्देश भी एक से एक बढ़कर है ।

हाल ही में दशहरा गया लोग़ बड़ी धूम धाम से इस त्योहार को मनाए । बहु हावेलियाँ छोड़ी बहु आकर्षणीय भेष भूषा में प्रस्तर, मिट्टी निर्मित मूर्ति को सजाए और पूजा किये साथ राम रावण की सम्बन्धता को जोड़कर रावण की प्रतिछबी बनाकर जला डाली पर आज देश में जो अज्ञान, अन्धकार, अपहरण, शीलभंग, रिसवत रूपी रावण मुख फ़ाड़कर हमें निगलने को खड़ा है वह जल न सका । इस बीच भी भगवती जागरण हुई थी लोग बड़े जोर सोर से भगंगती की मूर्ति को जगाये थे पर आज; आवश्यकता हैं नारी जागरण की............

शरद ऋतु की आगमन मे पूर्णमासी भी हम बड़ी चाव से मनाए। जो कुछ भी हो ये पर्व हमने जैसे तैसे मना डाली पर अब दीवाली मनानी है सम्भवत: ये " सन्देश " आपको सन्देश देने से

पहले आप दीवाली की कार्य क्रम में व्यस्त होंगे या दीवाली की मुह काला हो चुकी होगी या तो कुछ फिका पड़ गया होगा । इस घड़ी सन्धि के समय में दीपावली के "सन्देश" आज और कल के लिये नहीं सदा के लिये सर्वमान्य होगा । कर्ण परम्परा से सुना जाता है कि इस दिन मर्यादा पुरुषोत्तम राम रावण पर विजय प्राप्त करके ज़ब अयोध्या लौटे तब अयोध्या में दीप मालाओं से उनकी स्वागत किया गया था जिसे सारा भारत वासी मनाते चले आ रहे हैं पर वास्तव में इसका आरम्भ कब हुआ यह निश्चय कहा नहीं जा सकता । समय समय पर बहु विशिष्ट घटणायें इसके साथ जुड़ती चली आरही हैं। जिससे आज ये पर्व एक महान् पर्व रूप में समस्त भारत में बड़ी धूम धाम से मनया जा रहा है । जिसका पहला सन्देश– सफाई, शुद्धिका, द्वितीय सन्देश– सजावट, तृतींय सन्देश– प्रकाश करना चतुर्थ सन्देश– मधुरता को कामयाव रखते हुये मिष्टान बनाकर बांटना । जिससे अन्तर साफ होकर सद्गुणों का संग्रह हो सके । पञ्चम सन्देश– है यज्ञ द्वारा लक्ष्मी पूजन– जिस घर में ऐश्वर्य की कामनार्थ सभी मूर्त्ति सजाकर नैवैद्य चढ़ाए पर वास्तव में यह लक्ष्मी पूजन ही ऐश्वर्य का यथार्थ पूजन था ।

टङ्कारा में शिवरात्रि की रातको एक हृदय में एक ज्योति जगी. वह धीरे धीरे बढ़ने लगी और उसने उस हृदय मदिन्र में एक दीप जला दिया, जिसके जलने से हृदय मन्दिर का अन्धकार भागने लगा । ज़ब अन्धकार नहीं रहा तो वह समस्त मन्दिर एक दीप का रूप धारण कर लिया चारो ओर प्रकाश फ़ैलने लगा । कहावत है—

"ज़ला हुआ दीप हजारों दीपों को जला देता है" । ठीक इसी प्रकार उस दीप ने अपनी ज्योति से हजारों दीपों को दीप्त कर दिया धीरे धीरे सारा भारत वर्ष में अन्धकार को दूर भगाने वाले दीप टिमटिमाने लगे । ज़ब दीप झिल मिला उठी तो उनके प्रकाश में अनेकों पथ भ्रष्टों को मार्ग मिलने लगा । धीरे धीरे दीपों की माला सी बनने लगी । दीपावली की रात आई लोग कह रहे थे । आज दीवाली है, हम सन्ध्या समय दीप ज़लायेंगे ।

आज कार्तिक बदी अमावास है । इस अन्धेरी रात को दीपों के प्रकाश से दिन के भांति प्रकाशमान करदेंगे । ज़हाँ मिट्टी की दीआ जगमग़ाना चाहते ही थे 'वहाँ ऐसी समय में हजारों दीपों को जलाने वाला वह ज्योति पुञ्ज दीप अपनी ज्योति को चारों और फ़ैलाकर अनेकों दीपों को जलाता हुआ, सदा केलिये बुझ गया। उस दीप बुझते ही चारो ओर सन्नाटा छाग़या और दिव्य रात फ़िर अन्धेरी रात बन गई उस दिव्य ज्योति बुझते ही लोगों की आँख से आँसू वहचल । समाचार पत्र में छपा था वेद सूर्य अस्त हो गया।

वह ज्योति क्या थी ? इसके विषय में लेख़ते वक्त ये लेख़नी की आँसू रुकता नहीं मैं तो अस्तिचर्म निर्मित मानव हूँ मेरे आँसू वा रुकेगी कैसे । ओह ! वह ज्योति थी दया के भण्डार ऋषियों के ऋषि, भारत की ज़्योतिस्तम्भ महर्षि देवदयानन्द सरस्वती जिसकी ज्ञान की दीआ जगा उससे उन्हें शरीर रूपी मन्दिर को प्रकाश मान किये जिससे उन के चेहेरे का तेज़ चमक उठा उस तेज़ से मुग़्ध होकर हजारों हज़ारों पतंगे चारों ओर मण्डारे जिधर ग़ये उधर प्रकाश ही प्रकाश हुआ जिसके कारण लोक कहने लगे– यह ऐसे जादुगर है जिसके दोनों ओर मशाले जलते हैं । वास्तव में इस जादुगर की ज़ादु से कितनी घर वरवाद हुए कितनी घर आवाद हुए वह यहाँ वर्णन करनो कठिन है, लेकिन में लोभ वश ऋषि की कुछ बात यहाँ उधृत कर देना चाहता हूँ ।

एकवार स्वामी ज़ी रात में टहल रहे थे । रात बहुत हो गई थी । सेवक हठात् जाग़ पड़ा और स्वामी ज़ी से पुछा क्या आप सोये नहीं । इतनी रात बीत गई क्या कहीं दर्द तो नहीं है, स्वामी जी बोले हाँ दर्द है, सेवक कहा तो फिर ड़ाक़्टर को बुला लाता हूँ। तब स्वामी ज़ी कहे ये दर्द तुम्हारे ड़ाक्टर की बाहार की चीज है । ड़ाक़्टर इसका इलाज नहीं कर सकते । ये दर्द है देश की दीन हीन विधवाओं का, दलितों का अनाथों का, निर्धनों का, जिसने मुझे बैचन कर रख़ा है । इसलिये मुझे रातभर नींद नहीं आती ।

एक हुकजिगर में उठती है
एक दर्द सा दिल में होता है
हम रात को बैठ के रोते हैं
ज़ब सारा अलम सोता हैं ।।

मेरे देश के आर्य युवकों, ऋषि के भक्तों आज ऋषि के इस पवित्र निर्वाण दिवस में हमें उनके स्वप्न को पूरा करना है । दीवाली की छठा 'सन्देश' दयानन्द जी का है उनकी टिस को समझ कर कार्यान्वित करना जिससे दीवालो को दिन अपने आप बुझ कर सहस्र दीप शिखा को जगाकर चलने वाला ऋषि के जाग बुझ न जाये इससे लोग हम पागल भी कहें ' हम पागल ही सही क्यों कि देश भक्तों दिवानों की स्वर में –

इस पागल दिमागों में भरे हुये अमृतों की लच्छे है
हमें पागल ही रहने दो पागल ही अच्छे हैं ।
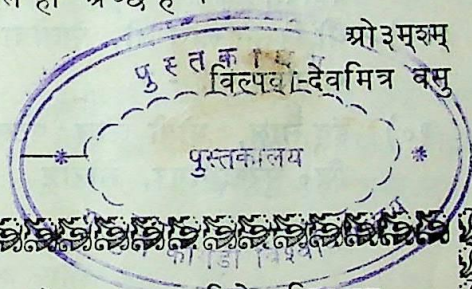
ओ३म्शम्
विल्पव:-देवमित्र वसु

बाढ़ पीड़ितों के लिये प्राप्त दान राशी

२११) आर्य स्त्री समाज कलकत्ता
२०१) आर्य समाज बड़ा बजार, कलकत्तां
१०१) देव करण दास एन्ड सन्स, कलकत्ता
१०१) गोविन्द राम आर्य, एन्ड सन्स, कलकत्ता
१००) पंडित आनन्द प्रिय, जी, आत्मा राम रोड़, करोल बाग, बड़ौदा, गुजरात,
१००) श्री किसन लाल जी, पालीवाल, ११५४ - बाग मुज़फ़्फ़र, खान आगरा - २
१०) इंदू लाल, मोती लाल पटेल जी, वेद मन्दिर सयाला, जि० सुरेन्द्र नगर, सौराष्ट्र

—०—

गुरुकुल शुक्रताल का वार्षिक महोत्सव

१५ से १८ नबम्बर ७५ तक गुरुकुल शुक्रताल जिला मुजफ़्फ़र नगर का एकादश वार्षिक महोत्सव सम्पन्न होगा । महोत्सव में श्री स्वामी ओमानन्द जी गुरुकुल झज्जर, ब्र० कृष्णदत्त जी वरनावा, स्वामी वेदानन्द जी रोपड़, श्री राम गोपाल जी शाल-वाले, प्रधान, सार्वदेशिक, श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री, श्री शिव कुमार जी शास्त्री, संसद सदस्य, पं० सत्यप्रिय जी शास्त्री, हिंसार, श्री वीरेन्द्र वर्मा, कृषि मन्त्री, उत्तर प्रदेश इत्यादि अनेक महात्मा नेता पधारेंगे । इस अवसर पर यजुर्वेद से महायज्ञ एवं योग साधना शिविर का भी आयोजन होगा । ब्रह्मचारियों का व्यायाम प्रदर्शन होगा ।

नोटः— सब आगन्तुक महानुभावों की आवास एवं भोजन की व्यवस्था आश्रम में रहेगी ।

मार्गः— मुजफ्फरनगर से सीधी बस शुक्रताल आती है ।

निवेदक
ब्रह्मचारी वलदेव नैष्ठिक

थियोसफिकाल सोसायटि के मिसेज एनिवेसेण्ट के शब्दों में–
Swami Dayananda was the first to proclaim India for Indians (India in Nation)

महर्षि ने दु:खी, अनाथ, विधवाओं के क्रन्दन सुना । देश में व्यापे (अनेकों) कुरीतियों का अवलोकन कर उनका हृदय द्रवित हो उठा । उन्होंने देश के शहर, ग्राम तथा हर कोने-कोने में भ्रमण करके वैदिक ज्ञान का शङ्ख नाद किया । समाज सुधार के अनेकों कार्य किये । शिक्षा को आर्ष एवं वैदिक रूप से प्रति–पादित करके जन समूह के समक्ष उपस्थित किया, एवं वेदों का सही भाष्य किया ।

समाज सुधार तथा राष्ट्र निर्माण के श्रेष्ठ कार्य में उन्हें अपने जीवन काल में १७ बार विष का पान करना पड़ा । महर्षि अपने ज़ीवन के प्रत्येक क्षण को भारतियों के सर्वाङ्गिण उन्नति के लिये, आर्य सिद्धान्तों को जन ज़ीवन में व्याप्त करने के लिये अत्यन्त परिश्रम के साथ व्यतित करते रहे ।

एक दिन जब सब लोग आलोकोत्सव मनाने में व्यस्त थे, आमोद प्रमोद की लहरें सारे भारत में किलकारियाँ भर रही थी, ठीक उसी दिन संध्या में भारतियों के हृदयों पर वज्र पात करके अजमेर नगर में प्रभुको स्मरण करते हुये कि "हे प्रभू ! तेरी इच्छा पूर्ण हो" के उद्गार के साथ महर्षि ने अपने जीवन लीला समाप्त कर दिया । अपनी दिव्य आत्मा को अनन्त आकाश में लीन कर दिया । वह था १८८३ का दीपावली का दिन । ज़ो दिवस इतिहास के स्वर्ण पृष्ठपर सदैव अंकित रहेग़ा ।

आईये इस महान् निर्वाण दिवस को सदैव जाज्वल्यमान रखने के लिये प्रतिज्ञा ले: —कि ऋषि के द्वारा निर्देशित आदर्श मार्ग पर चलते हुये और अपने कर्त्तव्य के प्रति सदैव जागरुक रहकर संसार में मानवता तथा वैदिक संस्कृति सभ्यता एवं शिक्षा के प्रचार का कार्य अखण्डित रखें और वेदों का सन्देश विश्व के हर कोने–कोने तक पहुँचायें ।

गुलाब पुष्प से भी कोमल हृदय वाले उस अपार करुणा के देवता, युगद्रष्टा, के चरणों में हृदय कुञ्ज से श्रद्धा सुमन अर्पित है ।

विजया दशमी और नवदुर्गा पूजा

ले० सञ्जय

नवदुर्गा और विजय दशमी का त्यौहार भारत में सर्वत्र ही मनाया जाता है। नवदुर्गा का उत्सव बंगला और उड़ीसा में बलिदान आदिविधियाँ तान्त्रिक रीति से सम्पन्न होती है। विजय दशमी के दिन ब्राह्मण अपनी पुस्तकों का पूजन करते हैं, वैश्य अपने बहीखातों का और क्षत्रिय अपने शस्त्रों का। इन दिनों कहीं कहीं रामलीलाओं के नाटक भी होते हैं। राम-रावण युद्ध होता है और विजय दशमी के दिन रावण मारा जाता है। रामलीलायें प्राय संयुक्त प्रान्त के नगरों में ही होती है।

इन दिनों दुर्गा सप्तशती का पाठ किया जाता है। यह मार्कण्डेय पुराण के कुछ अध्याय है। उसमें निम्न कथा है:—

एक समय महिषासुर नामक राक्षस इतना प्रबल हो गया कि उसने इन्द्र सहित देवताओं को परास्त कर स्वर्ग से निकाल दिया, तब सब देवता ब्रह्माजी को साथ लेकर भगवान शंकर और विष्णु के सेवा में उपस्थित हुए। महिषासुर के अत्याचारों और अपनी आपदाओं का वर्णन देवताओं ने उक्त महादेवों के सम्मुख रखा। इसको सुनते ही हरि-हर दोनों देवताओं के मुख से एक तेज निकला। तेज के निकलते ही इन्द्रादिक अन्य सभी देवताओं में से तेज निकला। यह सब तेज एक स्थान पर पुञ्जीभूत हो गया। यही तेज अष्टभुजी अजेय शक्तिशालिनी भगवती दुर्गा के रूप में परिणत हो गया। अब सब देवताओं ने अपने अपने आयुध और शक्तियाँ दुर्गा को सौंप दी। महिषासुर मारा गया और देवों को स्वतन्त्रता मिली।

अब विचार करना चाहिये कि इस उत्सव का वास्तविक रहस्य क्या है ? और श्री दुर्गा देवी वस्तुत: क्या है ?

दुर्गा सप्तशती के अन्त में एक स्तोत्र वैदिक देवी सूक्त नामक भी है। यह सूक्त ऋग्वेद मं० १०, सू० १२५ का है। इस सूक्त से ही दुर्गा कथा का सब रहस्य स्पष्ट हो जाता है। उस सूक्त में से एक मन्त्र को यहाँ पर उद्धत करता हूँ :—

ओं अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियनाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥

वेद काव्य है, यहतो सर्वमान्य है और काव्य वही उच्च कोटी के होता है, जिसमें व्यग्यार्थ अधिक हो। व्यग्यार्थ की प्रतीति के लिये यहाँ "राष्ट्री" शब्द विद्यमान है। इस शब्द से पूरा सूक्त प्रकाशित हो उठता है। अजेय, सिंहवाहिनी, अष्टभूजा, भगवती दुर्गा क्या है ? यह एक ही शब्द वता देता है। 'संगमनी वसूनाम्" इस भेदक विशेषण ने तो अर्थ पूर्ण रूप से चमका दिया। कैसी राष्ट्रशक्ति वसुओं, मनुष्यों को संगठित करनेवाली राष्ट्रशक्ति यह जनतन्त्र विधान सभा (Constituent assembly) नहीं तो और क्या है। राष्ट्र की संगठन शक्ति ही दुर्गा है।

(क्रमशः)

गुरुकुल वेदव्यास गोशाला में गोपाष्टमी

धर्मप्रेमी सज्जनों !

आपको जानकर अपार हर्ष होगा कि प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी आपके प्रिय गुरुकुल वेदव्यास गोशाला में गोपाष्टमी का पर्व कार्तिक शुक्ल अष्टमी संबत् २०३२ तदनुसार ११ नवम्बर १९७५ मंगलबार को समारोह के साथ मनाया जा रहा है।

आपसे हार्दिक अनुरोध है कि कृपया आप सपरिवार एवं इष्ट मित्रों के सहित उपर्युक्त अवसरपर यथा समय सम्मिलित होकर अनुगृहीत करें और उत्सव की शोभा को बढ़ावें।

सम्पादक

GURUKUL VEDIC ASHRAM

(BANBASI BIDYA SABHA)

Vedvyas, Rourkela – 4

Balance Sheet as at 31st. March 1975

Liabilities	Figures for the current year	
GENERAL FUND ACCOUNT		
As per Last Balance Sheet	2,49,816.93	
Less :- Excess Expenditure over Income during the year.	13.18	2,49,803.75
LOAN ACCOUNT :- (Subject to confirmation by the parties)		46,874.64
OUT STANDING LIABILITIES :-		
[As per list :- Subject to confirmation by the parties]		5,068.09
		3,01,746.48

Assets	Figures for the current year	
Land		99,000.00
Building		84,476.59
Construction of staff Quarter		2,445.18
Construction of Boundary		25,000.00
Cycle		1,203.30
Library Books		
As per last Balance sheet.	5,660.85	
Additions during the year.	643 73	6,304.58
Radio		146.50
Tape Record		1,000.00
Musical Instruments		1,421.00
Furniture and Fixtures :		
As per last Balance Sheet.	1,000.00	
Addition during the year	2,196.50	3,196.50
Utensils and other Dead Stock		
As per last balance sheet	6,006.77	
Addition during the year	1,077.36	7,084.13
J e e p		19,094.81
Saleable Publication		685.00
Electric Installation :		
As per last Balance Sheet	3,895.69	
Addition during the year	507.12	4,402 81
Advance Recoverable		
[Subject to confirmation by the Parties]		
As per list		42,249.67
Security Deposit with (O S.E B)		80.00
Closing Stock valued at cost		
Rice, Atta and Dal		2,689.17
Cash and Bank Balance		
Cash in hand	29,99	
With Punjab National Bank, Rkl.	41,75	1,267.24
With Canara Bank, Rourkela	1,195,50	
		3,01,746.48

GURUKUL VEDIC ASHRAM

(BANBASI BIDYA SABHA)

Vedvyas, Rourkela – 4

Income & Expenditure Account for the year ending 31st. March 1975

Expenditure	Figures for the current year Rs.	Rs.
To Messing Expenses [net]		28,498.99
,, Printing, stationery & postage		1,827 10
,, Travelling Expences [including maintenance of Jeep]		7,054.49
,, Salary of Establishment		
Teaching staff	9,575.00	
Others	4,605.50	14,180.50
,, Repairs and Renewals :		
Cycle	345.29	
Building	1,251.08	
well	441.24	
Boundary	165:39	
Type writer	40.00	2,383.75
Kitchen Garden Expenses		1,668.37
,, Audit fees		400.00
,, Dress for children		3,013.99
,, Lighting & cleaning expenses		2,357.60
,, Bank charges		32 00
,, Miscellaneous Expenses		1,171 09
,, Donation		7,643.40
,, Scholarship to students		181 40
,, Carriage, Freight & Transport		556.90
,, Writeoff Account : (Live Stock)		
,, Medical charges		2,853-00
,, Home Articles		538-80
,, News papers & periodicals		673-55
,, Cultural programme & prizes		77-30
,, Examination fees		633-20
,, Salary of pracharak		9-50
,, Excess of Income over Expenditure		3,097-20
		...
		78,852-13

Income		Figures for the current year Rs.
By Subscription		36,244-89
,, Donation		37,144-86
,, Grant from Government of India Ministry of Education & Social Welfare, New Delhi		2,000-00
,, Grant from Government of Orissa (from Department of Cultural Affairs)		...
,, Sale of Agricultural Produce		352-00
,, Interest on Savings Bank		...
,, Received from Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha, New Delhi,		
Balance on 1-4-74	397-20	
Received during the year	3,300-00	
	3,697-20	
Less : Unspent Balance	600-00	3,097-20
,, Excess of Expenditure over Income carried to Balance Sheet.		13-18
		78,852-13

BANAWASI SANDESH October 1975 Regd. No 618

प्रकाशक— स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती द्वारा शान्ति आश्रम प्रेस, गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास, राउरकेला - ४ में मुद्रित ॥

- ओ३म् -

वनवासी संदेश

वनवासी सांस्कृतिक समिति वेदव्यास, राउरकेला-४
(ओडिसा) का मासिक मुख पत्र

संस्थापक- स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

वेदोऽखिलो धर्म--मूलम्

वेद का आज्ञा पालें

ओ३म् कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे ।
मृड़ीकायोरुचक्षसम् ॥ (ऋ० म० १। सू० २५। म० ५)

भाषानुवाद:— जिस वरुण (अत्यन्त वरणीय) परमात्मा का वर्णन वेदों में नाना प्रकार से किया है तथा जो समस्त विश्व का संचालक हैं, उस ब्रह्म की आज्ञा पालन करके हम लोग अत्यन्त आनन्द प्राप्त करने के लिये सब राज्य लक्ष्मी को प्राप्त करने में समर्थ होंगे ।

For the sake of happiness when shall we be able to attain self-government by sarving varuna (All rugulating god) who is the leading power and who has been variously described in the vedas ?

सम्पादक
पं० श्री आत्मानन्द शास्त्री

सह सम्पादक
पं० श्री देशबन्धुविद्यावाचस्पति

* ओ३म् *

उद्देश्य

प्रथम— वनवासी संस्कृति की रक्षा

द्वितीय— वनवासी शिक्षा

तृतीय— वनवासी समाज संगठन व उन्नति

विषय—सूची

नवम्बर १९७५

* ओ३म् *

वनवासी संदेश

उत्कल जनता संस्कृति रक्षा वद्धकटिस्तमः स्तोमहृतिदेशः
गुरुकुल सुपानपोषादुदयति वनवासी संदेशः ॥
यो भ्रष्ट ख्रीष्टमत दीक्षित मञ्जलोकम्
संस्कृत्य दूरयति तद्धृदयांधकारम् ॥
श्री वेदव्यास सुगुरो कुल सन्निवेशः
सम्पूर्वादेरुदयते वनवासी देशः ॥

वर्ष ९ अंक ११	नवम्बर १९७५	वार्षिक मूल्य ५ रु एक प्रति ५० पैसे

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी का भव्य समारोह

वलदेव वेदवागीश

आर्यसमाज ने विगत १०० वर्षों से संसारभर में जिस रूप से सक्रीय सेवा की है वह किसी से छुपी हुई नहीं है ।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि देव दयानन्द जी ने इस समाज को स्थापना करके लोगों के अन्दर जिस प्रकार प्रेरणा प्रवाह किया, और जिसके फ़ल स्वरूप, भारतीय संस्कृति के रक्षार्थ राष्ट्र में व्यापी कुरितियाँ, अन्धविश्वास, कुसंस्कार को दूर करने के लिये दयानन्द के वीर सैनिकों ने तुफान के सदृश जिस प्रकार कार्य किया और पूर्ण निर्भीक भाव से विरोधियों के छूरों, गोलियों को सीनातानकर झेला, वह प्रेरणा भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षर में उद्धृत है ।

सौ वर्ष कें अन्दर इस प्रकार तेजी से संसार में अपनी धबल कीर्त्ति को व्याप्त कर अपना भविष्य उज्वल करना मैं समझता हूं आर्य समाज का यह एक सन्तोष प्रद कार्य है

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर

अब सार्वदेशिक सभा दिल्ल के विज्ञापनानुसार आर्य समाज स्थापना शताद्बि समारोह आगामी २४से २८ दिसम्वर १९७५ को नई दिल्ली स्थित रामलींला मैदान के विशाल प्रांगण मे भव्य रूप से मनाया जा रहा है जिसके लिये विदेशों से अनेक समाज निष्ठ अतिथि दिल्ली आ रहे है ।

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि इस समारोह की अध्यक्षता मोरीशस के प्रधान मन्त्री **श्री डा० सर शिव साग़र** राम गुलाम ज़ी करेंगे । शाहापुराधीश की यज्ञशाला (राज़ स्थान) में से महर्षि दयानन्द जी के द्वारा प्रज़्वलित यज्ञाग्नि शताद्बि कें महायज्ञार्थ दिल्ली लायी जायगी और महायज्ञ में प्रज़्वलित की जायगी । इस महा यज्ञ के संयो जक सोम्यमूर्ति पू० आचार्य कृष्ण ज़ीहोंगे , और ब्रह्मापद को तपोनिष्ठ , प्रकाण्ड विद्वान सन्यासी, पू० स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी (संस्थापक गुरूकुल एटा उ०प्र०)अलंकृत करेंगे ।

तपस्वी , कर्मयोगी स्वामी ओमानन्द जी (गुरूकुल झज्झर,- हरयाणा) ध्वजा रोहण करेंगे ।

इस महा पर्व पर तपोमूर्त्ति, प्रसिद्ध आर्य सन्यासी पूज्यपाद श्री आनन्द स्वामी जी आर्शीवाद प्रदान करगे ।

इस समारोह में , विश्वधर्म सम्मेंलन , अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन , शिक्षा सम्मेलन , गोरक्षा सम्मेलन , तथा विद्वत् सम्मेलन' आदि कें साथ-साथ आर्य समाज के भावी विस्तृत कार्य क्रम के निर्माण की योजनायें , सभा कें नेतृबृन्द यथा प्रधान जी , मन्त्री ज़ी आदि प्रकाश करेंगे ।

वेदोपदेश

ओ३म् न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णां यत्पार्य्ये दिवि ।।

सा० उ० ४।४।३।२

अर्थः— (दुष्टुतिः) बुरी कीर्त्तिवाला, दुष्ट साधनोंवाला, (द्रविणोदेषु) धन दाताओं में (न) नहीं (शस्यते) गिना जाता, अच्छा माना जाता । (स्रेधन्तम्) हिंसक को (रयिः) धन, मोक्ष-धन, (न) नहीं (नशत्) प्राप्त होता है । हे (मघवन्) पूजनीय धन-वन् भगवन् ! (मावते) मेरे जैसे के लिये (पार्य्ये) पार पाने योग्य (दिवि) प्रकाशावस्था में (देष्णां) देने योग्य (यत्) जो धन है, (सुशक्तिः) उत्तम शक्तिवाला मनुष्य (इत्) ही (तुभ्यम्) तेरेलिये (उसको प्राप्त करता है) ।

इसमन्त्र में जिस धन की चर्चा है, वह साधारण धन-धान्य मकान् पशु आदि नहीं । वरन् शान्तिरूप धन है। वेद में कहा भी है:— शं पदम् मघं रयीषिणे (साम० संहिता) धनाभिलाषी के लिये शान्ति-रूपी धन ही पद= प्राप्त करने योग्य है । लौकिक धन-धान्य तो चोर ड़ाकुओं के पास भी होता है । वैसे भी धन की अधिक मात्रा प्रायः अन्याय अत्याचार से ही कमाई जाती है । किन्तु इस धन से बुद्धिमानों की तृप्ति नहीं होती, याज्ञवल्क्य जब घर छोड़कर संन्यासी बनने लगे, तो उन्होंने धर्म पत्नी मैत्रेयी से कहा-आ-मैत्रेयी, तेरा बटवारा कर दें । इस पर मैत्रेयी ने पूछा—

यन्नु म इयं भोगोः सर्वापृथिवी वित्तेन पूर्णास्यात्, स्यान्नावहं तेनामृत । ।। बृहदा० ३४।५ ।।

क्या भगवन् ! यदि यह धन धान्य से पूर्ण सम्पूर्ण पृथिवी मेरी हो जाये तो क्या मैं अमृत हो जाऊंगी ?

सत्यदर्शी यथार्थवक्ता याज्ञावल्क्य उत्तर देते हैं—
नेति नेती......यथैवोपकरणावतां जीवितं तथैव ते जीवनं जीवितं स्याद् अमृतत्वाया नाशास्ती वित्तेन...... ॥ वृहदा० ४।५।३ ॥

नहीं, नहीं...... जैसे धन धान्य समान वालों का जीवन होता है, वैसे ही तेरा जीवन भी होगा। अमृतत्व की= मुक्ति की आशा= संभावना धन से नहीं हो सकती।

मैत्रेयी ने इस पर कहा—
येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्या यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूही।
॥ वृहदा० ४।५।४ ॥

जिससे मुक्त न हो सकूँ, उससे मेरा क्या प्रयोजन? महाराज मोक्ष का जो भी साधन आप जानते हैं, वही मुझे बताईये। धन के प्रति कितनी ग्लानि है। कितना गहरा निर्वेद है। सचमुच मोहाभीलाषी, शान्ति की कामना वाला इस चंचल धन को कैसे चाहेगा। जिसके सम्बन्ध में वेद स्वयं कहता है—

ओहि वर्त्तन्ते रथ्येन चक्राभ्यमुन्यमुप तिष्ठन्त रायः।
(ऋ० १०।११।७।५)

अरे धन तो सचमुच एक से दुसरे के पास जाते हुए रथ के चक्रों की भांति अदलते बदलते रहते हैं।

ऐसे विनश्वर भौतिक धन में अविनाशी के अभिलाषी की अभिलाषा कैसी। इसी वास्ते प्रकृत मन्त्र में कहा है—

न दुष्टुतिर्द्र विषोदेषु शस्यते= दुष्ट साधनों वाला मनुष्य धन-दाताओं नहीं गिना जाता।

जब उसके पास है नहीं' तब देगा कहाँ से, वेद पाने की बात न कहकर देने की कहता है। क्योंकि वेद दान की महत्ता का प्रचारक है। ऋग्वेद ने तो स्पष्ट कह दिया—

न दुष्टुती मर्त्यो विन्दतेवसु ॥ ऋ० ७।३२।२१ ॥

मनुष्य दुष्ट उपायों से धन नहीं प्राप्त कर सकता। दूसरे चरणों में बहुत स्पष्ट कहा है—

न स्रेन्धतं रयिर्नशत्=हिंसक भी धन प्राप्त नहीं कर सकता, कितना भी शास्त्रवेत्ता क्यों न हों, जब तक हिंसादि दुष्ट उपायों को नहीं छोड़ता, तब तक शान्ति धन, आत्म सम्पत्ति, को नहीं प्राप्त कर सकता। यम ने मार्मिक शब्दों में नचिकेता को समझाया था.........

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः नाशान्तमानसो-वापि ज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ कठो० २।२२ ॥

जो दुराचारों से नहीं हटा, जो चञ्चल है, जो प्रमादी है, सावधान नहीं है जिसके मन में क्षोभ है, वह बुद्धि से, ज्ञान से, इस आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।

आत्माज्ञान के बिना शान्ति नहीं। जब प्रमाद तथा अनाचार से आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। तब उसकी प्राप्ति के बाद होने वाली शान्ति-संपत्ति की प्राप्ति की आशा कैसे की जा सकती है।

वेद कहता है, देने योग्य धन को कोई शक्ति शाली ही प्रभु समर्पण की भावना से प्राप्त कर सकता है।

बलहीन का संसार में ही ठिकाना नहीं; परलोक की तो बात ही क्या? वहां के लिये उपर्युक्त धन कमाने को बड़ा बल चाहिये।

—०—

सं
पा
द
की
य

दीपमालिका का सन्देश

हिन्दुओं (आर्यों)! पौरुष की पुँजीभूत ज़्वालाओ! जागो ब्रह्मपुत्र की उफ़नती हुई धारायें आज तुम्हें चेतावनियां दे रही है, नागराज़ हिमालय की गगनचुम्बी चोटियां आज तुम्हें ललकार रही है। स्मरण रखो, तुम्हारी निद्रा मानवता की मृत्यु है और तुम्हारा जागरण ही जीवन है, संजीवनी शक्ति है।

मानवता के पुजारियों! दीपावली पर ब्रत ग्रहण कर...... उड़ीसा भर में अशिक्षित वनवासो और अनुसूचित......बच्चों के एक मात्र निःशुल्क शिक्षा केन्द्र—

गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास
की
दिल खोलकर सहायता प्रदान करो

उठो आर्यवीरो (हिन्दुओं)! अब बहुत सो चुके।
सुध है तुम्हें अपना क्या-क्या खो चुके ?

आर्यों! क्या आप यही चाहते हैं कि फिर से और एक पाकिस्तान भारत में बन जाय? क्या आप अपनी मातृभूमि के यों ही टुकड़े टुकड़े करवाते रहोगे। क्या आपको इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं कि आपके भाई अपना धर्म छोड़कर विधर्मी क्यों होते जा रहे हैं? क्या आपको ज्ञान नहीं कि आपके देश में अमेरिका आदि साम्राज्यवादि देशों के द्वारा किस प्रकार आपके धर्म और ज़ाति का सर्वनाश किया जा रहा है? यदि आप अब भी आँखें खोलकर अपने लाभ-हानि को नहीं देखेंगे—

विचार नहीं करेंगे तथा अराष्ट्रीय प्रचार को रोकने का प्रयत्न नहीं करेंगे तो विश्वास रखिये कि शीघ्र ही आपके लाखों भाई विधर्मी बन जायेंगे । इसलिये पारस्परिक सभी भेदभावों को भुल कर अराष्ट्रीय प्रचार के विरुद्ध एक मोर्चा बनाईये और अपने भाइयों को बिधर्मी होने से बचाइये ।

मानवता के अड़ीग प्रहरियों ! उड़ीसा प्रान्त सबसे पिछड़ा हुआ प्रान्त है, जहाँ ८० प्रतिशत वनवासी (आदिवासी) रहते हैं । वे असहाय होकर ठोकरे खा रहे हैं । न रहने के लिये मकान है, न तन ढ़ाकने के लिये वस्त्र और न खाने के लिये अनाज है । ऐसी परिस्थिति में आदिवासि लोग ने दिशा शून्य होकर इधर उधर भटक रहे हैं । जब उन्हें उदर ज्वाला को शान्त करने के लिये अन्न ही नहीं मिलता है, तो अपना जीवन अति कदाकार भाव से व्यतीत कर रहे हैं । विंश शताब्दी में भी ये लोग पशुओं की तरह रहते हैं । अविद्या के कारण अपना हिता-हित का भी ज्ञान नहीं रखतें हैं । जिस के कारण अन्य सम्प्रदाय के लोग़ इन्हें शोषण कर रहे हैं ।

उड़ीसा के इन भूले-भटके भाईयों को अपने अस्तित्व के ज्ञान करने के लिये पूज़्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी उडीसा में गुरुकुल, मिड़िलस्कूल, हाईस्कूल, आश्रम, रात्रि पाठशाला का जाल विछाये हुए हैं और आगे भी करते जा रहे हैं ।आदिवासियों कें सर्बबिध उन्नति के लिये पूज्य स्वामी जी महाराज ने अपना सर्वस्व अर्पण किया हुआ है । आपके सत्प्रयत्नों से उड़ीसा क़े आदिवासी अञ्चल में ५ गुरुकुल खोले हुए हैं । (गुरुकुल बेदव्यास, गुरुकुल आमसेना, कन्या गुरुकुल तनरड़ा, गुरुकुल भोजपुर और गुरुकुल दशरथपुर) । इन गुरुकुलों में वनवासी (आदिवासी) बच्चों कें लिये निःशुल्क भोजन, वस्त्र एवं पुस्तक आदि का सम्पूर्ण व्यय गुरुकुल ही बहन करता है । इन सब गुरुकुलों का मुख्यकेन्द्र गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास है ।

महंगाई सिरतोड़ है- इलाक़ा अत्यन्त निर्धन है-

इनके साथ इस वर्ष प्रलयंकरी बाढ़ के कारण लाखों मनुष्य वेघर

हो गये, हजारों बह गये, सारा फ़सल नष्ट हो गया, अतः इस महान् एवं पवित्र कार्य केलिये कितनी प्रचुर मात्रा में धन की आवश्यकता है यह तो आप ही सोच सकते हैं।

अब हिन्दु मात्र का कर्त्तव्य है कि वह अपने भाइयों को विधर्मी होने से बचाने तथा अपने धर्म को छोड़कर गये हुओं को लौटाने के पवित्र कार्य में तन, मन, धन, से सहायता दें। याद रखिये कि यदि अब भी आप सज़ग होकर विधर्मियों के इस आन्दोलन को नहीं रोकेंगे तो राम और कृष्ण की इस पवित्र भूमि में ही राम और कृष्ण का नाम लेवा और पानी देवा नहीं मिलेगा और इसका पाप आपके ही सिर पर पड़ेगा।

अतः दीपावली पर्व हमें यह सन्देश दे रहा है कि हे लक्ष्मी-पूजकों! पृथ्वी में स्थित नीच मार्ग से धन सम्पत्ति प्राप्त कारियों को विष्णु भगवान भी क्षमा नहीं करता। जो मनुष्य इतर मनुष्यों को ऊपर उठाने के लिये प्रयत्न नहीं करता है, नीचे ही रहे, ऐसी भावना रखता है, जो केवल भोगैश्वर्य प्रसक्त चित्त रहता है वह "केवलाघो भवति क़ेवलादि" वेद क़े कथनानुसार पापी कहलाता है। क़्या विष्णुप्रिया उनक़े ऊपर प्रसन्न होकर वर देकर उनको उद्धार करेगी? क़्यों नहीं।

पुराणों में वर्णन मिलता है कि विष्णु भगवान के दो पत्नियाँ हैं। लक्ष्मी और सरस्वती। लक्ष्मी उलुक वाहिनी और सरस्वती हंस वाहिनी है। उलुक सदा अन्धकार में रहता है। अतः दीपावली का प्रकाश यह सन्देश दे रहा है कि हे प्रकाश पुँज क़े पुज़ारियों! उठो! अपने कर्त्तव्य को पहचानो! कुछ खबर है कि भारत में अविद्या, दम्भ, ढ़ोंग और पाखण्ड उग्र रूप में उभर रहा है— और हम सो रहे हैं। उठो, चेतो सजग़ होवो! ध्यान रखिये अगर हिन्दु समाज संगठित होकर हमें सहयोग़ नहीं दिया तो पाकिस्तान की भांति भारत में पापीस्तान भी बन जायगा और तब आपको हाथ मल मल कर पछताना पड़ेग़ा। अतः सचेत होकर अराष्ट्रीय प्रचार को रोकने क़े लिये किये जा रहे ठोस कार्य में— गुरुकुल वेदव्यास की सहायता कर अपने धन का सदुपयोग करे एवं पुण्य लाभ प्राप्त करें।

पं० देशवन्धु

—०—

ज्योतिषसुधा—३

हमारे मध्यकालीन ज्योतिषियों ने सात ग्रहों तक ही इस सूर्य का राज्य माना है, और उन सात ग्रहों का आविष्कार करके उनके नाम रख दिये। हमारे ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थ "सूर्य-सिद्धान्त" में इनकी स्थिति इस प्रकार मानी है। जो ग्रह पृथ्वी के पास है उसका नाम चन्द्रमा, बुध, शुक्र, रवि, मंगल, गुरु, (बृहस्पति), शनि यह सात ग्रह हैं, किन्तु आधुनिक तथा पाश्चात्य ज्योतिषविद् चन्द्रमा को ग्रह नहीं मानते उसे वह लोग पृथ्वी का उपग्रह ही मानते हैं और इन नवीन ज्योतिषियों की खोज के अनुसार ग्रहों की स्थिति इस प्रकार है, यह लोग सूर्य को ग्रहों के मध्य में मानकर वर्णन करते हैं जो ग्रह सूर्य के अति निकट है, उसे बुध, उसके पश्चात् शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति शनि, यूरेन्स (वरुण) नैपच्युन (इन्द्र) और प्लैटो, (यम), नाम से पुकारते हैं। जिस प्रकार यह लोग पृथ्वी का उपग्रह चन्द्रमा मानते, उसी प्रकार अन्य ग्रहों के भी चन्द्रमा हैं। हमारी पृथ्वी तो रात्रि को एक ही चन्द्रमा से सुशोभित होती हैं, किन्तु उसी प्रकार अन्य ग्रहों के कई चन्द्रमा उन्हें सुशोभित करते हैं। जिस प्रकार आधुनिक ज़्योतिषियों की खोज़ानुसार ग्रह उपग्रहों की संख्या ३५ निश्चित की जा चुकी हैं, इसी आधुनिक को दृष्टि में रखते हुए ज़ब वेद की ओर देखते हैं तो हमें ज्योतिष सम्बन्धी ऋग्वेद के १० वें मण्डल के ८६ वें सूक्त के एक मंत्र में उपग्रहों के सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा हुआ मिलता है—

उक्ष्णों हि में पञ्चदश साक़ं पचन्ति विंशतिम्।
उताहनद्मि पीवइदुभाकुक्षी पृणन्ति में विश्वस्मादिन्द्रं उत्तर॥

इस मन्त्र में इन्द्र और इन्द्राणी का परस्पर संवाद है जिसमें इन्द्र इन्द्राणी से कहता है कि हे इन्द्राणी! मेरे ख़गोल रूप उदर को भरने के लिये पन्दरह के साथ बीस अर्थात् ३५ ग्रह उपग्रहों

को ग्रहण करता हूँ। और वह ग्रह उपग्रह मेरे दोनों गोलार्धों को पूर्ण करते हैं। इस वेद मन्त्र द्वारा स्पष्ट हो ज़ाता है कि ईश्वर ने मनुष्य के लिये सृष्टि के आदि में अपनी वाणी में ज्ञान दिया है। आप इस प्रकार की बातें पढ़कर आश्चर्य में होंगे कि ईश्वर ने इस ब्रह्माण्ड को किस प्रकार रचा। अब आपको यह ज्ञान हो गया कि हमारे ब्रह्माण्ड में ३५ सदस्य हैं। आओ अब हम इन ३५ ग्रह उपग्रहों पर विचार करलें। ये क्या वस्तुएँ हैं?

:--- ग्रह और उपग्रह क्या हैं :---

जिस प्रकार हमारी पृथ्वी इस सूर्य की प्रदक्षिणा कर रही है, उसी प्रकार अन्य ग्रह भी अपनी कक्षा में सूर्य की प्रदक्षिणा कर रहे है। किन्तु प्रत्येक ग्रह स्व अक्ष पर घूमता हुआ सूर्य की प्रदक्षिणा कर रहा है। और सौर मण्डल के साथ ही साथ वह ध्रुव की भी प्रदक्षिणा कर रहा है। ग्रह जब स्व अक्ष पर घूमता है, तभी दिन रात्रि और ऋतुओं का निर्माण होता है, जो ग़र्मी, वर्षा, सर्दी का कारण होती है।

इन ग्रहों को ऐसी विचित्रता से इनके निर्माता ने बाँधा है कि वह कभी भी एक दूसरे के न अक्ष से टकराते है, और न एक दूसरे की परिधि में जाते हैं, अगर ये ग्रह अपने पथ पर न चलें तो शायद एक दूसरे से टकराकर चूर चूर हो जावें। किन्तु इस सृष्टि के निर्माता ने प्रत्येक वस्तु को नियम में जकड रखा है। इसी प्रकार ग्रह भी स्व कक्षा में स्वतन्त्रता पूर्वक सूर्य के चारों ओर घूम रहे हैं जिस प्रकार पृथ्वी २४ घन्टे में स्व अक्ष पर घूम लेती है, उसी प्रकार सभी ग्रह स्व अक्ष की परिधि के अनुसार निश्चित समय में अपने अपने अक्ष का चक्कर लगा लेते हैं। जिस प्रकार हमारी पृथ्वी एक पिण्ड है उसी प्रकार दूसरे ग्रह भी पिण्ड के रूप में है।

उपग्रहों का दूसरा नाम चन्द्रमा है। प्रत्येक ग्रह के चन्द्रमा ग्रह के अति समीप रहने से बड़े आकार वाला

दिखाई देता है। जिस प्रकार ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं, उसी प्रकार चन्द्रमा भी अपने अपने ग्रहों के चारों ओर घूमते हैं, जिस प्रकार पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य की प्रदक्षिणा करती है, उसी प्रकार चन्द्रमा स्व अक्षपर चक्कर लगाता हुआ अपने रक्षक ग्रह की प्रदक्षिणा करता है और ग्रह के साथ सूर्य व ध्रुव की भी प्रदक्षिणा करनी पड़ती है। इस विचित्र राज्य के नियम का कोई भी उलंघन नहीं कर सकता है और न कोई एक पल भर विश्राम ही कर सकता है। प्रत्येक ग्रह उपग्रह अपने बनाये नियम के अनुसार अपने ग्रहपति की आज्ञा का पालन करते रहते है। जिस प्रकार हमारी पृथ्वी पर एक चन्द्रमा अर्थात् एक उपग्रह प्रतिदिन रात्रि को अपनी ठण्डी चाँदनी से सुशोभित कर प्रत्येक मनुष्य के चित्त को प्रसन्न करता है।

उसी प्रकार जिन ग्रहों के दो, तीन, चार या आठ, दस चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश द्वारा प्रकाशित होकर अपने शीतल प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचाता है। उस परमपिता ओम् के कैसे सुन्दर नियम हैं कि दिन में सूर्य द्वारा प्रकाश देकर सारे संसार के प्राणियों को कार्य में जुटाने का आदेश देता है, उस प्रकाश व गर्मी के द्वारा औषधियां पैदा करता है, पकाता है, समय पर जल वर्षा कर जल से सींचता है, जिन औषधियों को खाकर हम जीवित रहते हैं और रात्रि को उपग्रहों के द्वारा शीतल प्रकाश से सब संसार को शांति मिलती है। इसीलिए हमें भी उसके बनाये नियमों का उलंघन नहीं करना चाहिए। क्योंकि जब जड़ पदार्थ ही उसके नियम को नहीं तोड़ते और एक पल के लिये भी विश्राम नहीं करते, हर समय स्व गति के अनुसार नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह आदि सभी घूमते हैं। उसी नियम को अपना आदर्श बनाकर प्रत्येक मनुष्य को अपने अपने कार्य में लगे रहना चाहिए। आओ अब फ़िर अपने विषय पर आवे। अबतक आप लोगों के सामने ग्रह उपग्रहों की सामूहिक रूप से व्याख्या की गई है। इसके पश्चात् उन ग्रहों व उपग्रहों में से एक एक कीं पृथक् पृथक् दशाओं का वर्णन करें। सर्व प्रथम अपने इस ब्रह्माण्ड के राजा अर्थात् सूर्य पिण्ड का वर्णन करेगें।

-: सूर्य :-

सूर्य क्या है, किन किन पदार्थों के द्वारा इसका निर्माण हुआ। इन सब बातों को लक्ष्य में रखकर वर्त्तमान समय के वैज्ञानिक लोग सूर्य के विषय में नित्य खोज कर रहे हैं। और इस विषय में प्राचीन लोगों ने भी नई नई खोज निकाली थी। किन्तु अन्त में सभी को इसी सिद्धान्त पर आविष्कार किया हुआ सृष्टि के आदि में जो वेद ज्ञान हमें परम पिता ओम् के प्रकृत रूप सत्य है। अविद्या अन्धकार फैलने से उस सत्य ज्ञान का लोप होता चला आरहा है, किन्तु ब्रह्मर्षि दयानन्द जी ने इसका पुनः पथ दिखाया, जिसके द्वारा हमें वैदिक ज्योतिष शास्त्र का वास्तविक ज्ञान हुआ, वेद में स्पष्ट कहा है कि सूर्य तीन पदार्थों से बना है। एक रश्मि, दूसरे अग्नि, तीसरे इन्द्र अर्थात् वह ठोस पदार्थ जो लोहे से भी अधिक भारी है। अब आप विचारेंगे कि हमें सूर्य केवल अग्नि का पुञ्ज दिखाई देता, किन्तु जिस इन्द्र पदार्थ को वेद में लोहे से भी अधिक भारी बतलाया है, उसी की आकर्षण शक्ति के द्वारा यह सब ब्रह्माण्ड ठहरा हुआ है। आप सोचेंगे की यह सब चीजें किस प्रकार बनाई गई, कब बनी यही हमें विचार करना है। हम प्रातः सायं सन्ध्या के समय एक वेद मन्त्र बोलते हैं, इसी मन्त्र के भावार्थ से जान जावंगे कि सूर्य, ग्रह, उपग्रहों की कब उत्पत्ति हुई—

ओम् सूर्यांचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयद् ।
दिवञ्च पृथिवींचान्तरिक्ष मथो स्वः ॥

(ऋग्वेद)

धारण करने वाले ओम् ने सूर्य चन्द्र तथा पृथ्वी आदि लोकों और अन्तरिक्ष को अर्थात् प्रकाशमान तथा प्रकाश रहित लोकों को पूर्व कल्प में ही रचा और उसी प्रकार आगे भी रचेगा। पाठक गण विचारेंगे कि इस सूर्य, पृथ्वी, नक्षत्र और अन्तरिक्ष आदि को बनाने में कितना समय लगाया। इसका वर्णन "सूर्य-सिद्धान्त" में आया है जिसका वर्णन इस प्रकार हैं:—

उपनिषदोंक्त पंचाग्नि विद्या :

ले० शान्ति स्वरुप गुप्त
मन्त्री- दक्षिण कलकत्ता आर्य विद्यालय

(प्रस्तुत उपनिषद्–विषयक निवन्ध आर्य जगत के सुपरिचित कृती लेखक श्री शान्ति स्वरूप गुप्त के विशद अध्ययन–अनुशीलन का प्रमाण है । आलोच्य गवेषणा पूर्ण लेख में लेखक ने उपनिषदोक्त पंचाग्नि विद्या का अत्यन्त सुबोध शैली में निरुपण किया है) ।

सम्पादक

किसी समय अरुणि ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु पांचाल देश के वृद्ध ज्ञानी राजा जैबली प्रवाहण की सभा में जा पहुंचे । अर्घ्य पाद्यादि से सत्कार कर चुकने के पश्चात राजा ने उनकी विद्वता की परीक्षा लेने हेतु उनसे प्रश्न किया 'श्वेतकेतो' । मनुष्य मृत्यु के पश्चात कहाँ जाता है ?

मैं नहीं जानता, कुमार ने उत्तर दिया ।

मरने के पश्चात ये प्राणी किस प्रकार पुनः संसार में लौट आते हैं, बता सकते हो ?

भगवन् । यह भी मैं नहीं जानता, कुमार ने कहा ।

देवयान और पितृयाण मार्ग कहां से पृथक-पृथक होते हैं, जानते हो ? राजा ने प्रश्न किया ।

कुमार ने इस प्रश्न का भी वही नकारात्मक उत्तर दिया । मृत्यु के पश्चात जीव जिन लोकों में जाते हैं वे लोग उनसे मर क्यों नहीं जाते– राजा ने पुनः प्रश्न किया ।

कुमार ने इसमें भी अपनी अज्ञता प्रकट की।

किस प्रकार जल पुरुष रूप में परिवर्तित हो जाता है, राजा ने जिज्ञासा की। श्वेतकेतु बोले, भगवन, इसका भी मुझे ज्ञान नहीं है।

अपनी अज्ञता से लज्जित होकर श्वेतकेतु अपने पिता गौतम के पास वापस लौट गया।

जो प्रश्न राजा प्रवाहण जैवलि ने श्वेतकेतु से किये, इस विषय की जिज्ञासा प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को होनी चाहिये। मेरा आगमन कहां से हुआ, मरने के पश्चात मुझे कहां वापस जाना है। मेरा अस्तित्व किस प्रकार संभव हुआ, क्या आवागमन का यह क्रम निरन्तर चलता रहेगा अथवा कहीं समाप्त होगा आदि।

उपर्युक्त सारे ही प्रश्न ऐसे अदृष्ट विषय के बारे में है जिनका विचार कर मनुष्य दुःखी-सुखी होता रहता है। अनेक लोगों ने इस विषय को रहस्यात्मक जानकर जनता को बहकाने का बड़ा यत्न किया। मरने के पश्चात जीव के प्रयाण स्थान के सम्बन्ध में गोलोक, कैलास, स्वर्ग, यमलोग, सातवां आसमान, चौथा बहिश्त, मुहम्मद अथवा ईसा मसीह के समीप, न जाने कितनें मनमाने स्थानों की कल्पना कर डाली।

पिता के पास लौटकर श्वेतकेतु ने पिता को उपालम्भ देते हुए कहा, भगवन! आपने स्नातक बनाते समय मुझे कहा था कि मैंने तुम्हें सारी विद्यायें पढ़ा दी है, लेकिन राजा प्रवाहण के एक भी प्रश्न का उत्तर न दे सकने के कारण मुझे अपमानित होकर राज सभा से वापस लौटना पड़ा है।

प्रश्न सुनकर गौतम बोले, पुत्र! इस विषय में स्वयं मेरा ज्ञान भी नगण्य है। इस विद्या का ज्ञान प्राप्त करने के लिये स्वयं गौतम ही राजा प्रवाहण की सभा में उपस्थित हुए। वहां जब उनको भेंट में धन अर्पण किया गया तब वे कहने लगे, महाराज मुझे भौतिक धन की आवश्यकता नहीं हैं, मुझे तो जो प्रश्न आपने मेरे पुत्र से किये थे, उसी पञ्चाग्नि विद्या का ज्ञान प्राप्त करने की उत्कण्ठा है, अतः आप मुझे उसी धन का दान देने की कृपा करें।

राजा ने उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार पात्र की परीक्षार्थं चिरकाल तक अपने यहां रहने का आदेश दिया और उन्हें योग्य पात्र पाकर पञ्चाग्नि विद्या का उपदेश देने के लिये उन्हें बुलाकर कहा, भगवन ! अबतक यह विद्या क्षत्रियों के पास ही रहती चली आई है। वाह्मण इससे अवगत नहीं थे। आप श्रद्धा से शिष्य रूप मेरे पास आये हैं अतः योग्य पात्र जानकर मैं आपको इस विद्या का उपदेश अवश्य दूंगा।

राजा जेबलि कहने लगे, गौतम ! जिस प्रकार भौतिक जगत में भिन्न-भिन्न प्रकार की अग्नियां, अग्निहोत्र की अग्नि, पाकशाला की अग्नि, जठराग्नि, आदि हैं इसी प्रकार सृष्टि के आदिकाल में परमात्माने पांच अग्नि-गृह (कारखानें) स्थापित किये थे।

१– धूलोक उसका सबसे प्रथम अग्निकुण्ड है जिसमें सूर्य ही प्रज्वलित समिधा, किरणे ही अग्निधूम, दिन ही उसकी ज्वाला और चन्द्रमा ही अङ्गार है। जो दिव्य शक्ति वाले निरन्तर श्रद्धा से इस अग्नि में होम करते हैं वे चन्द्रलोकवासी हो जाते हैं।

एतस्मिन्नग्नौ देवाःश्रद्धया जुहयति। तस्या आहत्ये सोमो राजा सम्भवति ॥ छा० ५।४।२ ॥

२– राजा पुनः कहने लगे, गौतम ! दूसरा अग्निगृह मेघ है। वायु ही उसमें प्रज्वलित समिधा है, धूंध ही उसमें धूम्र है, बिजली ही उसमें ज्वाला है, उपलपात ही उसमें अङ्गार है एवं चपला ध्वनी ही उसमें स्फुलिंग है। दिव्य शक्तियां जब इस कुण्ड में होम करती हैं तब मेघ ही वर्षा होकर बरसने लगते हैं।

३– गौतम, ! होम की तीसरी अग्नि भूलोक अथवा पृथ्वी है ! सम्वत्सर ही ईसमें प्रज्वलित समिधा है। आकाश ही धूम्र है, अन्धेरी रात्रि ही ज्वाला है, दिशायें ही अङ्गार हैं एवं अवांतर दिशायें ही स्फुलिंग हैं। जब प्रकृति के नियम इस महाग्नि में होम करते हैं तब मेघ की आहुति से अन्न उत्पन्न होता है।

तस्मिन्ने तस्मिन्न नो देववर्षंजुहुवति। तस्या आहुतेरन्नं संभवति ॥

४– गौतम, ! इस यज्ञ की चतुर्थ अग्नि पुरुष है। वाणी ही इसकी प्रज्वलित समिधा है, प्राण ही धूम्र है, जिह्वा ही ज्वाला है, चक्षु ही

अङ्गार हैं एवं अन्य इन्द्रियां ही उसमें स्फुलिंग हैं। जब देवगण उसमें अन्न का होम करते हैं तो वीर्य की उत्पत्ति होती है।

तस्या आहुत्यैः रेतः सम्भवति ॥

५- गौतम, स्त्री ही इस यज्ञ की पंचम और अन्तिम अग्नि है। इसका काम मन्दिर ही प्रज्वलित समिधा है। उसकी मिलन प्रेरणा ही धूम्र हैं, योनि ही ज्वाला है। उपस्थ का योनि प्रवेश ही अङ्गार है, एवं विषयानन्द ही स्फुलिंग है। जब देवता वीर्य को उसमें होम करते हैं तो पुरुष की उत्पत्ति होती है।

तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति ॥

इस प्रकार जीव संसारचक्र के विभिन्न विश्रामस्थल : पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रादि मार्ग-निवासों की यात्रा करता हुआ प्रथम वनस्पति, वनस्पति सेरक्त, रक्त से वीर्य, वीर्य से मांसपिण्ड, मांसपिण्ड से बुदबुद्- पुनः निकट प्रसव बालक बनकर मार्ग समाप्त करता हुआ इस संसार में उत्पन्न होता है।

स उत्वोबृतो गर्भो दशवा मासनान्तः शायित्वा यावदाथ जायते।

श्रद्धा, सोम, वर्ष, अन्न रेत के साथ गमन कर पांचवीं आहुति में पुरुष संज्ञा प्राप्त कर भावत् आयु जीवन यापन कर इस शरीर का परित्याग करता है। पुनः आग्नेय शक्ति जीव को उसी स्थान पर पहुंचा देती है, जहां से वह मातृ कुक्षि में आया था।

सूर्य संसार का केन्द्र है और समस्त तारा मण्डल इसकी परिक्रमा करते हैं। चन्द्रमा इस पृथ्वी के चारों और परिक्रमा करता हैं अतः एक मार्ग वह है जोपृथ्वी से सीधा स्वर्गलोक को जाता है और दूसरा मार्ग चन्द्रलोक को। और नक्षत्र लोकों से पृथ्वी को आने वाला मार्ग तृतीय मार्ग कहलाता है। यह मार्ग तमोमय है। सुषुप्ति अवस्था में अचेत सा रहता है। यह मार्ग तमोमय हैं। इसके विपरीत जो मार्ग प्रकाशमय है उसमें जीव स्वप्न की दशा में सचेत सा यात्रा करता है।

जो मार्ग सूर्य लोक को जाता है वह प्रकाशमय है और तपस्वी, सत्य का अनुष्ठान करने वाले नग्नदर्शी देवता ही वहाँ अशरीरी होकर

निवास करते हैं । अतः यह स्थान देवलोक कहलाता है । अन्य शेष दो मार्ग चन्द्रलोक और पृथ्वीलोक को जाते हैं। चन्द्रलोक से जानेवाला मार्ग पितृयान मार्ग कहलाता है और जो तीसरा मार्ग है वह सीधा पृथ्वी की और जाता है। ये दोनों मार्ग तमोमय हैं । देवयान मार्ग अग्नि की ज्वाला एवं पितृयान मार्ग धूम्रशिखा से प्रारम्भ होता है । अतः प्रथम को उत्तरायण या अर्चिमार्ग और दूसरे को दक्षिणायन या धूम्रमार्ग कहत हैं । तीसरा पृथ्वी की ओर जाने वाला मार्ग अधोमार्ग कहलाता है । यह मार्ग पूर्णतया तमोमय है। यहाँ जीव वनस्पती से रक्त, रक्त रक्त से वीर्य, एव वीर्य से मनुष्य बनता है। जन्म के पश्चात जीव की स्वप्नावस्था भग होकर जीव आग्रत-सा हो जाता है और स्वप्न के बल कल्पना मात्र रह जाता है। इन्द्रियों की पूर्णता के बिना पूर्वजन्म की स्मृति भी जाती रहती है ।

जो जीव अरण्य में बासकर सत्य एवं तपोनिष्ठा द्वारा उपासना करते हैं वे शवदाह के समय ज्वाला के साथ अर्चिमार्ग के द्वारा सूर्यलोक होकर देवलोक चले जाते हैं। इसके विपरीत जो जीव दान पुण्यादि कर्म करते हैं वे धूम्र के साथ उठकर चन्द्रलोक के मार्ग का अनुगमन करते हैं । लेकिन जो पापी होते हैं वे भस्मसात होकर पृथ्वी पर ही पडे रहकर कीट-पतंगादि निम्न योनियों को प्राप्त होकर अपने पाप कर्म भोगते हैं ।

जो धर्मात्मा देवयान मार्गपर चलने वाले होते हैं वे भौतिक शरीर नहीं वरन संकल्पमय शरीर धारण करते हैं। अपनी तपस्या के अनुसार वे भिन्न-भिन्न अवस्था को प्राप्त होते हैं । इनमें से प्रथम पदवाला सालोक्य मुक्ति, द्वितीय सामीप्य मुक्ति, तृतीय सायुज्यमुक्ति एवं चतुर्थ सारुण्य मुक्ति को प्राप्त करता है ।

राजा जैबलि प्रवाहण इतना उपदेश करने के पश्चात् पुनः कहने लगे गौतम! इस प्रकार इस पञ्चाग्नि विद्या को तत्वतः जानने वाला संसार त्यागी होकर सत्यका पालन करते हुए देवयान मार्ग पर चलते हैं । और इस प्रकार आवागमन के वंधन से मुक्त हो जाते हैं । परन्तु जो मनुष्य यज्ञ, दान आदि सकाम कर्मों का सम्पादन करते हैं वे पितृयान मार्गपर चल कर सोमराज हो जाते हैं । एवं बारम्बार आवागमन के चक्र में आबद्ध रहते हैं । वे कर्मानुसार सांसारिक भोगों में लिप्त रहते हैं । तीसरे

प्रकार के पापी मनुष्य जो सत्यनिष्ठा त्याग तपस्या एवं दानदि सत कर्म दोनों से रहित होते वे निम्न कीट पतङ्गादि योनियों को प्राप्त होकर अपने पाप का फल भोगते रहते हैं ।

छांदोग्य उपनिषद में इस पचांग्नि विद्या के संदर्भ में आलंकारिक वर्णन द्वारा यह सिद्ध करनें का प्रयत्न किया गया है कि वास्तव में मनुष्य को अपनें-अपने किये हुए शुभ-अशुभ कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है । उत्तरायण, दक्षिणायन, सम्बत्सर, देवयान, पितृयान मार्ग ये सब आलंकारिक शब्द हैं । शुभ कर्म करने वाला सर्वदा सद्गति को एवं अशुभ कर्म करने वाला निश्चय ही दुर्गति को प्राप्त होता है । शुभाशुभ कर्म ही मनुष्य की सदगति एवं दुर्गति के कारण बनते हैं ।

इस प्रकार राजा प्रवाहण से पञ्चाग्नि विद्या का उपदेश ग्रहण कर गौतम सन्तुष्ट होंकर वापस लौट गये ।

एवं विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कार प्राप्त किये । मंत्री श्री पद्मश्री मोहन नायक जी आश्रम जीवन सम्वन्ध में वक्तृता देने के साथ-साथ ऐसे एक अनुशासनमय जीवन यापन का प्रसंशा किये थे एवं प्रत्येक छात्र तथा जन साधारण इसी प्रकार अनुशासन और निराडम्बर जीवन यापन करने से समाज का निश्चय ही उन्नति होगा ऐसा अपना मतव्यक्त किये थे ।

शिविरछात्रों के लिये भ्रमणार्थ मंत्री श्रीयुत लक्ष्मण मल्लिक जी एक वस की व्यवस्था किये थे । ब्रह्मचारियों के कार्य कलापोंको देखकर सरकारी वेसरकारी सभी भद्रव्यक्तियों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा करने के साथ-साथ आश्रम के प्रतिष्ठाता पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती के कठोर साधना कें प्रति आभार व्यक्त किया था ।

* ओ३म् *

दीवाली – सन्देश

अ दीपावली हमें कह रही,
जुआ खेलना नहीं।
दीपमाला सन्देश दे रही,
शराब पीना ही नहीं॥

आ दीवाली हमें कह रही,
राम राज्य तुम लाना।
रामचन्द्र हमें कह गये,
तुम मांस मत खाना॥

इ भारत की भावी आशाओं,
दयानन्द बन जाओ।
नगर – नगर में वेदों की,
तुम कथा सुनाओ॥

ई दयानन्द की भावी आशाओं,
कुछ करके दिखाओ।
ग्राम – ग्राम में वेदों का,
तुम डंका बजाओ॥

१ जीवानन्द को जी,
दयानन्द से प्यार है।
आज भी है,
और कल भी रहेगा

२ धिक्कार है उसको,
दयानन्द से प्यार नहीं जिसको।

३ महर्षि देव दयानन्द की – विजय !
मर्यादा पुरुषोत्तम राम की – विजय॥

आर्य – जगत्

आर्यसमाज रिलिफ़ सोसायटी द्वारा उड़ीसा में बाढ पीड़ितों की सेवा

आर्यसमाज की यह परम्परा रही है कि देश के किसी भाग में जब दैवी विपत्ति आती है, तो आर्यसमाज के कार्य कर्त्ता पूरी शक्ति से जुट जाते हैं। इस वर्ष बिहार, उड़ीसा, पूर्व उत्तर-प्रदेश और आसाम में बाढ़ ने भयानक विनाश लीला कर रखी है। सारे देश में उसकी चर्चा है और सभी यथाशक्ति वहाँ सहायता भेज रहे हैं। शासन अतिरिक्त अन्य सेवाभावी अनुष्ठान भी इस काम में जुटे हैं। आर्यसमाज की ओर से भी बिहार, उत्तर-प्रदेश और उड़ीसा में क़ैम्प खोले गये हैं। आर्यसमाज रिलीफ़ सोसायटी का केन्द्रीय कार्यालय "सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली में खोला गया है।

बाढ़ से विशेष रूप में उड़ीसा के पूर्वीक्षेत्र में अत्यन्त हानी हुई। लाखों मनुष्य वेघर हुए, हजारों नदी के बाढ़ में वहगये। आर्यसमाज रिलीफ सोसायटी केन्द्रीय शाखा दिल्ली की ओर से उड़ीसा में पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी के नेतृत्व में कटक और वालेश्वर जिला के निम्म लिखित आठ स्थानों पर अपंग, रुग्ण, दरिद्र और असहाय जनता केलिये नि शुल्क भोजन-केन्द्र खोले गये।

१ — दुबल
२ — सुजरण सिंहपुर,
३ — मिश्रपुर,
४ — कोठर,
५ — दलांग,
६ — विरोहाँ,
७ — दक्षिणबन्ध,
८ — दक्षिण कोरिया,

उर्युक्त नि:शुल्क भोजन केन्द्रों मे प्रतिदिन ५००से १००० तक लोग़ों को किचड़ीं बनाकर, प्रत्येक लोगों को एक ही व्यक्ति

में एक किलो वजन को दी जाती है। इसके अलवा २५० नये कपड़े, ३५०० पुराने कपड़े, २५०० बर्त्तन भी वितरण किये जा चुके है। अभी नक रु २५०००(पचीस हजार रुपया) खर्च हो चुका है और ३३००० (तेतीस हजार) लोगों को खिचड़ीं बांटी गयी हैं। ११ अनाथ बच्चों को उध्दार करके उनको रक्षणावेक्षण की व्यबस्था की गई है। नदी के बन्ध टुट जाने से लोग बाध के उपर पड़े हुये हैं, इनके पास न तन ढाकने के लिये कपड़ा है, न भोजन के लिये अन्न है। शींत ऋतु आ रहीं है। अतः दानी महानु भावों से निवेदन है कि इन निरीह गरीब जनता को शीत से रक्षा के लिये सूति कम्बल, वस्त्र आदि दान देने की कृपाकरें। दानी महानुभावों के बल पर ही हम यह पुनीत कार्य अपने हाथ में लिये हुए हैं।

निवेदक :—
स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

बाढ़ पीड़ितों के सहायतार्थ निम्न प्रकार दान प्राप्त हुये हैं

५३- मन्त्री सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली— — रू० ३०००-००

५४- मन्त्री आर्यसमाज नामनेर, आगरा — रू० ६५८-००

५५- मन्त्री आर्यसमाज नाईकीमंडी आगरा — रू० ६५०-००

५७- श्रीमती एम्० डी० कौशिक — रू० ३००-००
C/o पाईप रुलिंग़ मिल्स, हिराकुद

- आर्य स्त्री समाज भवानीपुर सौजन्य से दान प्राप्त

५६- श्रीमती सुमित्रा देवी कुमार — रू० २५०-००

५८- श्रीमती शान्तिदेवी लुथरा — रू० २००-००

५९- श्रीमती सुशीलादेवी आर्या; — रू० १०१-००

६०- बुध समाज माताओं के द्वारा — रू० ५००-००
(६५ सूती कम्बल के लिये दान स्वरूप)

६१- पं ब्रह्मानन्द जी कौशिक — रू० १०१-००
१०१ - महात्मागान्धी रोड़
६२- श्री जनक लाल जी — रू० ६२-००
भारत आर्ट स्टुडियो खिदिरपुर
६३- श्री पं महेन्द्र शास्त्री — रू० १००-००
कुलपति कन्या महाविद्यालय हाथरस

आर्यस्त्री समाज भवानीपुर कलकत्ता द्वारा १२ नई शाढ़ियाँ, १२ धोतियाँ, १२ ब्लाऊजें तथा २०० तक पुराने कपड़े, प्राप्त हुयें हैं और अराष्ट्रीय प्रचार निरोघ के लिये रू० ५०-०० मासिक मिलता रहता है ।

पं ब्रह्मानन्द जी कौशिक द्वारा १५ नई शाढ़ियां, पं रामनारावण कौशिक द्वारा २२ नई शाढ़ियाँ और मन्त्री आर्यसमाज नामनेर आगरा द्वारा २ बण्डल कपड़े प्राप्त हुए हैं ।

गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास को दान की सूची कलकत्ते से मिले

रू० ४०० यशोवन्त राय एण्ड ब्रदर्स, यमुनालाल बज़ाज स्ट्रीट, कलकत्ता
रू० ३०० श्री गुगनराम रामप्रताप, ,, ,,
रू० २५० माता कर्त्तार देवी ज़ी ११/ए चौरंगी प्लेस. ,,
रू० २०१ पं ब्रह्मानन्द कौशिक, जी के लिये अन्न दान
श्री प्रेम कौशिक देहली वाले, कलकत्ता
रू० ११ श्री मोहन लाल ज़ी लकोटिया १ /ए लवलक प्लेस कलकत्ता - १६

जमशेदपुर से—

रू- १५१ श्री राजपाल सोनी जी के ज्येष्ठपुत्र आयुष्मान देशबन्धु सोनी जी के विवाह अवसर पर दान प्राप्त हुआ ।
रू- १०१ श्री उग्रसेन ज़ी के कनिष्ठ पुत्र आयुष्मान हर्षकोच्छर जी के विवाह अवसर पर दान प्राप्त हुआ ।
रू- २२ माता मायादेवी कोच्छर जी के द्वारा ।

श्रीमान प्यारेलाल जी और श्रीमान् इन्द्रनाथ जी सुनारी निवासी ने आयुष्मान अशोक जी के विवाह पर दान दिया ।

उड़ीसा के राजधानो भुवनेश्वर में गुरुकुल के ब्रह्मचारो

प्रिय गुरूकुलोपासको ?

आपको ज्ञानकर अपार हर्ष होगा कि इस वर्ष दि० १३-११-७५ से दि० १९-११-७५ तक नेहरु और श्रीमती इन्दिरा गान्धी जी को ज़न्म सप्ताह उपलक्ष्य मे "राज्य समाज कल्याण, भुवनेश्वर" के और से Holiday Home की व्यवस्था की गई थी। जिसमे उड़ीसा के विभिन्न १० अनुष्ठानों और अन्यान्य शिक्षानुष्ठानों ने भाग लिये थे।

इस शुभावसर पर गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास के ब्रह्मचारियों ने भी भाग लिये थे। ब्रह्मचारियों के अनुसाशान, शृङ्खलवद्ध जीवनयापन एवं आदर्श व्यवहार से सभी अधिकारी वर्ग तथा उड़ीसा के नेतृबृन्द आश्रम जीवन की अत्यन्त प्रसंशा किये थे।

प्रथम दिवस में मुख्य मंत्री श्रीमती नन्दिनी शतपथी सभा उद्‌घाटन की थी। उस अवसर पर गुरूकुल के ब्रह्मचारियों ने संस्कृत में स्वाग़त किये थे। ब्रह्मचारियों के शुद्ध संस्कृत श्लोक, वेदमंत्र गान, संस्कृत कथोपकथन सुनकर मंत्री महोदय ने अत्यन्त खुशी हुई थी। इस अवसर पर गुरूकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास क़ें और से एक " महामंत्र ग़ायत्री" फ़ोटो भेट मे दिया गया था।

१७-११-७५ को मंत्री श्री लक्ष्मण मल्लिक जी के अध्यक्षता सभा हुई थी एवं दि० १९-११-७५ को मंत्री पद्मश्री मोहन नायक जी के अध्यक्षता में सभा हुई थी। प्रत्येक कार्यक्रमों में ब्रह्मचारियों का विशेष कार्य क्रम रहता था। जिसमे गुरूकुल के ब्रह्मचारियों ने उड़ीसा में सर्व प्रथम स्थान अधिकार कियेथे।

(अवशिष्टांश पेज १६ में देखें)

BANAWASI SANDESH November 1975 Regd. No 618

प्रकाशक— स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती द्वारा शान्ति आश्रम प्रेस, गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास, राउरकेला - ४ में मुद्रित ॥

॥ ओ३म् ॥

★ कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ★

वनवासी-संदेश

वनवासी सांस्कृतिक समिति वेदव्यासस्य मासिकं मुख-पत्रम्

संस्थापकः– **स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती**

ऋषिबोधांक - गुरुकुल परिचयांक
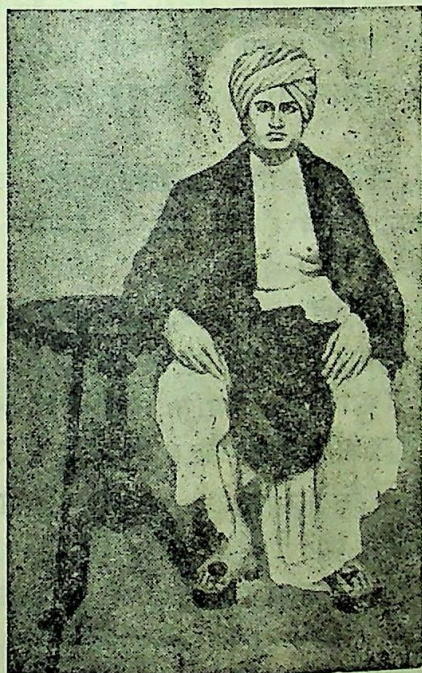
वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती

संपादक
पं० आत्मानन्द शास्त्री

सह-संपादक
पं० देशबन्धु विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का शिक्षा विषय में मन्तव्य

१— कोई भी व्यक्ति ८ वर्ष से पूर्व अपने पुत्र पुत्रियों को घर में रख नहीं सकता हैं, वे उन्हे पाठशाला या गुरुकुल में भेज देनी चाहिये। जो व्यक्ति नहीं भेजेंगे, वे दण्ड़नीय होंगे। यह राजनियम और जाति नियम होनी चाहिये।

२— बालक और बालिकाओं के लिये पृथक-पृथक गुरुकुल होना चाहिये।

३— गुरुकुल में सभी विद्यार्थी ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन व्यतीत करेंगे। २५ वर्ष से पूर्व लड़का और १६ वर्ष से पूर्व कन्या का विवाह होना उचित नहीं।

४— गुरुकुल में सभी को तुल्य वस्त्र, खाद्य-पेय, आसनादि दिया जायेगा। राजकुमार, राजकुमारी व दरिद्र के सन्तान होने पर भी सभी के साथ एक समान व्यवहार किया जायेगा।

५— गुरुकुल में गुरु और शिष्य पिता-पुत्र के तुल्य रहना चाहिये।

६— विद्या पढ़ने के लिये स्थान नगर या ग्राम से दूर एकान्त में होना चाहिये।

७— शिक्षा में वेद-वेदांग, तथा सत्शास्त्र को प्रमुख स्थान देनी चाहिये। परन्तु उसके साथ ही साथ राजविद्या, संगीत, नृत्य, शिल्प-विद्या, गणित, ज्योतिष, भूगोल, भूगर्भविद्या, यन्त्रकला, कृषिविद्या, अर्थशास्त्र, चिकित्सादि शास्त्र का भी यथोचित अभ्यास कराना चाहिये।

ओ३म्

वनवासी - सन्देश

उक्कल जनता संस्कृति रक्षा बद्धकटिस्तमः स्तोमहतिदेशः
गुरुकुल सुपानपोषादुदयति वनवासी सन्देशः ॥
यो भ्रष्ट खीष्टमत दीक्षित मञ्जलोकम्
संस्कृत्य दूरयति तद्धृदयान्धकारम् ॥
श्री वेदव्यास सुगुरुकुल सन्निवेशः
सम्पूर्वादिरुदयते वनवासी संदेशः ॥

वर्ष १२ अंक ३	मार्च १९७८	वार्षिक मूल्य ५ रु एक प्रति ५० पैसे

वेदोपदेश

**ओ३म् यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन ।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहु किमुरु पादा उच्यते ।।**

यजुर्वेद ३१ । १०

शब्दार्थः - (यत् पुरुषं व्यदधुः) जिस मानव समाज की परमात्मा ने विशेष रूप से रचना की हैं, उसको (कतिधा-व्यकल्पयन्) कितने विभागों में विभक्त किया है। (मुखं किं अस्य आसीत्) इसमें प्रधानता कौन से वर्गों को प्रदान की गई है। (किं बाहू) समाज की रक्षा हेतु भुजा समान कौन-सा वर्ग कल्पित किया गया है। (किं ऊरु) समाज की प्रगति और उसके जीवन को सुखमय बनाने हेतु किस वर्ग का विधान किया गया है। (किं पादा उच्यते) तथा उसकी स्थिति व दृढ़ता हेतु पाद रूप किस वर्ग की रचना की गई है।

भावार्थः— मानव समाज की चतुर्मुखी उन्नति की दृष्टि से उसको चार विभागों में विभक्त किया गया है। मस्तिष्क द्वारा समाज में ज्ञान का संचार करने वाला और दर्शन कराने वाला उसका मार्ग भुजाओं द्वारा उसकी रक्षा करने तथा अन्याय, अनीति, अत्याचार का नाश करने वाला वर्ग, जीवनोपयोगी अन्न-वस्त्र आदि, साधनों को जुटाने वाला ऊरू (उदर) समान वर्ग, समाज के जीवन में कला-कौशल, सेवा आदि द्वारा स्थिरता लाने वाले इन वर्गों की रचना उस पावन प्रभु की कृपा का विस्तार ही है।

मानव समाज को इन चारों वर्गों या वर्णों में विभक्त होने तथा निज-निज वर्ग का कार्य दक्षता पूर्वक करने का बोध और आदेश उस परमात्मा ने किया है। इन चारों वर्गों के मानव यदि दक्षता पूर्वक अपने-अपने निर्धारित कार्यों का सम्पादन करेंगे तो निश्चय समाज का उत्थान हो सकेगा। समाज में स्थिरता लाने के लिये इस विभाजन का किया जाना आवश्यक है। समाज में सुख शान्ति का साम्राज्य इस कार्य विभाजन द्वारा ही सम्पन्न हो सकेगा। परमात्मा ने इन चारों वर्गों को समाज में समान स्थान प्रदान किया है।

गुरु-निन्दा

गुरोर्यत्र परिवादो निन्दा वापि प्रवर्तते ।
कर्णौ तत्र विधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥

अर्थः— जहां गुरु की निन्दा या हंसी मजाक हो रहा वहां कान बन्द कर लेना चाहिये या वहां से दूसरे स्थान पर चले जाना चाहिये।

सम्पादकीय

शिवरात्रि कह रही है।

प्रतिवर्ष फाल्गुन चतुर्दशी के शिवरात्रि पर्व बहुत प्राचीन काल से चला आता है। इस पर्व का सम्बन्ध शिवशंकर महादेव के साथ है।

परन्तु शिवरात्रि का पर्व मनाने वाले पौराणिक विद्वान भी यह बताने में असमर्थ हैं कि इस रात्रि का सम्बन्ध भगवान शंकर की किस विशिष्ट घटना के साथ है।

उनका जिस समय पार्वती के साथ विवाह हुआ, उस समय देवगण असुरों से हार रहे थे और भय-भीत हो गये थे। उन्हें जब कहीं शरण न मिली तो वे महात्मा शिव के समीप उपस्थित हुए। शिव पार्वती को परिणय करके अपने स्थान पर अभी पहुंचे ही थे और उन दोनों के मिलन की प्रथम ही रात्रि थी, ऐसे समय में देवों ने आकर भगवान शिवजी के शरण लिये और उनके पास आने की करुण गाथा सुनाये। शिव तो थे ही शंकर (स्वभाव से कल्याण करने वाले) और आशुतोष शीघ्र प्रसन्न होने वाले व यह जानते थे कि यह युद्ध शीघ्र समाप्त न होगा। इसलिये उन्होंने देवों की रक्षा और असुरों के नाश के लिये अपनी प्रथम मिलन रात में ही अखण्ड ब्रह्मचर्य का व्रत धारण किया और

तत्काल ही अपने शिष्य वीरभद्र आदि वनवासियों को साथ लेकर युद्ध के लिये प्रस्थान हो गये। इस घटना का सम्बन्ध रात्रि के साथ होने के कारण यह रात्रि शिव के सम्बन्ध से शिवरात्रि कहलाती है।

भगवान शिव अपने अटल प्रतिज्ञा से अपने धर्म, समाज और देश की रक्षा की थीं। अपनी इस अलौकिक कार्य से ही भगवान शिव देवों में महादेव कहलाये।

जिस समय आसुरीय सभ्यता जोरों पर थी, मानव-मानव का रक्त पीने के लिये हर समय तैयार था शिव के भक्त वन वासी, अछूत आदिम जाति तथानारी जाति को रौन्दा जा रही थी अज्ञान का अन्धकार घटाटोप बढ़ रहा था, विद्वान के स्थान पर मूर्ख पुजे जाते थे। ऋषि, महर्षियों के बताये हुए मार्गों से लोग भटक रहे थे। योग के नाम पर ढोंग, ईश्वर के नाम पर पाखण्ड, धर्म के नाम पर दोकान खोला जा रहा था। स्वर्ग के नाम पर यथेच्छा अत्याचार चल रहा था। संसार विभिन्न मतवाद से भरा हुआ था। भारत में बिदेशी शक्ति आकर अलख जगा रहे थे, चारों तरफ मुल्ला, मौलवी, विदेशी मिशनरियां यहाँ वनवासी और अछूत कहलाने वाली जाती को हरी भरी खेती सभझ कर काट रहे थे।

जिस समय भारत वर्ष में अनेक मत मतान्तर फैले हुए थे, जिस समय वैदिक सूर्य पर अज्ञान के वादल मंडरा रहे थे, ऐसे ही समय में इसी शिवरात्रि के दिन सच्चे शिव के भक्त जगत गुरु दयानन्द ने टंकारा में प्रणव-धनुष की टंकार की थी। मौर्वी वाले की टंकार ने किरानी-कुरानी, पुरानी, जैनी, सनातनी सब को सोते से जगा दिया था। दयानन्द के टंकार को सुन कर मुहम्मदी तलवार गिर पड़ा। मिश्र के भव्य मीनार गुंज उठे चीन, जापान और अमेरिका के अमर संस्कृति परिवार जाग उठा, "प्रथमा संस्कृति विश्ववाराः" का नाद फिर से होने लगा टंकारे वाले की टंकार कुछ अद्भूत थीं, वह एक धधकती ज्वालामुखी थी, जिसमें संसार के मत मतान्तर भस्म हो

रहे थे ईसाई, मुसल्मान, सनातनी उस आग को बुझाना चाहते थे, परन्तु धधकती जाती थी।

काशी में एक दिन पं० हरिश्चन्द्र जी महर्षि दयानन्द जी से निवेदन किया। "महाराज! आपके खण्डन करने से लोगों में वैर-विरोध बहुत बढ़ता है।" महर्षि ने अपने हाथों को मिला कर कहा "मेरा उद्देश्य लोगों को इस प्रकार आपस में मिलाना है। सकल समुदायों को एकता में लाना है मैं चाहता हूँ कि कोल-भील से लेकर ब्राह्मण पर्यन्त सब में एक ही जातीय जीवन की जागृति हो। चारों वर्ग के लोग एक दूसरे को अंग अंगी समझे परन्तु क्या करें, सुधार के बिना मिलाप होना असम्भव हैं मेरा खण्डन करना हित और सुधार से भिन्न और कुछ नहीं।

आर्यों! (हिन्दुओं)! सोचो, समझो, कितना तड़फ थी ऋषि के हृदय में अछूतोद्धार के लिये। महर्षि दयानन्द ने अपनी आर्ष दृष्टि से यह पहले ही देख लिया था कि जब तक अछूतोद्धार न होगा देश का कल्याण न होगा। निःसन्देह आर्य समाज ने ही सब से पहले अछूतोद्धार की नींव रखी है। यह दृश्य कितना सुन्दर था जब पंजाब में रहते हुए लोगों को समाज में मिलाया गया था, उस समय आर्यों को कुओं पर चढ़ने के लिये रोका गया था' बहुतों की जाने खतरे में थी। रोपड़ के आर्य वीर सोमनाथ की माता आन्त्रज्वर (टाईफयड) से कहराती हुई इसलिये संसार से चल बसीं कि उसे लोग कुएं के पानी पीने न देते थे। क्या जम्मू के धर्मवीर पं० रामचन्द्र जी की शहादत को याद करने की आवश्यकता है। जिन्होंने मेवों की शुद्धि करते हुए अपनी आखों में धूल ड़लवाई, डंड़ो की मार मारे गये। उनकी याद तो जम्मू का वीरमेला दिला रहा हैं। आर्य समाज ने अछूतों को छाती से लगाया। गरीबों की आह में आह भरी।

किन्तु आज चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार नजर आ रहा है। सच्चे शिव के भक्त वनवासी कोल, भील, ओराम, मुण्डा आदि पशु से भी वदतर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अछूत तथा वनवासियों को घृणा की दृष्टि से देखा जा रहा है। शिक्षा, दीक्षा,

सभ्यता और संस्कृति से कोसों दूर हैं। वे घोर घने जंगल में पड़े हुए हैं। उनके लिये मकान नही है। और न ही पेट पूजा के लिये उनके नसीब में अन्न मिलता है। ऐसे नारकीय जीवन बिता रहे हैं। उस से लाभ उठाकर ईसाई मिशनरी हरीभरी खेती समझ कर काटते जा रहे हैं। ईसाई पादरी ही उनके मां बाप हैं। जिसके फलस्वरुप पृथकता वाद का बोल बाला हो रहा है।

अतः ओ भोले भारतीयो चेतो। आज तु दिन रात रुपया कमाने की चिन्ता में है। इस तेरे रुपये ने लाहौर में क्या साथ दिया? तू अपनी बड़ी-बड़ी आलीशान मकान और मढ़ियों को देखकर फूला नहीं समाता है। याद रखों! गरीबों की लाश पर बनी हुई ये तेरी अलीशान मकान मढ़िया तेरे साथ नहीं जायेगी, जमाना पुकार पुकार कर कह रहा है—ईंट और पथरों में भगवान का रुप देखने वाले और साक्षात् भगवान के स्वरुप मनुष्य को अछूत कहलाने वाले इन्सान जरा होश में आ, देख इन्हीं बहिष्कृत लोगों के हाथों में तेरी क्या दुर्गति हुइ। जाति मर गई तो तेरे धन क्या काम में आयेगा। अतः शुद्धि प्रचार और वनवासी संगठन तथा रक्षा के लिये आगे बढ़ो एवं अत्यधिक शुद्धि तथा वनवासी बच्चों के शिक्षा-दीक्षा के लिये दिल खोल कर दान दो, यदि आर्यों, हिन्दुओं चैन से जीना है तो संगठित होकर उड़ीसा के वनवासी क्षेत्रों में शुद्धि प्रचार तथा संगठन और शिक्षा के प्रचार के लिये गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास को दान देना न भूले। आपका सात्विक दान देश की रक्षा में लगेगा।

❀

गुरुकुल वैदिकाश्रम, वेदव्यास
का
वृतान्त

Man is worst animal at the time of his birth, But often be cowes angel at the time of his death.

मनुष्य अपने जन्म समय पशु से भी गिरा होता है, परन्तु प्रायः वह अपने मरण समय पर देवत्व को भी पार कर चुका होता है।

यह इतना बडा परिवर्तन कैसे आता है। किस प्रकार और कैसे मनुष्य-मनुष्यत्व व देवत्व को प्राप्त होता है, जब इस प्रश्न पर दृष्टिपात करते हैं तो केवल एक मात्र साधन शिक्षोपार्जन ही दृष्टिगत होता है। यह शक्ति सत्शिक्षा से ही मनुष्य अपने शारीरिक मानसिक, बौद्धिक व आत्मिक विकास के साथ-साथ सामाजिक व राष्ट्रीय उन्नति को प्राप्त होता है।

मानव को दानवता से बचाकर देवत्व को प्राप्त कराने के यत्न में संसार के कितने ही शिक्षाविदों और मनोविज्ञानवेत्ताओं ने अच्छे से अच्छे शिक्षण पद्धतियों की खोज में काफी समय व धन लगाया है, जिसके द्वारा मनुष्य कम से कम समय में अधिक-से अधिक गुण (शिक्षा) सरलता और स्वाभाविकता से प्राप्त कर सके। जैसे जेनेवा निवासी, श्रीमान् रूसो प्राकृतिक व नैसर्गिक शिक्षण को, श्री पैस्ट्रोलाज मनोवैज्ञानिक आधार को, जर्मन निवासी मिस्टर फरोबैल किड़रगार्ड न (बच्चों का उद्यान) को और रोम-निवासिनी श्रीमती मेरिया माउन्टेसरी (खेल) द्वारा शिक्षण को उत्तम मानती है। इन सभी शिक्षाविदों का आधार छात्र शिक्षा का केन्द्र बिन्दु या खेल द्वारा प्राकृतिक संसर्ग से शिक्षोपार्जन की वकालत की है।

परन्तु भारतीय प्राचीन ऋषि-मुनियों ने जो शिक्षण पद्धति गुरुकुल प्रणाली पर आधारित की है, वह सर्वांगींण विकासपूर्ण हैं। कहने को तो स्कूल में संर्वांगींण विकास की दुहाई दी जाती हैं, परन्तु वह केवल दिखावा है, भुलावा है, नारा ही है, उनके पास समय तो कोर्स को भी समाप्त करने का नहीं होता भला वे सर्वांगींण विकास कब ओर कैसे कर सकते हैं। यह तो केवल गुरुकुलों में ही सम्भव हो सकता है। क्योंकि वहां पर सारा समय गुरुजनों की देखरेख में व्यतीत होता है। वहां समय पर शयन, जागरण, स्नान, व्यायाम, भोजन, पठन पाठन आदि होता है योग्य शिक्षक व आचार्य अपने जीवन का पूर्ण छाप विद्यार्थी पर छोड़ देते है, छात्रों की हर प्रकार की शंका का समाधान योग्य गुरुजन हर समय करते रहते है। ऋषि तो त्रिकाल दर्शी होते हैं। उनके नियम और सिद्धान्त युगों-युगों तक समान रहते हैं।

गुरुकुल-शिक्षा पद्धति के आविष्कर्त्ता वेद तत्ववेत्ता ब्रह्मचारी तपःपूत दिव्य द्रष्टा प्रत्युत्पन्नमति, कुशाग्रधियः, ऋषिमुनि थे।

गुरुकुल पद्धति कहिये या आश्रम व्यवस्था, प्राचीन समय में इतनी शान्त व सुन्दर थी कि शिक्षा के कारण उनके सामने कोई समस्या उपस्थित नहीं होती थी अपितु मानव समाज में जो भी विषमतायें थी वे सभी इसके द्वारा समाधान की जाति थी।

भारतवर्ष में रामायण काल में वशिष्ठाश्रम, विश्वामित्राश्रम, वाल्मीकि आश्रम, भारद्वाजाश्रम, जमदग्न्याश्रम, आदि गुरुकुल थे रामायण के पश्चात् महाभारत युग में भी गुरुकुलों का जाल बिछा हुआ था, परन्तु महाभारत युद्ध के बाद धीरे-धीरे लोप होने लगा और मुसलमान तथा अंग्रेज शासकों के समय सम्पूर्ण गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति लोप हो गया।

ऐसे घड़ी सन्धि बेला में एक महान् दूरदर्शी प्रज्ञाचक्षु ब्रह्मर्षि मथुरा स्थित पर्णकुटीर में बैठा गुरुकुल प्रणाली की ज्योति

को जग-मगा रहा था और प्रयत्नशील, कृतसंकल्प था, इसी ज्योति को पुनः समस्त भारत ही नहीं अपितु विश्वभर में आलोकित करने के लिये अन्धे के लकड़ी का सहारा मिल गया, ये थे स्वामी-ऋषि गुरु विरजानन्द और शिष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती। जिनके पुण्य प्रताप से पुनः भारतीय वैदिक वाङमय का प्रचार-प्रसार हो रहा है। वैदिक धर्म प्रचारार्थ १८७५ में आर्य समाज की स्थापना की गई।

महात्मा मुन्शीराम जी (हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज) की प्रेरणा पर ऋषि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित प्राचीन आश्रम प्रणाली के अनुसार बालकों को शिक्षा-दीक्षा देने तथा वैदिकधर्म, वैदिकआर्ष साहित्य के उद्धार करने के उद्देश्य से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की संरक्षता में २६ नवम्बर १८६८ के निश्चय के अनुसार १६ मई १६०० ईस्वी को गुजरानवाला में वैदिक पाठशाला से गुरुकुल का प्रारम्भ हुआ। कांगडी ग्राम में स्थान मिलने पर ४ मार्च सन् १६०२ ईस्वी को गुरुकुल गुजरानवाला से कांगडी ग्राम, जिला बिजनौर में गंगा के किनारे और हिमालय के उपत्यका में आ गया। उस समय से गुरुकुल फलता-फूलता विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के रुप में परिणत हो गया। इस प्रकार आर्य समाज ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का पुनः सूत्रपात कर देश के हजारों नवयुवकों को भारतीय सभ्यता व संस्कृति में शिक्षित-दीक्षित होने का अवसर प्रदान किया एवं छूआ छूत, अस्पृश्यता, जातिवाद का भूत को दूर किया। सारा उत्तर भारत में गुरुकुलों का जाल बिछ गया है।

परन्तु उत्कल (ओड़ीसा) में भारत के अन्य भागों की अपेक्षा राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक उतार चढ़ाव बहुत कम आये है। सन् १८६५ में इष्ट-इण्डिया कम्पनी कों यहाँ पर दीवानी के अधिकार प्राप्त हुआ। १६११ तक यह बंगाल का एक भाग रहा और इसके बाद १६३५ तक बिहार का भाग रहा १६३६ में इसे ओड़ीसा नाम से एक पृथक प्रान्त बनाया गया। सब से पहले कम्पनी की ओर से भारतीयों को ईसाई बनाने का कुचक्र कलकत्ता

से प्रारम्भ हुआ । उसके बाद ओड़ीसा के बालेश्वर तथा कटक जिला का स्थान हैं । क्योंकि ओड़ीसा में आदिवासी तथा हरिजनों के संख्या अधिक है । राजनैतिक, सामाजिक उतार चढ़ाव के अभाव में तथा झूठे जातिवाद एवं रुढ़ीवादिता के कारण आदिवासी और हरिजन वर्ग धड़ा-धड़ ईसाई बनते गये । स्वाधिनता के पूर्व जितने ईसाई नहीं हुए थे आज उससे भी अधिक प्रलोभनों में आकर ईसाई हो रहे है । विदेशी ईसाई पादरी आदिवासो हरिजनों को हरी-भरी खेती समझकर काट रहा है ।

उड़ीसा में आर्य समाजः—

आर्य समाज के आन्दोलन से यह राज्य प्रायः अछूता रहा । स्वामी दयानन्द सरस्वती बंगाल और विहार में तो आये थे, पर उत्कल क्षेत्रमें उनकी पहुंच नहीं हुई । उनकी मृत्यु के पश्चात भी आर्यसमाजी नेताओं व प्रचारकों का ध्यान भी इस क्षेत्र पर कम ही गया । अंग्रेजी शासन काल में आर्य समाज के प्रसिद्ध आर्य संन्यासी स्वामी नित्यान्द जी महाराज और स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज यहां आये थे । ओड़ीसा के भयंकर अकाल समय में लोक सेवक मण्डल के प्रधान कार्यकर्त्ता लाला हंसराज और लाला लाजपत राय ओड़ीसा आये थे एवं उनके प्रयत्न से ओड़ीसा में लोक सेवक मण्डल की स्थापना हुई । जिनका प्रभाव उत्कल मणि गोपवंधु जी के उपर पड़ा और लाहौर आदि स्थान परिदर्शन करने के वाद सत्यवादी में उड़ीसा में भी गुरुकुल शिक्षा पद्धति की सूत्रपात हुई । ठीक् उसी समय गंजाम जिला में श्री वत्स पंडा जी ने अपना तन मन धन लगाकर आर्य समाज का कार्य शुरु किया, एक ब्रह्मचर्याश्रम, गोशाला आदि स्थापित किये । सर्वप्रथम जनसाधारण में प्रचार के लिये उड़िया भाषा में आर्य समाज के साहित्य का अनुवाद किया था, जिसमें सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि, वैदिक धर्म, सत्संग गुटका, रामायण व महाभारत कथा आदि लगभग ५० पुस्तकें लिखे थे । वैदिक साहित्य के प्रचार के लिये एक प्रेस भी लगाया और आर्य तथा संस्कारक नामक पत्रिका

का भी प्रकाशन शुरु किया । श्री वत्स पंडा ने अपने जीवन काल में ३ ब्रह्मचारियों को ब्राह्म महाविधालय लाहौर में उपदेशक शिक्षा के लिये भेजे थे, ठीक उसी समय पश्चिम ओड़ीसा में श्री विमलेश्वर नन्द आर्य समाज का प्रचार कर रहे थे । वे सम्बलपुर जिला में स्कूल इनिस्पेक्टर थे । सरकारी कार्य में रहते हुए अनेक शिक्षित नव युवकों के अन्दर वैदिक धर्मका प्रचार किये —

जिसके फल स्वरुप आज भीं यहां आर्य समाज का कुछ टिम टिमाते हुए तारे नजर आतें है । वे सर्व साधारण के लिये ओड़ीया भाषा में वैदिक सनातन धर्म और बाल सत्यार्थ प्रकाश लिखे थे । इन दोनों पुस्तकों का प्रचार-प्रसार खूब हुआ था ' इनके प्रभाव के कारण सम्बलपुर जिला में अधिक आर्य समाजी दिखाई देते हैं और अंधविस्वास भी कम दिखाई देता है । पद्म श्री डा० लक्ष्मी नारायण साहुजी नें सत्यार्थ-प्रकाश पढ़कर आर्य समाज की ओर आकृष्ट हुए और आजीवन अछूतोद्धार कार्य में लगे रहे । वे हिन्दू समाज तथा भारत सेवक समाज का भी आजीवन सदस्य रहे हैं ।

ओड़िसा के नारी नेतृ उत्कल भारती श्री मती कुन्तला कुमारी सावत जन्मजात ईसाई धर्म वैदिक धर्म में दीक्षित होकर नारी जागरण के लिये आजीवन प्रचार करते हुए मृत्यु का ग्रास बने ।

आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान श्री मदनमोहन जी सेठ अंग्रेजी शासन काल में उत्कल क्षेत्र कीं बलांगिर रियासत में जब जज नियुक्त हुए थे, तब रांची निवासी बालगोविन्द सहाय जी के सहायता से बलांगीर में आर्यसमज मंदिर की स्थापना हुई और सावमी धर्मा नन्द जी को आसपास में वैदिक धर्म का प्रचारार्थ उपदेशक रखा गया । परन्तु श्री मदनमोहन जी चले जाने के बाद वहां पर आर्य समाज का कार्य निष्क्रिय प्राय हो गया ।

स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

स्वतन्त्रता के पश्चात् उड़ीसा के आर्य संन्यासी श्री युत स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती उत्तर भारत के विभिन्न गुरुकुल तथा आर्य समाज अनुष्ठनों का परिदर्शन करने के बाद उड़ीसा में आकर १९५४ साल से ही आर्य धर्म का प्रचार-प्रसार करना प्रारम्भ किये। उस समय उड़ीसा, बिहार और मध्य-प्रदेश में ईसाई मिशनरियों का खूब जोर सोर से प्रचार कार्य चल रहा था। आदिवासी तथा हरिजनों के मां बाप ईसाई पादरियों ने ही थे। ईसाई पादरी हरी-भरी खेती समझ कर हर्षोत्फुल्ल हो कर काटने में लगे हुए थे। यहां पर कोई अन्य हिन्दू सन्त प्रवेश नहीं कर सकता था। ऐसी ही घड़ी सन्धी बेला में पूज्य स्वामीजी महाराज ने सुन्दरगढ़ जिला को अपना कार्यक्षेत्र चुनाव किये। आर्य संन्यासी के हूंकार को सुनकर ईसाई पादरी रुपी गिंदड़ स्थान छोड़कर भागने लगे। अपनी कार्य कुशलता एवं रांत दिन के अथक परिश्रम से यहां के जनता को न केवल क्रिश्चियन होने से बचाया अपितु इस से पूर्व क्रिश्चियन बन चुके लगभग २०,००० नरनारियों को पुनः शुद्धि करके आर्य जाति का अंग बनाते हुए महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदर्शिति सच्चे मार्ग का दर्शन कराया। उड़ीसा के सम्बलपुर बलागींर, सुन्दरगढ़ आदि जिलों में उत्तर भारत में स्थापित गुरुकुल जैसे उड़ीसा में भीं गुरुकुल की स्थापना के लिये विभिन्न स्थान परिभ्रमण किये। यजुर्वेद २६।१५ मन्त्र के अनुसार वेदाध्ययन का स्थान "उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां धिया विप्रो-अजायत" न मिलने के कारण स्वामीजी के मन के विचार मन में रहे। परमात्मा की असीम कृपा से महर्षि वेदव्यास जी की जन्म-भूमि वेदव्यास, जो शंख और कोयल नदी के संगम स्थल ब्राह्मणी नदी के समीप पहाड़ के उपत्यका में स्थान मिल गया।

गुरुकुल वैदिकाश्रम, वेदव्यास की स्थापना

महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास की जन्मभूमि होने के कारण इस स्थान का महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से उच्चस्थान रखता है। सम्मुख में पराशर पर्वत दण्डायमान है। शंख, कोयल और सरस्वती निर्झरिणी का संगम स्थल प्रयाग त्रिवेणी संगम जैसे मनोहर दृश्य को आँखो के सामने उपस्थित करता है। यहीं से आगे चलकर इन तीनों नदियों के सगम से ब्राह्मणी नदी प्रवाहित हुई है। यह किम्वदन्ति है कि ब्राह्मणी नदी का नाम कैवर्त्त कन्या के ब्राह्मण बनाने के कारण पराशर मुनिने डाला था। इसी संगमस्थली विशाल पर्वत की उपत्यका में भगवान वेदव्यास का आश्रम था। इसी गुफा में बैठ कर ब्रह्मसूत्र तथा महाभारतादि ग्रन्थों का रचना किया था। इन्ही के नाम से यह स्थान वेदव्यास नाम से प्रसिद्ध है। महर्षि वेदव्यास जी के कीर्ति स्तम्भ को वजाये रखने के लिये पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने १९५९ में विद्यापीठ के रुप में गुरुकुल की स्थापना की, जिसका प्रारम्भिक उद्घाटन स्वामी शिवानन्द तीर्थ जी ने किया था और लुंगेई के श्री तेम्बा भगत प्रथम अध्यापक नियुक्त हुए थे। इसी स्थान पर गुरुकुल वैद्यनाथ धाम (बिहार) के मुख्याधिष्ठाता श्रीयुक्त महादेव शरण जी के भेजे हुए श्री स्वामी विवेकानन्द जी सरस्वती अध्यापक के सहयोग से श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने गुरुकुल की प्रारम्भ कर दी, जिसका विधि पूर्वक उद्घाटन संस्कार श्री युक्त सेठ सोहन लाल जी दुग्गड़ कलकत्ता निवासी के करकमलों से शिवरात्रि (ऋषिवोध) के उत्सव पर फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी २०१९ विः भृगुवार तदनुसार ता० २२-२-६३ को यज्ञ के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

उस अवसर पर श्री पं० शिवनन्दन जी काव्यतीर्थ, श्री पं० हरिशरण जी आर्य स्व० श्री स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ, स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती, श्री सीताराम जी आर्य, और पं० रामरीझन शर्मा का भाषण हुआ, जिससे प्रभावित हो सेठ सोहन लाल जी दुग्गड़ ने रु० ५०००) दान दिये और १०० ब्रह्मचारियों के भोजनार्थ दिये। वही यह गुरुकुल वनवासी छात्रों का तीर्थस्थान वन गया।

सर्व प्रथम यह गुरुकुल, गुरुकुल झज्झर (हरयाणा) के पाठ-विधि के अनुसार १९६८ तक चला। उसके बाद उत्कल संस्कृति समिति पुरी के पाठ विधि के अनुसार सुचारू रूप से चल रही है। यह उत्कल प्रदेश के प्रमुख राष्ट्रीय शिक्षा संस्था है।

गुरुकुल का उद्देश्य

वैदिक धर्म और भारतीय संस्कृतिके आधार पर किसी साम्प्रदायिक और सामाजिक भेद-भाव के बिना बालकों को शिक्षा देकर उनका शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास करना एवं उन्हें धर्म परायण विद्वान, समाज सेवा, ईश्वर का सच्चा उपासक तथा कर्मठ कर्मी, देशभक्त सुयोग्य नागरिक बनाना इस गुरुकुल का मुख्य उद्देश्य है।

प्राच्य तथा पाश्चात्य विषयों के समन्वित अध्ययन-अध्यापन, कृषि, गृह उद्योग, उद्यान, अतिथि सेवा, रोगी सेवा तथा शिल्पकला आदि की शिक्षा देकर सात्विक साधनों द्वारा छात्रों को स्वावलम्बी बनने की दिशा में प्रवृत्त करना।

गुरुकुल की विशेषताएं

नगर से दूर शान्त एवं स्वस्थ वातावरण।
आश्रम जीवन की नियमित दिनचर्या
सादा, सरल जीवन और उच्चविचार
प्राच्य और पाश्चात्य विषयों का समन्वित अध्ययन।
स्वतन्त्र राष्ट्रिय निःशुल्क शिक्षण।
शिक्षा में नैतिक आध्यात्मिक एवं चरित्रिक विकास की प्रेरणा

गुरुकुलीय पाठ्यक्रम

इस गुरुकुल का संस्कृत विभाग उत्कल संस्कृति समिति पुरी से सम्बद्ध है । गुरुकुलीय पाठ्यक्रम में धर्म शिक्षा और संस्कृत का प्रमुख स्थान है । इनके अतिरिक्त मैट्रिकुलेशन कोर्स के विषय भी पढ़ाये जाते है । अस्तु यहां के छात्रों को धर्मशिक्षा संस्कृत, हिन्दी, उड़िया, अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, समाज, अध्ययन, इतिहास, भूगोल आदि विषय पढ़ाये जाते है । यहाँ पर उत्कल संस्कृत समिति पुरी के मध्यम वर्गों तक शिक्षा दी जाती है ।

प्रबन्ध समिति—

वन्य पार्वत्य इलाका में निरीह, अशिक्षित, घृणित, वनबासी बच्चों को सुशिक्षित करने के लिये "वनवासी विद्यासभा" की स्थापना की गई एवं १८६० सोसायटीज रजिष्ट्रेसन एक्ट के अन्तर्गत १९६७ में रजिष्टर्ड की गई । जिसके अन्तर्गत यह गुरुकुल वैदिकाश्रम चल रहा हैं । जिसमें निम्नलिखित बिभाग काम कर रहा है ।

१) गुरुकुल वैदिकाश्रम [छात्रावास]
२) गुरुकुल वेदव्यास संस्कृत विद्यालय
३) वनवासी सांस्कृतिक समिति
४) भारतीयकरण सभा, "और प्रचार विभाग
५) अराष्ट्रिय प्रचार निरोध समिति
६) उत्कल वैदिक साहित्य संस्थान (प्रकाशन विभाग)
७) शान्ति आश्रम प्रेस
८) गुरुकुल पत्रिका (,तीन-हिन्दी, ओड़िया, संस्कृत)
९) गुरुकुल आयुर्वेदिक फार्मेसी
१०) गुरुकुल वेदव्यास गोशाला
११) वेद भवन
१२) ब्रह्मानन्द पुस्तकालय
१३) दयानन्द शिशु भवन

गुरुकुल वैदिकाश्रम निःशुल्क भरण पोषण

गुरुकुल के समस्त ब्रह्मचारी आश्रमों में विभक्त है और प्रत्येक आश्रम के ब्रह्मचारी अपने भिन्न २ वास स्थान में निवास करते हैं। प्रत्येक आश्रम के ब्रह्मचारियों पर दृष्टि रखने तथा उनके सब काम नियम पुर्वक कराने के लिये एक एक शिक्षित सदाचारी संरक्षक नियुक्त हैं, जो ब्रह्मचारियों के शौच, व्यायाम, स्नान, सन्ध्या, हवन, भोजन के समय साथ रहते है।

इस भयंकर महंगाई के जमाने में भी यहां प्रत्येक छात्र को देश की अमूल्य निधि समझते हुए विना भेदभाव के वनवासी, अछुत तथा सवर्ण बच्चों को वैदिक धर्म तथा संस्कृत की शिक्षा दी जाती है। आज इस संस्था में ६० ब्रह्मचारी शिक्षा ग्रहण कर रहे है। सभी को भोजन, छादन आदि निःशुल्क दी जाती है। अतः इस उत्कल प्रान्त के आदिवासी बालकों के प्रमुख शिक्षणालय को उदार हृदय से उन्मुक्त हस्तों से सहायता करना प्रत्येक राष्ट्र प्रेमी धर्मानुरागी आर्य संस्कृति के उपासक वेदानुयायी देशोद्धारक का कर्त्तव्य है।

वनवासी सांस्कृतिक समिति, भारतीयकरण सभा

इस अनुष्ठान के अन्तर्गत बनवासी संस्कृति की रक्षा एवं वनवासियों के अन्दर वैदिक धर्म का प्रचार, प्रसार करता है। लोभ, लालच तथा अज्ञानतावस अपने पुराने धर्म को छोड़ कर जो विधर्मी हो गये हैं। उन्हें स्वधर्म में वापस लाने के लिये यह अनुष्ठान सतत प्रयत्नशील है। अभीतक लगभग २०,००० वनवासी ईसाईयों को शुद्ध करके अपने धर्म में मिलाने में समर्थ हो सका है। इस अनुष्ठान के अन्तर्गत सार्वदेशिक सभा की ओर से श्री सुकुरा-मुन्डा, श्री लोपा मुन्डा, श्री चन्द्रसिंह किसान और सुरेन्द्र सिंह जी प्रचारक कार्य कर रहे हैं, साथ ही १० अवैतनिक प्रचारक गुरुकुल वैदिक आश्रम की ओर से वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं।

उत्कल वैदिक साहित्य संस्थान :-

किसी भी संस्था को आगे बढ़ाने के लिये इसका साहित्य प्रकाशन करना एक प्रमुख आवश्यकता है। इसलिये ओडीया भाषा में आर्य समाज का साहित्य प्रकाशन करना एक आधार भूत आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से उत्कल वैदिक साहित्य संस्थान की स्थापना की गई है। अभी तक यह अनुष्टान उड़ीया भाषा में संस्कार विधि, नित्यकर्म विधि, गायत्री मंत्र, वेदमाता, ईशोपनिषद, केनोपनिषद, कठोपनिषद, महान् दयानन्द, खीष्ट, खीष्टधर्म और खीष्ट जगत, आर्य समाजर परिचय आदि अनेक उपादेय ग्रन्थ, ट्रेक्ट आदि प्रकाशित हुआ है। सत्यार्थ प्रकाश का संशोधित संस्करण छप रहा है। आगे का योजना है कि चारो वेदों का उड़ीया अनुवाद प्रकाशित करना।

पुस्तकालय व वाचनालय :-

किसी भी शिक्षण संस्था के साथ पुस्तकालय का होना अत्यावश्यक है। गुरुकुल का पुस्तकालय उड़ीसा प्रदेश के पुस्तकालयों में से एक प्रमुख स्थान रखता है। क्यों कि यहांपर आधुनिक विषय के साथ-साथ वेद, उपनिषद, दर्शन आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त साहित्य, इतिहास, राजनीतिं, समाजशास्त्र, विज्ञान, सामान्यज्ञान, बाइबिल, कुरान, पुराण आदि विषयों की लगभग ४०००पुस्तकें संस्कृत, हिन्दी, उड़ीया, अंग्रेजी, उर्दु, बंगला, मराठी, गुजरातीं आदि भाषाओं में वर्तमान हैं।

पुस्तकालय के साथ ही एक अच्छा वाचनालय भी है। जिसमें हिन्दी, संस्कृत, उड़ीया, अंग्रेजी आदि भाषाओं के दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्रिकायें लगभग ३० आती रहती है। अनुमानतः ५० व्यक्ति प्रतिदिन पुस्तकालय व वाचनालय से लाभ उठाते हैं।

गुरुकुल का मुद्रणालय शान्ति आश्रम प्रेस :-

कलकत्ता निवासिनी श्रीमती शान्तिदेवी लूथराजी ने उड़ीसा में वैदिका साहित्य प्रकाशनार्थ एक प्रैस प्रदान की है। जिसमें वैदिक धर्म प्रचारार्थ प्रचार पत्र पुस्तकें गुरुकुल सम्बन्धी सब कार्यों

का प्रकाशन भी होता है। गुरुकुल से प्रकाशित समस्त पत्रिका इसी प्रेस से प्रकाशित की जाती है। अभी कार्य अधिक बढ़जाने से और एक नई मेशीन खरीदा गया है। जिसमें गुरुकुल के ब्रह्मचारी कम्पोजिसन शिक्षा ग्रहण करते है।

गुरुकुल का प्रमुख पत्र :-

गुरुकुल के हितैषियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उड़ीसा में वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार के लिये इस संस्था की और से हिन्दी भाषा में वनवासी सन्देश (मासिक), उड़ीया भाषा में आश्रम ज्योती (मासिक) और संस्कृत भाषा में उत्कलोदय (त्रैमासिक) प्रकाशित हो रहा है और जनता के सेवा कर रहा है। इस में धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक लेखों तथा कविताओं की प्रचुरता रहती है।

गुरुकुल आयुर्वेदिक फार्मेसी :-

प्राचीन आयुर्वेद की रक्षा तथा वनवासी जनता में आयुर्वेद की प्रचार प्रसार के लिये "गुरुकुल आयुर्वेदिक फार्मेसी" की स्थापना की गई। जिसमें अनुभवी मान्यता प्राप्त वैद्य तथा कार्य कर्त्ता लगे हुए हैं। इस में शुद्ध वन्य जड़ि-बुटियों से विभिन्न प्रकार औषध निर्माण किया जाता है। चैवनप्राश, आयुर्वेदिक गुरुकुल चाय, अशोकारिष्ट, सारिवालादि शालसा, दन्तमंजन, महा मृत्युजंय रस, ब्राह्मी अंवला तेल, अभयादि मोदक आदि अनेक औषध निर्माण होता है। साथ ही आसपास के वनवासी जनता के निःश्लुक चिकित्सा भी वैद्य जी महाराज आश्रम में करते है।

शुद्ध हवन सामग्री भी फार्मेसी में निर्माण होता है।

आर्योपदेशक निर्माणार्थ विभिन्न गुरुकुलों में ओड़ीया छात्र प्रेरण :--

ओड़ीसा में वैदिकधर्म प्रचारार्थ ओड़ीया भाषी नवयुवकों में ही काफी प्रचारक और कार्यकर्त्ता निकले, ताकि वे अपने प्रान्तीय भाषा में वैदिकधर्म का प्रचार प्रसार कर सकें, इसके लिये इस गुरुकुल की ओर से उपदेशक विद्यालय वैदिक साधनाश्रम यमुना नगर (पंजाव), दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय हिसार (हरयांणा),

गुरुकुल गदपुरी गुड़गावां (हरयाणा) गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरद्वार सहारानपुर (उः प्रः) गुरुकुल चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) गुरुकुल प्रभात आश्रम मेरठ (उः प्रः) गुरुकुल ततारपुर मेरठ (उः प्रः) साधु आश्रम अलीगढ़ (उः प्रः), कन्या गुरुकुल हाथरस (उः प्रः) आदि में अध्ययन के लिये भेजा गया है। वे अध्ययन समाप्त कर उड़ीसा में आकर वैदिकधर्म का प्रचार करेंगे।

गुरुकुल वेदव्यास गोशाला :-

गो जाति की रक्षा के लिये पूज्य स्वामी जी महाराज सर्व प्रथम एक छोटा सा गोशाला प्रारम्भ किये थे। जिसमें कसाई के हाथ में जाने वाली गौवें ही यहां रखा जाता था। परन्तु धीरे-धीरे यह कार्य बढ़ा और इस आवश्यकता को देखते हुए प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीयुक्त जयदयाल जी डालमियां ने एक गोशाला का भव्य भवन निर्माण कर दिया है। इसके अतिरिक्त गोशाला निर्माण में उत्कल निवासी कटक जिलान्तर्गत अडंग शासन के निष्ठावान ब्राह्मण गो भक्त, तपस्वी श्रीयुक्त वामन त्रिपाठी जी ने अपना सात्विकदान रु २२०००) (बाईसहजार रुपये) श्री स्वामी-ब्रह्मानन्द जी को भेंट किया। जिसमें गोशाला के चार दिवारी अन्य गोशाला भवन तथा कुटिया निर्माण हुआ है। गुरुकुल की गोशाला में लगभग १०० पशु है। जिनमें सांड़, बैल, गाय, बछिया तथा बछड़े है। गोशाला की गाय अच्छी हरयाणा नसल की है और कोई भी बेकार नही है। साथ ही अपंग अपाहिज गौवों की यहाँ पर सेवा सुश्रुषा की जाती है। सम्प्रति राउरकेला के व्यापारी भाइयों ने गोशाला का दायित्व अपने हाथों में लियो है।

वेद भवन :-

इस वेद भवन की आधारशिला भारत के उप राष्ट्रपति श्रीयुत महामहिम बी० डी० जत्ति जी ने १३ जनवरी १९७७ को रखी। जिसमें चारों वेद रखा गया है। प्रतिदिन वेद पाठ तथा वैदिक आलोचना चलता हैं। उड़ीसा के दूर- दूर से वेदों के देखने के लिये यहां पर आते हैं और वेदों के सम्बध में शिक्षा लाभ करते हैं।

दयानन्द शिशु भवन :—

जैसा कि सभी जानते हैं कि ओड़ीसा में पूर्वी घाट की पहाडियां और जंगल दूर-दूर तक फैले हुए हैं और यही कारण है कि १७० लाख आवादी में करीब ४२ लाख बनवासी जातियां और २६ लाख हरिजन हैं। इसके साथ दूर्भिक्ष और बाढ़ इस प्रदेश का सहचर है। इसलिये इस प्रदेश में अधिकतर अशिक्षित, अन्धविश्वासी, गरीब जनता दिखाई देते हैं। इनकी अज्ञानता और गरीबी का लाभ उठा कर ईसाई मिशनरियां करोड़ों रुपया खर्च करके इन्हें ईसाई बनाने की चेष्टा में हर समय लगे हुए है। और काफी मात्रा में इनको ईसाई बना भी लिया, स्थान - स्थान पर चर्च स्कूल, कालेज, हास्पताल, प्रचारक ट्रेनिगं स्कूल, अनाथालय आदि खाल कर निरीह दरिद्र जनता को ईसाई बना रहे हैं। जो इनके अनुष्ठान में गया, वह उनका ही हो गया। अनाथ बच्चों को ईसाई मिशनरी लोग अपना परमात्मा के वरदान समझते हुए उन्हें पक्का प्रचारक बनाने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे हजारों लाल उनके चंगुल में फंस जाते हैं। ऐसी अवस्था में यहां आर्य (हिन्दू) जाति का प्रधान कर्त्तव्य है कि अपने देश के इन अंगों की रक्षा करना, व ईसाई कुचक्रों को फैल करना और अपने पिछड़े हुए भाईयों के विकास में सहायता करना है।

असहाय, दरिद्र, अनाथ वच्चों के रक्षार्थ पूज्यस्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी के सतत प्रयत्न से गुरुकुल भूमि में 'दयानन्द शिशु भवन" की स्थापना की गई। जिनका उद्‌घाटन उड़ीसा के मुख्यमंत्री श्रीमती नन्दीनी शतपथी जी के करकमलों में २१ अगस्त १९७६ को हुई। इस भवन का निर्माण में लगमग १ लाख ८२ हजार रुपया खर्च हुआ है।

जिसमें १०० अनाथ, दरिद्र, असहाय छोटे छोटे बच्चे रह रहे है। यदि इन छोटे छोटे बच्चे को यहां रखा नहीं जाता तो और कोई विधर्मी ले जाते। इनके देखभाल के लिये ४ संरक्षक रह रहे हैं और उनेक ऊपर एक मुख्य संरक्षक नियुक्त हुआ है। इन १०० बच्चों का शिक्षा-दीक्षा, भोजन, छादन समस्त व्यय आश्रम ही व्यय कर रहा है। प्रत्येक बच्चों को पुस्तक, स्याही, कलम, थाली, लोटा, सोने के लिये बिछौना चादर, तख्तपोस सब कुछ आश्रम ही वहन कर रहा है।

आज के महंगाई के युग में गुरुकुल वैदिकाश्रम के ८० छात्र तथा दयानन्द शिशु भवन के १०० बच्चे सर्वयोग १८० बच्चों को भोजन, छादन देकर लालन पालन करना कितना कष्टकर व्यापार, यह प्राय सभी गुरुकुल प्रेमियो को अनुभव करने से ज्ञात ही होगा।

प्रत्येक बच्चों के पीछे मासिक रु १००-०० रुपया खर्च होता हैं। अतः इन सभी बच्चों के ऊपर मासिक रु १८०००) (अठारह हजार रुपया) खर्च होता है।

आज बढ़ती हुई महंगाई के कारण और आपकी अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासनीता के कारण ये संस्थायें घोर संकट में पड़ गई है और इनका चलाना कठिन हो रहा है। अत. दानी महानुभावों से नम्र निवेदन है कि अधिकाधिक दान देकर बच्चों के लालन पालन में हाथ बटायें।

वनवासी विद्यासभा की शाखायें —

१। गुरुकुल आमसेना — कलाहांडी
२। कन्या गुरुकुल तनरड़ा भंजनगर – गंजाम
३। करुणाकर वेद विद्यालय दशरथपुर — कटक
४। वैदिक आश्रम पिंछावणिया — बालेश्वर
५। शान्ति आश्रम तपोवन — फुलवाणी
६। दयानन्द धर्मार्थ औषधालय पानपोस — सुन्दरगढ़
७। दयानन्द धर्मार्थ औषधालय — गुढ़ियाली — सुन्दरगढ़
८। दयानन्द धर्मार्थ औषधालय केलेमाहा — फुलवाणी
९। वि० पि० हेल्थ सेन्टर — तपोवन — फुलवाणी

जिसमें गरीब वनवासियों के चिकित्सा के लिए श्री युत प्रभुदयाल की अग्रवाल प्रधान भरुखा चेरिटेवल ट्रस्ट बम्बई की और से V. P. Health Centre का निर्माण हुआ है। जिसमें ६ शय्या है एवं एक डाक्टर कम्पाऊडंर तथा नर्श हैं।

१०। गुरुकुल विद्यापीठ भोजपुर — सुन्दरगढ

इसी प्रकार महर्षि दयानन्द हाईस्कुल पावुरिया, महर्षि दयानन्द हाईस्कुल काटिंगिया, दयानन्द हाईस्कुल लुगेंइ, दयानन्द हाईस्कुल राउरकेला, श्रद्धानन्द मिडिल स्कुल पादरिपड़ा आदि ६ मिडिल स्कुल, केलेमाहा, शालगिया, तडगिया फुलवाणी और सुन्दरगढ़ जिला में भिन्न भिन्न स्थानों पर २५ रात्रि पाठशालायें

(Night School) स्थापित किये। इस प्रकार कुल ३५ छोटी बड़ी संस्थायें आपके ही पवित्र सहयोग और दान से वनवासी विद्या सभा चला रही है। उक्त दातव्य औषधालयों पर प्रति मास (रु २०००) दो हजार रुपया व्यय होता है। गुरुकुल वैदिकाश्रम की शिक्षण संस्था में (रु २२०००) वाईस हजार मासिक व्यय होता है। शेष अन्य संस्थाओं पर ३००० से रु ५००० तक मासिक व्यय होता है। इस व्यय में भोजन, वस्त्र, शिक्षा, अध्यापक तथा कर्मचारियों का वेतन भी सम्मिलित है। आज बढ़ती हुई महंगाई के कारण और आपकी अपने कर्त्तव्यों के प्रति उदासीनता के कारण ये संस्थायें घोर संकट में पड़ गई है और इनका चलना कठिन हो रहा है। यदि ऐसी ही दशा रही तो ये संस्थायें कुछ समय बाद कालकवलित हो जायेगी, जिससे देश की बड़ी भारी हानि होगी और सारा प्रयास निष्फल हो जायेगा। अतः समय रहते ही चेतिये और इन संस्थाओं की रक्षा करके यश और पुण्य की भागी बनिये।

हमारी तत्कालीन आवश्यकता :—

५०,०००) — यज्ञशाला
१००,०००) — वैदिक प्रकाशनार्थ
२२८,०००) — अनाथ तथा दरिद्र वनवासी बच्चों के भोजनादि व्यय के लिये वार्षिक छात्रवृत्ति।
६०,०००) — पाकशाला।

"आदर्श दान"

ओड़ीसा के बनवासी वर्ग शुद्धि परिवार दरिद्र लोंगोंको वस्त्र वितरण के लिये श्रीमती रुक्मणी देवी सरोत देव सदन, आम्वेदकर रोड़ माटुंगा बम्वई ने स्वामी श्री ब्रह्मानन्द जी के पास ५००) भेजा है। एतदर्थ दान दाता सधन्यवाद।

गुरुकुल की सम्पत्ति आनुमानिक

१- भूमि साढ़े छः एकड़ —	रु ६७२,०००
२- पुराने भवन—	रु ३००,०००
३- सभागृह —	रु ५०,०००
४- अध्यापक गृह—	रु २०,०००
५ विद्यालय-	रु ५४,०००
६ छात्रावास—	रु ५७०००
७ पाकशाला डाइनिंग हल—	रु १५,०००
८ अतिथिशाला—	रु ८०.०००
९ वेद भवन—	रु १५,०००
१० दयानन्द शिशुभवन—	रु १८२,०००
११ उत्कल साहित्य संस्थान की पुस्तकें—	रु ५, ०००
१२ ब्रह्मानन्द पुस्तकालय—	रु ३०,०००
१३ संस्कृत विद्यालय पुस्तकालय—	रु १५,०००
१४ आयुर्वेदिक फार्मेसी की औषधियां और सामान—	रु ३,०००
१५ कृषि और गोवादि सामान-	रु १,०००
१६ गुरुकुल की जीप गाडी—	रु २२,०००
१७ साईकिल और लूना—	रु ३,०००
१८ ३कूप—	रु ३०,०००
१९ शान्ति आश्रम प्रैस—	रु ६०,०००
२० यज्ञशाला —	रु ५.०००
२१ गुरुकुल का विविध सामान—	रु २०००,०००
२२ गोशाला गृह और सामान—	रु ३०००,०००
२३ गुरुकुल वेदव्यास गोशाला की गौयें—	रु १०००,०००
	रु २८४६,०००

स्वामी ब्रह्मानन्द जी अस्वस्थ—

गुरुकुल के शुभ चिन्तक, आर्यसमाज के कर्मकर्त्ता और आर्य परिवारों को सुचित किया जाता है कि स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती पुराना पेट रोग में पुनः शक्त अस्वस्थ हो गये हैं। चिकित्सा के लिये स्वामी जी को बाहर भेजा गया है। जो महानुभाव स्वामी जी के इलाज के लिये सहायता करना चाहते हैं।

गुरुकुल वैदिकाश्रम, वेदव्यास, राउरकेला—४, जिः सुन्दरगढ़ उड़ीसा के पत्ते पर भेजें।

(संपादक)

आर्य समाज मंन्दिर जमशेदपुर में वेद कथा :—

आर्य समाज मंदिर जमशेदपुर में दिनाँक १६-२-७८ से २६-२-७८ तक वेद कथा का आयोजन मनाया गया। पं॰ श्याम सुन्दर स्नातक जी विदेशों में वेद प्रचार के पश्चात जमशेदपुर पधारे तथा उनके द्वारा समाज मंदिर में वेद कथा का कार्य समपन्न हुआ। काफी संख्या में आर्य परिवार के सदस्यगण ने इस से लाभ उठाया। समाज के प्रधान श्री राजपाल सौनी जी ने पं॰ श्याम सुन्दर जी के प्रति आभार प्रकट किया आर्य समाज द्वारा संचालित भारतीय माँडल स्कूल के विद्यार्थियों के बीच भी पं॰ जी के व्याख्यान हुए। तथा विद्यार्थियों ने वेद कथा से लाभ उठाया।

उपमंत्री—
डा: ओम प्रकाश आर्य

वैदिक विद्यालय में वेदोपदेश —

दिनांक २५-२-७८ शनिवार प्रातः ९ वजे दयानन्द आर्य वैदिक मध्य विद्यालय सोनारी में पं॰ श्याम सुन्दर स्नातक जी के द्वारा वेदोपदेश हुआ। पं॰ जी ने विद्यार्थियों के बीच वैदिक पद्धति से उनके दैनिक कार्यक्रम पर प्रकाश डाला। मंत्री श्री बेनी प्रसाद सिंह ने इस आयोजन में उपस्थित सभी महानुभावों का स्वागत किया। विद्यालय की प्रधान अध्यापिका श्रीमती सुस्मकान्ता प्रहाक ने धन्यवाद ज्ञापन किया। इस आयोजन में आर्य समाज जमशेदपुर के प्रधान श्री राजपाल सौनी आचार्य पं॰ जगत राम जी एवं श्री ओम प्रकाश जी का विशेष सहयोंग प्राप्त हुआ।

मंत्री—
बेनी प्रसाद सिंह

—शोक संवाद—

धीरु भाई आर्य (धरिज लाल मानिक लाल शाँट) जोरावर नगर, सौराष्ट्र जी का स्वर्गवास आज से करीब ६ माह पूर्व हो गया है। यह सूचना हमें श्री ईन्दु लाल मोती लाल पटेल जी से मिली है। हम सभी आश्रमवासी इनके निधन से शोकातुर है और प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि स्वर्गीय आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा और शोक संतप्त परिवार को धैर्य धारण के लिए परमात्मा शक्ति प्रदान करें।

आदर्श दान:—

ओडीसा प्रान्त में आर्य समाज के ओर से जो सेवा, शिक्षा, वैदिक धर्म प्रचार हो रहा है, इस कार्य में सहायतार्थ देहरादुन निवासी श्रीयुत नरेन्द्र मित्तल जी एडवोकेट ने अपने स्व० पिता पन्नालाल मित्तल जी के पुण्य स्मृति में स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती के पास ११००) (एक हजार एक सौ) रुपये भेजें है। स्वामी जी महाराज, कुलवासी और वनवासी जनता दानदाता श्रीयुत मित्तल जी के मंगल कामना करते हुये स्व० पन्नालाल मित्तल जी (जिनका देहान्त ७-३-१९७७ को देहरादुन में हो गया है) के आत्मा का सदगति के लिये प्रभु से प्राथना करते हैं।

(संपादक)

खुदा सिख हो गया है :-

श्री महाराजा रणजीत सिंहजी के प्रधान सेनापति सरदार हरिसिंह नलवे की सेनाओं ने भारतीय शूरवीरों की वीरता की धाक जमा दी। पठान हरिसिंह नलवे का नाम सुनकर ही चौंकने और भय से कांपने लगे। पठान स्त्रियां रोते हूए बच्चों को चुप करने के लिये कहती –" चुप-चुप, नही तो नलवा आ जायेगा "

पठान युवकों की एक मंडली ने सरदार हरिसिंह नलवे के विरुद्ध एक षडयन्त्र रचो। उन्होंने सहायता के लिये एक वृद्ध पठान को पत्र लिखा। उसमें लिखा था „ "हमने हरिसिंह नलवे को समाप्त करने का आयोजन किया है। आओ, तुम भी हमारे साथ शामिल हो जाओ। इत्यादि।

बुढ़ा जानता था कि उस महावीर के सामने इनका यत्न बच्चों का खेल है। उत्तर में उसने लिखा—" आपके पत्र से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। आपने बहुत अच्छा उपाय सोचा है मैं केवल इतना ही कहता हुं कि यदि तुम्हारे अन्दर ताकत हो तो कदम आगे बढ़ाना। खुदा पर कुछ भी भरोसा न करना। क्योकि खुदा तो आजकल सिख हो गया है।

BANAWASI SANDESH MARCH 1978 Regd. No. 618

प्रकाशक :— स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती द्वारा शान्ति आश्रम प्रेस, वैदिक आश्रम वेदव्यास, राउरकेला - ४ में मुद्रित ।

★ कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ★

वनवासी सांस्कृतिक समिति, वेदव्यासस्य,
मासिकं मुख-पत्रम्

वनवासी संदेश

संस्थापक :- स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

गणतन्त्र दिवस

7/3/78

संपादक
पं० आत्मानन्द शास्त्री

सह-संपादक
पं० देशबन्धु विद्यावचस्पति

-: नव वर्ष मंगलमय हो :-

वनवासी-संदेश के अगणित पाठक पाठिकाओं के नव वर्ष आशाओं, उपलब्धियों और उन्नति के नित नवीन अवसरों से परिपूर्ण हों- ऐसी मंगल कामना करते हैं—

सद्धर्म कर्म पालन सहित नैतिक विस्तार हो।
होवे समाज कल्याण समुचित सत्य सुधार हो॥

— व्यवस्थापक —

वनवासी-सन्देश

—; ओ३म् :—

वनवासी-सन्देश

उत्कल जनता संस्कृति रक्षा वद्धकटिस्तमः स्तोमहतिदेशः
गुरुकुल सुपानपोषादुदयति बनवासी सन्देशः ॥
यां भ्रष्ट ख्रीष्टमत दीक्षित मञ्जलोकन्
संस्कृत्य दूरयति तद्घृदयान्धकारम् ॥
श्री वेदव्यास सुगुरु कुल सन्निवेशः
सम्पूर्वादिरुदयते ववासी संदेशः ॥

वर्ष १२ अंक १	जनवरी १९७८	वार्षिक मूल्य ५ रु एक प्रति ५० पैसे

वेदोपदेश

**ओ३म् प्रत्यग्ने हरसा हरः श्रृणाहि विश्वतस्परि
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्जं वोर्यम् ॥**

(सामवेद पूर्वार्चिक ९५)

भावार्थ — अग्ने= मुझे उन्नत अवस्था में प्राप्त कराने वाले प्रभो ? हरसा= मेरा हरण करने वाले, मुझे अपने आपे में न न रहने देने वाले इस क्रोध नामक असुर के हरः= क्रोध को विश्वतः परि= सब ओर से, सब प्रकार से प्रतिश्रृणाहि= नष्ट कर दीजिये ! मैं क्रोध को अपने से दूर रख सकूं । इन्द्रियां मन व बुद्धि कहीं भी इसका निवास न हो । इसके प्रबल होते ही मेरा सारा शरीर कांपने लगता है और मै स्वास्थ्य नहीं

रहता । मुझे एक संमोह सा हो जाता है (क्रोधात् भवति संमोहः)- और मैं सब सुध बुध भूल जाता हूँ । संक्षेप में यह मुझे हर ले जाता है— और इस प्रकार (हरस) इस सार्थक नाम वाला होता है ।

हे प्रभो ! आप मेरे इस क्रोध को तो दूर करिये ही और यातुधानस्य= (यातु=पीड़ा) पीड़ा के आधान करने वाले काम नामक असुर के बलम्= बल को भी न्युब्ज= झुका दीजिये । काम= इच्छा पूर्ण नहीं होती और पूर्ण न होती हुई मनुष्य को पीड़ित करती है । पूर्ण होकर भी वासना मनुष्य को जीर्ण करके दुःखी बना डालती है । इसी से यह काम यहां यातुधान= पीड़ा को देने वाला कहा गया है । इसका बल व वेग कम होगा, तभी हमारा कल्याण होगा । इसकी प्रबलता में पीड़ा ही पीड़ा है ।

सो हे प्रभो ! इस यातुधान को हमारे से दूर कर दो, साथ ही रक्षसः (र+क्ष) अपने रमण (मौज) के लिये औरों के क्षय की वृत्ति की वीर्यम्= शक्ति को भी न्युब्ज= कुचल दो । लोभ का शिकार होकर मनुष्य धर्माधर्म सत्यासत्य को तिलांजलि दे क्रूर बन कर धन को कमाता है, ताकि प्राकृतिक विलासों का अनुभव कर सके । पर क्या वे प्राकृतिक विलास उसको सुखी बना पाते हैं ? नहीं । इन क्रोध, काम व लोभ को तो गीता में तीन नरक द्वारों के रूप में चित्रित किया है । ये उसकी दुर्गति ही दुर्गति का कारण बनते हैं- सुगति का नहीं । इन तीनों को तो समाप्त करना ही ठीक है । इनकी समाप्ति कर के ही मनुष्य अपनी रक्षा करने वाला बनता है । इनके समाप्त करने पर ही उसकी शक्ति की भी वृद्धि होगी और वह अपने में शक्ति को भरने वाला "भरद्वाज" कहलायेगा ।

भावार्थ :— काम, क्रोध और लोभ को समाप्त कर हम अपनी रक्षा करें और शक्तिशाली बने ।

□

महर्षि दयानन्द :- संक्षिप्त जीवन चरित

~~~~ गतांक से आगे ~~~~

राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली भावना, स्वराज्य, देश की औद्योगिक उन्नति का प्रयत्न जर्मनी के प्रिंसपल बीस से पत्र व्यवहार ये सब विरजानन्दजी से पाई हुई शिक्षा का देन स्वामीजी का है। और भी हमें अमूल्य निधि आर्ष-ग्रन्थाध्ययन सिद्धान्त, षड्दर्शन-समन्वय दी। उन्होंने विरजानन्दजी से जो कुछ पाया उसे सहस्र गुणा बना कर हमें दे गये है। महर्षि राजा महाराजाओं को सुधार कर देश स्वातन्त्र्य के लिये पूर्ण तथा यत्नवान और अन्त में इसी उद्देश्य को लेकर राजवाड़ों में प्रवेश किया। उदयपुर नरेश, शाहपुराधीश मसूदाधिपति आदि राजाओं को वेदानुयायी बनाते हुए योधपुर के रावराजा तेजसिंहजी के निमन्त्रण पर योधपुर गये।

शाहपुराधीश जोधपुर नरेश यसवन्तसिंह के स्वभाव और चरित्र को भली-भांति जानते थे। नन्हीजान वेश्या में वह बुरी तरह आसक्त था। शाहपुराधीश ने महर्षि को अस्पष्ट चेतावनी देते हुए इतना ही कहा। आप वहां जा तो रहे हैं, वेश्याओं का अधिक खण्डन मत करना। महर्षि जिन्होंने पाप और भय के सामने झुकना सीखा ही न था अकड़ कर बोले-मैं बडे कण्टीले झाड़ों को नहरनी से नही काटता उसके लिये तेज शास्त्र ही काम देते हैं। विदाई समय शाहपुराधीश ने २५०)रु० वेदभाष्य तथा ३०) मासिक वेद प्रचारार्थ उपदेशक का व्यय देने का वचन दिया तथा महर्षि की सेवा में मानपत्र अर्पित किया। २८ मई सन् १८८३ ई० को महर्षि अजमेर आये यहां केवल एक दिन ठहरे वह भी उपदेश में ही बीता। अजमेर के भक्त योधपुर की स्थिति और वहां के निवासियों की अक्खड़ता से सुपरिचित थे। अपनी आशंका महर्षि पर प्रकट करने में वे न चूके परन्तु महर्षि अपने वचन के पक्के थे। अपने वचन के अनुसार ३१ मई सन् १८८३ ई० को योधपुर पहुँच ही तो गये और १८८३ ई० के ३ जून से प्रतिदिन सायं ६ बजे से ८ बजे तक महर्षि फैजुल्ला खां की कोठी के सहन में विविध विषयों पर उपदेश सुनाते रहे।

सैकड़ों व्यक्ति सुनने को आने लगे। इन उपदेशों में महर्षि क्षत्रियों के चरित्र के शोधने और गोरक्षा पर विशेष बल देते थे।
~~~~

रावराजा तेजसिंह जी ने उपदेश साला के आरम्भ में विनयपूर्वक निवेदन कर दिया था कि आप महाराजा के दैनिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ न कहना, भला महाराजा कब विचलित होते । वेश्यागमन के दोषों को भी अन्य दोषों की भांति कड़ी भाषा में व्यक्त किया करते थे, एकदिन वे कह उठे क्षत्रिय सिंह हैं और वेश्या कुत्तियां हैं।

नन्हीजान राजवेश्या अपने जीवन के कण्टक महर्षि के प्राण लेने के षडयन्त्र में लग गई, इस षडयन्त्र में कुछ राज के कर्मचारी साथ दिये नन्हीजान का गुरु शाक्तमतावलम्बी गणेशपुरी का भी हाथ था । इसमें बृटीश शासक की भी प्रेरणा थी। स्वामीजी का पाचक धल्लू मिश्र जगन्नाथ तथा कल्लू कहार आदि भी प्रलोभन में फंस गये । कल्लू कहार की चोरी षडयन्त्र का पहला आक्रमण हुआ, उस दिन रामानन्द-ब्रह्मचारी खुली खिड़की के पास नही सोया । १ अक्टूबर सन् १८८३ ई० को धौल मिश्र अपर नाम जगन्नाथ मिश्र ने विष मिश्रित दूध महर्षि को पिलाया । ज्ञात होने पर महर्षि ने इसे रुपये देकर तत्काल नैपाल जाने का आदेश दिया । इस प्रकार महर्षि ने मारने वाले को भी जीवनदान देकर अपनी उस अनुपम संन्यासी भावना का प्रत्यक्ष प्रमाण दिया ।

रावराजा तेजसिंह जी को बुलवाया वे हिन्दू डाक्टर सूरजमल से उपचार कराये । इस अन्तर में कर्नल प्रताप सिंहजी को सूचना मिली और वे राज खुशामदीं यवन डाक्टर अलीमर्दी खां को चिकित्सा के लिये सौंप गये, जो नन्हीजान से मिला हुआ था और दवा के नाम पर उसने भी बिष का ही प्रयोग किया, जिससे कष्ट और बढ़ गया । मुंह, तालु, गला और जीभ छालों से भर गये। शूल दस्त के साथ हिचकियां भी आने लगी। १२ अक्टूबर को "राजपूत" गजट में महर्षि की रुग्णता के छपे संवाद पर अजमेर के किसी आर्य सभासद की दृष्टि पड़ी । छानबीन के पश्चात् ला० जेठामल जोधपुर दौडे । यहां आकर देखा और चारो ओर तार खटखटाये । आर्य जगत् में कोलाहल मच गया। आश्चर्य है महर्षि सदृश महत्व शाली व्यक्ति के बहुमूल्य जीवन के साथ इस प्रकार

निम्नकोटि के डाक्टर के हाथों खिलवाड़ होता रहा और सब आखों पर पट्टी बांधे कानों पर हाथ रखे पडे रहे।

स्वामी जी की प्रेरणा से १६ अक्टूबर को आबू भेजा गया, साथ में डा० सूरजमल चरणनलदान और मुरारदान साथ गये मार्ग में डा० लक्ष्मण प्रसाद से भेट हो गई। सरकारी नौकर थे, बदली होकर अजमेर जा रहे थे। महर्षि के नाम सुनकर नौकरी का पर्वाह किये बिना वापस लौटे, पांच छः दिन इनकी चिकित्सा से लाभ प्रतीत हुआ, अंग्रेज अफसर इनका न छुट्टी दी और न त्याग पत्र भी स्वीकार किया। उनके चले जाने पर महर्षि की स्थिति पुनः बिगड़ गई। अन्त में भक्त जन महर्षि को अजमेर ले गये और राजा साहब भिनाय की कोठी में ठहराये। महाराजा जसवन्त सिंहजी और सर प्रताप सिंहजी ने २५००) रुपये और दो दुशाले आबू जाते समय भेंट किये।

२३ अक्टूबर १८८३ ई० को प्रातः काल महर्षि को अजमेर पहुंचाया गया। तत्काल डा. लक्ष्मण प्रसाद की चिकित्सा आरम्भ हुई। रोग में कभी कभी कमी प्रतीत हुई। अन्त में २६ अक्टूबर को डा. लक्ष्मण प्रसाद जी भी निराश हो गये। सिविल सर्जन न्यूमैन को दिखाय गया, वे इतना ही कह पाये कि चिकित्सा ठीक ही हो रही है. किन्तु महर्षि की दशा में किसी प्रकार का अन्तर न आया।

अन्तिम दृश्य- १८८३ ई० के ३० अक्टूवर ११ बजे भौम वार से श्वास की गति बढने लगी। महर्षि के इच्छानुसार औषध भी बन्द कर दी गई। किसीने पूछा आपका चित्त कैसा है ? उत्तर मिला अच्छा है। एक मास के पश्चात् आज आराम का दिवस है। लाला जीवन दास (लाहौर) ने पूछा आप कहां है ? कहा ईश्वरेच्छा में। चार बजे महर्षिने आत्मानन्द और गोपाल गिरि से पूछा क्या चाहते हो ? उत्तर मिला आप अच्छे हो जायें। महर्षि ने कहा यह देह है, इसका अच्छा क्या होगा। आत्मानन्द के शिर पर हाथ धर बोले आनन्द से रना ? इस समय बाहर से आये भक्तों को म र्षि ने

ऐसी कृपा दृष्टि से देखा जो वर्णनातीत है उनके मुख पर शोक और घबराहट के चिन्ह मात्र भी न था। विपरीत इसके वे सबको धैर्य धारण करा रहे थे। मुंह पर हाय अथवा कोई कष्ट सूचक शब्द न था।

साढे पांच बजे महर्षि के आज्ञानुसार सब लोग पीछे खडे हो गये, चारो ओर के द्वार और दो छत के रोशन दान भी खोल दिये गये। पूछने पर किसी नें बताया कृष्ण पक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष का आदि मंगलवार है। यह सुनकर छत और दीवारों पर दृष्टि डाली. कई वेद मंत्र पढे संस्कृत में ईश्वर की स्तुति की और हिन्दी में भी ईश्वर का गुण कीर्तन कर उल्लास पूर्वक गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे। फिर कुछ देर समाधिस्थ रह आंखे खोल कहने लगे आहा! "तूने अच्छी लीला की" तेरी ईच्छा पूर्ण हो" महर्षि सीधे लेट-रहे थे, उपरोक्त अन्तिम शब्द कह स्वयं ही करवट ली और एक वार श्वास को रोक कर एकदम बाहर निकाल दिया। मानव लीला समाप्त कर उनका महान आत्मा प्रभु की शरण में जा विराजा। इस समय सन्ध्या को छः बजे थे।

अन्मि श्वास छोड़ते समय महर्षि नास्तिक शिरोमणि गुरुदत्त विद्यार्थी एम. ए. को जीवन दान दे गये। उन्होंने आज प्रत्यक्ष देखा योगी और ईश्वर के सच्चे भक्त को मृत्युपर विजय प्राप्त करते। नास्तिकता का संसर्थक सारा तर्क दयानन्द निर्वाण के दृश्य-रूप इस अमृत जल से धुल गया। महर्षि तो कष्ट मुक्त हो गये, परन्तु आर्य जाति के चर्मचक्षु पुनः प्रकाश हीन हो गया। उनका पथ प्रदर्शक उनसे छिन गया। रात ही रात में यह दुःखद समाचार विद्युत् गति से भारत भर में फैल गया।

शव संस्कार :-

अजमेर में उपस्थित भक्तों के लिये वह रात्रि काल रात्रि थी, जैसे तैसे कटी। प्रात काल दूसरे दिन अन्त्येष्टि की तैयारी की। मृतक स्नान, चन्दन लेपन, वस्त्रावरण, पुष्पाच्छादन आदि से संस्कार कर वेदमंत्रो की ध्वनि के मध्य विमान

पर लिटा दश बजे शव यात्रा आरम्भ की । आत्मानन्द, रामानन्द ब्रह्मचारी, देवदत्त, गोपाल गिरि आदि पण्डित वेद ध्वनि सहित आगे आगे थे। राव्बट भागमल जी जज अजमेर, पं० सुन्दर लाल सुपरिटेण्डेण्ट वर्क शप अलीगढ़ प्रतिष्ठित आर्य नेताओं के नेतृत्व में नगर निवासियों का भारी समूह अर्थी को घेरे आगे बढ़ चला । आगरा दर्वाजा, बड़ा बाजार चौक धानमण्डी और दरगाह बाजार आदि स्थानों से होती हुई यह शव यात्रा नगर के दक्षिण भाग में पहुंची । यहां ऋषि के आदेश और संस्कार विधि के अनुसार वेदी बनाई गई, चन्दन आदि काष्ठों का चयन कर महर्षि का शव चित्ता पर रखा गया । ब्रह्मचारी रामानन्द और आत्मानन्द अग्नि प्रविष्ट कराई और भस्म स्वभाव शरीर वेद मन्त्रों के ऊंचे ध्वनी के बीच अपनी प्रकृति में समाने लगी। यह १ अक्टूबर सन् १८८३ ई० अर्थात् कार्तिक शु० १ बुधवार सं १९४० वि का था।

स्वीकार पत्र

महर्षि मृत्यु से पूर्व २७ फरवरी १८८३ को उदयपुर ही में महर्षिने अपना अन्तिम स्वीकार पत्र लिख कर रजिष्टरी कर दिया । परोपकारिणी सभा के नाम सारी सम्पत्ति वसीयत कर उदयपुराधीश सज्जन सिंह जी को प्रधान, ला० मूलराज जी उपप्रधान, ला० रामशरण जी मन्त्री, पाण्डया मोहनलाल उपमन्त्री तथा उन्नीस १९ अन्य सदस्य बनाये । जिसका कार्यालय अजमेर में दयानन्द भवन में है ।

वसुचन्द्रव नेत्राब्दे वैशाखस्यासिते दले ।
त्रयोदश्यामांभृग्भैवारे पूर्ण मगादिदंवृतम् ॥

महान वैज्ञानिक ऋषि दयानन्द

● देशबन्धु विद्यावाचस्पति

यह युग अन्वेषणों (Researches) का युग है। जो सिद्धांत अपने मान्यतायें अन्वेषणों के बाद सही नहीं ठहरतीं हैं उन्हें विद्वान लोग स्वीकार नहीं करते हैं। स्वामी दयानन्द एक ऋषि तुल्य थे, महान वैदिक विज्ञान के ज्ञाता थे। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि ग्रन्थों में अमुक मान्यतायें प्रकट की है इसलिये वे मान्यतायें सही है। इस विचार को आर्यसमाजी भले ही स्वीकार कर लें पर जब तक वह खोजों एवं तर्कों से प्रमाणित नहीं होता, तब तक अन्य विद्वान इसे स्वीकार करने को तयार नहीं। ऋषि भक्तों के इस दावे को कि महर्षि दयानन्द की मान्यतायें सत्य पर आधारित हैं, इतना कह देने मात्र से लोग स्वीकार नहीं करेंगें। हमें इसी तरह का अनुशीलन करना होगा। तभी ऋषि के विचारों का सिक्का हम बैठा सकते हैं।

अपने स्वाध्याय के समय मैंने विचार किया और अनेक प्राचीन भारत के ऐतिहासिक उन्नति पढ़ा और जब महर्षि द्वारा लिखित सत्यर्थ-प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेदभाष्य, उपदेशादि, ग्रन्थ एवं ऋषि जीवन पढ़ने से आश्चर्य हुआ कि १०० वर्ष पूर्व जिस सिद्धान्तों को ऋषिने प्रतिपादित किया था, वह आज के खोजों से सही उत्तरता है। मैंने ऐसे ही कुछ उनके ऐतिहासिक वैज्ञानिक सूत्रों का, नवीन वैज्ञानिक खोजों की पृष्ठ भूमि में अध्ययन किया है और पाठकों की सेवा में उसकी एक संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत कर रहा हूँ।

महर्षि दयानन्द के पूर्व अंग्रेज सरकार ने प्राचीन आर्य धर्म की हीनता दिखाकर ईसाइयत की श्रेष्ठता अथवा विकासवाद की सचाई का प्रतिपादन करना था। औक्सफोर्ड विश्व विद्यालय में मोनियर विलियम, मैकडनल, कीथ आदि विद्वान् कार्य किये। जिस में संस्कृत के प्रोफेसर रुप में बौडन ट्रष्ट की और से मौक्समूलर अनेक वर्ष तक कार्य किया, उसके उद्देश्य के विषय में मोनियर-विलियम्स अपनी सुप्रसिद्ध Sanskrit English Dictionary की भुमिका में जो शब्द लिखे हैं वे विशेष रुप से ध्यान देने योग्य है। उन्होंने लिखा :—

That the special object of his (Boden's) munificient Request was to promote the transl-ation of the scriptures in to sanskrit, So as to enable his Country men to proceed in the 'conversion of the natives of India to the Christian Religion.

अर्थात् बोड़न सोहृदय के उदार दान का मुख्य उद्देश्य ईसाइयों के धर्मग्रन्थ का संस्कृत में अनुवाद करना था ताकि उसके देशवासी, भारतीयों को ईसाई मत में दीक्षा देने के कार्य में अग्रसर हो सकें।

प्राच्य विद्या के अग्रणी माने जाने वाले प्रो० मैक्समूलर का उद्देश्य भी वेदों के अनुवाद करने में आदि में शुद्ध न था और उनका लक्ष्य भारतीयों को ईसाई बनाने में प्रवृत्त वा प्रोत्साहित करना था। यह निम्न लिखित पत्र व्यवहार से स्पष्ट ज्ञात होता है।

प्रो० मैक्समूलर ने इन दिनों भारत मंत्री ड्व्यूक् आफ आर्गायाल को १६ दिसम्बर १८६८ के एक पत्र में लिखा :

The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in, whose fault will it be?

अर्थात् भारत के प्राचीन धर्म का नाश तो अब निश्चित हैं और यदि ईसायत आकर उसका स्थान ग्रहण न करे तो किसका दोष होगा ?

सन् १८६८ में अपनी पत्नी के नाम पर एक पत्र लिखते हुए प्रो० मैक्समूलर ने लिखा :—

I hope I shall finish that work and I feel Convinced though I shall not live to see it, yet this edition of mine (of the Rigveda) and the translation of the vedas will here after tell to a great extent on the fate of India and on the growth of millions of souls in that Country. It is the root of their Religion and to show them what the Root is, is I feel sure, the only way of up rooting all that has been sprung from it during the last three-thousand years.

अर्थात् मुझे आशा है कि मैं उस काम को (वेदों का सम्पादनादि) पूरा कर दूंगा और मुझे निश्चय है कि यद्यपि मैं उसे देखने के लिये जीवित न रहूंगा तो भी मेरा ऋग्वेद यह संस्करण और वेदों का अनुवाद भारत के भाग्य और लाखों भारतीय के आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालने वाला होगा। यह (वेद) उनके धर्मों का मूल है और मूल को दिखा देना, उस से पिछले तीन हजार वर्षों में जो कुछ निकला है, उस को मूल सहित उखाड़ देना सब से उत्तम प्रकार है।

इन पाश्चात्य विद्वानों के विषय में निस्संकोच कहा जा सकता है कि प्राचीन आर्यधर्म को हीनता दिखाकर ईसायत की श्रेष्ठता अथवा विकासवाद की ऊचाई का प्रतिपादन करना था। अंग्रेज ने विशाल हिन्दू (आर्य) समुदाय को देखा। उसने देखा कि जो इस्लाम मोरका को से अटक तक, आंधी के समान सब कुछ तृण समूह की भांति उड़ता आया था,

वही इस्लाम हिन्दुस्तान (आर्यावर्त) में कुछ नहीं कर सका। यहां यह, हिन्दू (आर्य) चरित्र से टकराया तो निस्तेज हो गया। अंग्रेज समझ गया कि हिन्दू विशेष रूप में हिन्दू स्त्री वर्ग चरित्र की भित्ति पर खड़ा अजेय है। इस कारण उसने इसको चरित्र से भ्रष्ट करने के लिये इसकी साहित्य, संस्कृति को नष्ट करने के लिये एक योजना बनाया। क्योंकि अंग्रेज जाति के आने से पूर्व यहां पर स्थान स्थान पर संस्कृत पाठशालायें चलती थी। यहां के निवासी अपने को उच्च समझते थे। अंग्रेजों से घृणा करते थे। कारण वे लोग समझते थे कि हमारे पास विश्व प्रसिद्ध प्राचीन पुस्तक वेद मौजुद है। वैदिक ज्ञान ही संसार में सबसे पहले प्रकट हुआ। यह इतना विशाल है कि फिजी टापू का पादरी बर्टन महोदय लिखता है कि यदि मेरी आयु १००० वर्ष की हो, १० घण्टे प्रति दिन वैदिक साहित्य का स्वाध्याय करूँ तब भी मैं आधा ज्ञान भी प्राप्त नहीं कर सकता। आश्चर्य है कि जिस समय छापेखाने न थे, कागज तथा लिखने पढ़ने की सुगमता न थी, सामग्री पर्याप्त न थी, न पुस्तकों के प्राप्ति के साधन थे, उस समय के लेखकों ने किस प्रकार मनुष्य के उन्नति सम्बन्धी इतने ग्रन्थ रचे कि जिन्हें देखकर वर्तमान लेखक चकित रह जाते हैं। प्राचीन आर्यों ने प्रत्येक विद्या तथा कला कौशल को धर्म का अंग प्रत्यंग बनाकर ग्रन्थ रचना की और वह भी ऐसे विशाल, गूढ़ और सम्पूर्ण रचे कि वर्त्तमान काल के अनुसन्धान कर्त्ता और लेखक उन्हें पढ़कर चकित हो जाते हैं। मैं इस पुस्तक में उन प्रसिद्ध ग्रन्थों के नामों को सूची दूंगा, जिससे अग्रेजों से वे लोग अपने को विद्वान् मनाते थे। उन विषयक पुस्तकों की सूची देना बड़ा कठिन तथा भारी कार्य है। उनकी व्याख्या मात्र करने वालों या अनुवादकों के नाम देने लागूं तो एक भारी पुस्तक बन जाय इसलिये यहां संक्षेप में वैदिक साहित्य का ही वर्णन करुंगा।

१— आर्यों के ईश्वर कृत मूल धर्म ग्रन्थ चार हैं, जो सृष्टि के आदि से चले आते हैं। यह सत्यविद्या और ज्ञान के भण्डार

है। उनके नाम ऋग्वेद (मन्त्र १०६२०) यजुर्वेद (मंत्र १६७६), सामवेद (मंत्र १०७५), अथर्व वेद (मंत्र ५८४७) है । इनके प्राचीन समय के लगभग १०० भाष्य हैं । इनमें ज्ञानकाण्ड Theories of all sciences, कर्मकाण्ड– Practice useful Arts and machines, उपासना काण्ड– practical spiritual science, विज्ञान काण्ड– wisdom and solution of the riddles, Pertaining to Nature, man and god भरा पड़ा है ।

२ - चार उपवेद हैं अर्थात् (आयुर्वेद- Madicene) काय चिकित्सा, शरीर तन्त्र विद्या- Physiology, शल्यविद्या सर्जरी, रासायन विद्या (Chemistry), वनस्पति विद्या– (Boton), जंगम विद्या (Zeology), खंज विद्या (Minerolgy) अगाद अथवा विष नाशक विद्या (Antidolte) आदि इसमें चिकित्सा की सम्पूर्ण विद्या है । कई आचार्यों ने इस पर विस्तार करके अनेक ग्रन्थ रचे हैं । २- अर्थ वेद (Political Fconomy) । इसमें धन कमाने का साधनों का विस्तृत वर्णन है । इसके आधार पर वाद के आचार्यों ने अनेक ग्रन्थ रचे हैं । ४- गन्धर्व-वेद (Science of music and song, Drama and dancing. इसमें गाने, नाचने, बजाने, स्वर, ताल आदि विद्यायें भरी पड़ी है ।

३– ब्राह्मण ग्रन्थ ४४ थे । उनमें से २१ प्राप्त हैं तथा २३ लोप हो गये हैं । जो मिलते हैं, उनके नाम हैं ऐतरेय, तैतरेय, साधुनी, गोपथ, साम, शतपथ, कौशलकी, जैमिनी, श्रारिप, शाड़विंश, शद्भुत, ताण्डय, आर्य, संगीत, देवदत्त, तल्वकार, छान्दोग । स्वामी दयानन्द जी ने उनमें से केवल चार को प्रमाणित मानता है । अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, गोपथ और साम इनमें यज्ञों का विधान तथा वेद मंत्रों की व्याख्या है ।

४- शाखायें :— ये ११२७ थी, परन्तु अब तो भारत में कुल १६ मिलती है । जर्मनी और तिब्बत में अधिक मिलती

है। ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, अथर्व वेद की ६, साम-वेद की १००० । इनमें भी वेद मंत्रों की व्याख्या आदि ज्ञान भरा पड़ा है।

५- अंगवेद—वेदांग :— ये ६ ग्रन्थ है अर्थात् शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। ये एक प्रकार की विद्यायें हैं। शिक्षा पर ३७ ग्रन्थ थे, जिनमें से मांडुकी बहुत प्रसिद्ध है। व्याकरण पाणिनी से पहले ३० थे। उनमें से शाकल्य, स्फोटायन, गार्ग्य, आदि प्रसिद्ध हुए। अब पाणिनी की अष्टाध्यायी, और पातजंल का महाभाष्य प्रमाणित समझे जाते हैं। निरुक्त भी यास्क के पहले १४ हुऐ हैं। इनमें से कौशतकी, गार्ग्य, श्वेतकेतु धर्मवर्धन, उपमन्यु, शिव, वैशायन, सत्यलक्ष, मुद्गल, भागुरी आदि हुए हैं। यास्क ने २५ निरुक्तों के नाम दिये हैं। ज्योतिष पर १८ सिद्धान्त ग्रन्थ थे। अब केवल सूर्य सिद्धान्त, पाराशर और गार्ग्य का पता चलता है। बाकी लोप हो गये हैं। छन्द ग्रन्थ के पिंगल का ग्रन्थ मिलता हैं। शेष नष्ट हो गये हैं।

६- उपांग- षट् शास्त्रों को कहते है, जो निम्न लिखित है:- सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मिमांसा और वेदान्त शास्त्र। वेदान्त पर तो बहुत से विद्वानों ने टीकायें और भाष्य किये हैं। इसमें पदार्थ विद्या (Physical Science) का व्याख्या मिलता है।

७- सूत्रग्रन्थ :— ये चार प्रकार के हैं। (१) श्रौत सूत्र ये ग्रंथ वेदों से सम्बन्ध रखते हैं ऋग्वेद के सांख्यायन और अश्वालयन है, यजुर्वेद के बौद्धायन, आपस्तम्भ, वणितान हिरण्यकेश कात्यायन ब्रह्मायन, और वात्यायन है। सामवेद के वात्सायन और द्रायन है। अथर्व वेद के कौशिक व्यथन, खादर और विख्यांस है। (२) समारुत मूत्र ये चार प्रकार के हैं :- गृह्यसूत्र, आशुलायन्न, संख्यायन, गोभिल। अब बौद्धायन, पाराशर कौशिक भारद्वाज, धर्मसूत्र, वशिष्ठ, गौतम, विष्णु, उष्ण, अंगद वृहस्पति, शूल्व सूत्र नहीं मिलते।

८- आरण्यक :- ये वे ग्रन्थ है जिनमें महात्मा, तपस्वी द्वारा वनों में बैठ कर जनता को सुनाए गये उपदेश संगृहीत है। ऋग्वेद सम्बन्धी ऐत्रयी और सांख्यायन, यजुर्वेद सम्बन्धी मैत्रेयी, जैमिनी, बृहदारण्यक और कौशतकी आदि है।

६- उपनिषद :- ये भी चार प्रकार के हैं । वैदिकी जो वेदमन्त्रो को लेकर उनके आधार पर रचे गये- जैसे ईश उपनिषद यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के आधार पर है । आरिप जो आर सिद्धान्त के अनुकुल है जैसे केन कठ आदि (३) साम्प्रदायिक जो भिन्न भिन्न साम्प्रदाय वालों ने रचे है, जैसे शिवोपनिषद आदि । (४) कृतमा, जैसे अल्लोपनिषद जो एक ब्राह्मण ने अकबर बादशाह के समय में उनको प्रसन्न करने के लिये बनाया। इस प्रकार के अनेक उपनिषद हैं । उनकी संख्या प्रोफेसर हाग ने १७० परन्तु बुल्हर साहबने २१२ और बर्नल महोदयने २३२ वर्णन की है । परन्तु शंकराचार्य और स्वामी दयानन्द ने केवल ११ उपनिषद प्रामाणिक माने हैं । शेष सब कपोल कल्पित है। इनमें जीवात्मा, परमात्मा, मृत्यु के पश्चात् जीव कहां जाता है, सृष्टि उत्पति सम्बन्धी ज्ञान है ।

क्रमशः --

शोक - संवाद

गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास की अपार क्षति

गुरुकुल वैदिकाश्रम की कुलमाता
माता मायादेवी जी चल बसे

गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास के कुलमाता यशस्वीनी समाजसेवी, आर्य समाज प्रचारिका, हर समय उठते, बैठते सोते जागते गुरुकुल के उन्नति के शुभ चिन्तिका, जमशेदपुर के गलि-गलि में आश्रम के लिये घूम-घूम कर अर्थ संग्रह करने वाली श्री मती मायादेवी कोच्छर के आकस्मिक निधन से अधीर यह समस्त कुलवासियों कीं वृहत सभा अपने कुलमाता की गुण गौरव गाथा मात्र शेष स्वरुप सोच-सोच कर जिस अंतलस्पर्शी शोक सागर में निमग्न हैं, उससे उन्मग्न न हो सकने के कारण जो असह्य वेदना हो रहा है, उसका चित्रण चतुर चित्रकार भी न कर पायेगा । परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति दे और उनके असह्य वियोग से व्याकुल कुलवासियों तथा उनके परिवारों को असह्य शोक सहन की शक्ति तथा गुरुकुलों की उनकी अपूरणीय क्षति की पूर्त्ति का वरदान दे।

आर्य समाज के लिये १९७७ एक विकराल काल था ।

इस वर्ष आर्य समाज के अनेक रत्न छिने गये—

१ स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी-संस्थापक और संचालक आर्ष गुरुकुल एटा

२ – प्रसिद्ध विचारक, ऐतिहासिक श्री पिण्डीदास ज्ञानी

३ – जगत प्रसिद्ध संन्यासी श्री महात्मा आनन्द स्वामीजी सरस्वती

४ – आर्य समाज और भारतीय लोकसभा के भूषण श्री पं प्रकाशवीर जी शास्त्री

५— प्रसिद्ध आर्यसमाज प्रचारक और गायक रत्न श्री प्रकाश-
चन्द्र जी कविरत्न

अभी अभी व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष और वैदिक साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक का ८४ वर्ष की अवस्था में १६ दिसम्बर सोमवार को आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में देहावसन हो गया। उनके निधन से आर्य समाज के महान् विद्वान् का स्थान रिक्त हो गया। वे अपने जीवन में लगभग १०० उच्चकोटी के वैदिक साहित्य लिखे थे। प्रभु से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को सद्‌गति प्रदान करें एवं परमेश्वर कृपा करें कि आर्य समाज में ऐसे अनेकों विद्वान् उत्पन्न हों!

सम्पादक—

प्रकाशक :— स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती द्वारा शान्ति आश्रम प्रेस, वैदिक आश्रम वेदव्यास, राउरकेला - ४ में मुद्रित ।

❀ ओ३म् ❀

वनवासी सन्देश

वनवासी सांस्कृतिक समिति वेदव्यास, राउरकेला
(उत्कल) का मासिक मुख पत्र

संस्थापक—स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

ओ३म्—प्रेताजयता नर, इन्द्रो वः शर्म यच्छतु।
उग्रा वः सन्तु बाहवो, ऽनाधृष्या यथासथ ॥ १ ॥
(ऋग् मं १० सू १०३ मंत्र १३)

हे वीरो ! आगे बढ़ो, विजय प्राप्त करो। सर्व शक्तिमान् प्रभु तुम्हारा कल्याण करें। तुम्हारी बाहुयें इतनी शक्तिशाली हों कि तुमको कोई नीचा न दिखा सके।

O brave men ! Ye march onward and exal victory upon your enemies. May the Lord Almighty vouchsafe your all safety to success. Your arms be so strong and well equipped with arms as no on from the rank of your enemies could combat to inflit any harm or defeat upon yours, the bold warrior.

सम्पादक
पं० श्री आत्मानन्द शास्त्री

सह सम्पादक
पं० श्री देशबन्धु विद्यावाचस्पति

—: उद्देश्य :—

प्रथम—वनवासी सांस्कृतिक रक्षा
द्वितीय—वनवासी शिक्षा
तृतीय—वनवासी समाज संगठन व उन्नति

विषय-सूची

अक्टूबर १९७४

वनवासी संदेश

उत्कल जनता संस्कृति रक्षा वद्धकटिस्तमःस्तोम हतिवेशः।
गुरुकुल सुपानपोषादुदियर्ति बनवासि सन्देशः ॥

यो भ्रष्ट ख्रीष्टमत दीक्षित मज्ञलोकम्
संस्कृत्य दूरयति तद्धृदयान्धकारम् ॥
श्री वेदव्यास सुगुरोः कुल सन्निवेशः
सम्पूर्वादेरुदयते बनवासि संदेशः ॥

वर्ष ८ अंक १०	अक्टूबर १९७४ दयानन्दाब्द १५०	वार्षिक मूल्य ५) रुपये एक प्रति ५० पैसे

श्रुति-सुधा

ओ३म। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ म० २६।३॥

हे (भूः) सत्यस्वरूप ! प्राण ! सब जगत् के जीवनाधार ! प्राण से भी प्रिय ! स्वयंभू ! (भुवः) सर्वज्ञ ! अपान ! सब दुःखों से रहित ! जीवों के दुःख दूर करने वाले ! (स्वः) आनन्द ! व्यान ! नाना विध जगत् में व्यापक होकर सबको धारण करने वाले, सबके आनन्द साधन एवं आनन्द देनेवाले परमेश्वर ! (सवितुः) सर्व जगत् के उत्पादक, सर्वैश्वर्य्य प्रदाता, सकल संसार के शासक, सब शुभ प्रेरणा देनेवाले (देवस्य) सर्व-सुख-प्रदाता, कमनीय, दिव्यगुणयुक्त आप प्रभु के (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (तत्) उस जगत् प्रसिद्ध (भर्गः) शुद्ध स्वरूप, पवित्रकारक, चैतन्यमय, पापनाशक तेजको (धीमहि) हम धारण

करें तथा ध्यान करें, (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) शुभ प्रेरणा करें, अर्थात् बुरे कर्मों से हटाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

हे परमेश्वर ! हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप ! हे नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव ! हे अज ! निरंजन ! निर्विकार ! हे सर्वान्तर्यामिन् ! हे सर्वाधार जगत्पते ! सकल जगत् के उत्पादक ! हे अनादे ! विश्वम्भर ! सर्वव्यापिन् ! हे करुणावरुणालय ! हे निराकार ! सर्व शक्तिमन् ! न्यायकारिन् ! समस्त संसार की सत्ता के आदि मूल ! चेतनों के चेतन ? सर्वज्ञ ! आनन्दघन क्लेशापरामृष्ट ! कमनीय ! प्रभो ! जहाँ आपका जाज्वल्यमान तेज पापियों को रुलाता है, वहाँ आपके भक्तों, आराधकों, उपासकों के लिये वह आनन्द प्रदाता है, उनके लिये वही एक प्राप्त करने की वस्तु है ; उनके ज्ञान-विज्ञान धारणा ध्यान की बुद्धिकर उनके सब पाप सन्ताप नाश कर देता है। परमाराध्य परमगुरो ! तू सदा पवित्र और उन्नतिकारक प्रेरणा दिया करता है, हम तेरी शरण आये हैं, हमें भी पवित्र प्रेरणा दे।

तू ही सबको सुमार्ग दिखाता है, हमें भी सुमार्ग दिखला। हमें ऐसी प्रेरणा कर कि जिससे हम कुमार्ग से हटकर सुमार्ग पर आरूढ़ हो, कुकाम से निवृत्त होकर सुकाम में प्रवृत्त हो, कुव्यसनों से विरक्त होकर सत्य कार्यों में संरक्त हों, सांसारिक कामनाओं को चित्त से हटाकर तेरे तेज को धारण करें, उसका ध्यान करें, ताकि हमारे सारे पापताप नष्ट हो जायें, मल धूल जायें, विक्षेप का संक्षेप होते-होते सर्वथा प्रक्षेप हो जाये।

हे सकल-शुभ-विधातः ! करुणानिधान ! कृपालो ! दयालो ! हम पर ऐसी कृपा और अनुग्रह कीजिए, कि हमें सदा तेरी प्रेरणा मिलती रहे, ताकि तेरी उस प्रेरणा से प्रेरित हुए हम सदा तेरी आज्ञा का पालन करते हुए तेरे वर पुत्र बन सकें। प्रभो ! भूयोभूयः तुझ से यही प्रार्थना है।

सम्पादकीय—

विजयादशमी

भारतवर्ष के चार मुख्य त्योहार है—श्रावणी, विजयादशमी, दीपावली और होली। समग्र देश में ये चारों ही त्योहार खूब धूमधाम से मनाए जाते हैं। जिस किसी ने इन चारों त्योहारों के सम्बन्ध में यह व्याख्या की है कि श्रावणी ब्राह्मणों का त्योहार है विजयादशमी क्षत्रियों का, दीपावली वैश्यों का और होली शूद्रों का—यह व्याख्या सही नहीं है। इतना अवश्य है कि श्रावणी का सम्बन्ध स्वाध्याय और वेदाध्ययन से है, विजयादशमी का सम्बन्ध विजय के लिये अभियान से है, दिवाली का सम्बन्ध वाणिज्य और समृद्धि से है और होली का सम्बन्ध राग-रंग और आनन्द से है। ये चारों त्योहार जहाँ ऋतु विपर्यय के अनुसार अपनी जीवन-चर्या में यथा योग्य परिवर्तन करके उस काल का अधिक से अधिक समाज हितकारी कार्यों के लिये उपयोग का सन्देश लेकर आते हैं, वहाँ साथ ही चारों का परस्पर मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध भी है।

श्रावणी है—ज्ञानस्य-विज्ञान की उन्नति का प्रतीक। विजयादशमी है—क्षात्रबल की उन्नति का प्रतीक, दीवाली है—व्यापार की उन्नति का प्रतीक। ये चारों ही राष्ट्र के अभ्युदय के लिये आवश्यक है। जब तक कोई राष्ट्र ज्ञान-विज्ञान में उन्नति न कर ले, शस्त्र बल से अपने शत्रुओं का पराभव करने में समर्थ न हों, उसे आनन्द मनाने का या रागरंग में मस्त होने का अधिकार नहीं है। श्रावणी (ज्ञान शक्ति) विजयदशमी (सैन्यशक्ति) दिवाली (धनशक्ति) को चरितार्थ किए बिना जो राष्ट्र होली (रागरंग) मनाता है, वह प्रकारान्तर से अपने राष्ट्र के अभ्युदय को ही होली जलाता है।

हमारे राष्ट्र में आज संस्कृति का अर्थ ही नाच-गान समझा जाता है। नृत्य और संगीत भी कलायें हैं और इन कलाओं की भी कठोर साधना करनी पड़ती है, इससे हम इन्कार नहीं करते। परन्तु आज हमारी निरपेक्ष सरकार ने धर्म,

अध्यात्मिकता, तत्त्वज्ञान आदि तत्त्वों को संस्कृति में से निष्कासित करके केवल नृत्य और संगीत को 'संस्कृति' की संज्ञा देने की जो प्रवृत्ति प्रदर्शित की है, वह राष्ट्र के अभ्युदय की नहीं, पतन की ही सूचक है। आज संस्कृत भाषा तथा वेदादि सत्शास्त्रों की अवहेलना की जाती है और स्थान स्थान पर सिनेमा घर और नाच घर खोलने की होड़ लगी हुई है।

जिस देश की सीमा पर शत्रु दाँत गड़ाए खड़ा हो, उसके लिये कैसी होली, कैसी दिवाली! उसके लिये तो सदा एक ही त्योहार है—और वह है विजय दशमी—अर्थात् विजय के लिये अग्रसर होने का सतत प्रयत्न।

प्राचीन काल में इस दिन देश के राजा और प्रजा सब मिलकर अपने शस्त्रों को साफ करके चमकाते थे और फिर विजय अभियान के लिये निकलते थे। प्राचीन आर्य न केवल अपनी सीमाओं से शत्रुओं का सफाया करने के लिये विजयदशमी पर सन्नद्ध होते थे, प्रत्युत 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' की ध्वजा लेकर अनार्यों को आर्य बनाते हुए आर्य साम्राज्य का विस्तार करते थे। तभी तो समस्त भूमंडल पर कभी आर्यों का चक्रवर्ती साम्राज्य था।

आज हमें 'साम्राज्यवाद' शब्द से डर लगता है। राजनीति के शब्द कोष में यह शब्द सबसे बड़ी गाली बन गई है। हम भूल जाते हैं कि 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का इसके बिना कोई अर्थ ही नहीं रहता।

अधिक से अधिक आप इतना ही कह सकते हैं कि हमारा यह साम्राज्य क्रूर भौतिक शक्ति पर आश्रित नहीं होगा, बल्कि वह नैतिकता और आध्यात्मिकता पर आश्रित होगा। आप उसे 'आध्यात्मिक साम्राज्यवाद' कह लीजिये पर है वह साम्राज्यवाद ही। अपने विचारों और अपनी शक्ति के प्रवाह को रोकने का उपदेश है, जीवन के विस्तार को रोकने का उपदेश है। जब मनुष्य मात्र अपनी सन्तति के द्वारा अपने जीवन का विस्तार करना चाहता है—यह प्रक्रिया सृष्टि के विकास क्रम का अनिवार्य अंग है—तब वह अपने विचारों का विस्तार क्यों नहीं करेगा? जब से आर्य जाति में बाहर प्रसार पाने के बजाय 'घर-घुस' आत्माराम की प्रवृत्ति पैदा हो गई तभी से उसके पतन का इतिहास प्रारम्भ हो गया।

कालान्तर में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम द्वारा लङ्काधिपति रावण पर विजय प्राप्ति का सन्दर्भ भी विजय दशमी के साथ जुड़ गया। वह भी तो अनार्य राज्य को समाप्त कर आर्य साम्राज्य के विस्तार की ही कथा है।

यहाँ यह ध्यान रहे कि अनार्य का अर्थ द्रविड़ नहीं है—जैसा कि पाश्चात्य लोगों ने भ्रम फैला रखा है। रावण जन्म से ब्राह्मण था और पुलस्त्य ऋषि का पोता था। किन्तु वह आर्यों के सदाचार को स्वीकार नहीं करता था। वह अनात्म संस्कृति का विश्वासी था। वह दूसरों की स्त्रियों का अपहरण कर उनके साथ बलात्कार करना अपना परम धर्म मानता था—

राक्षसानां परोधर्मःपर दारा विधर्षणम्।

वह भोग विलास को ही जीवन का परम लक्ष्य मानता था।

भोग-विलास प्रधान संस्कृति ही अनार्य संस्कृति, राक्षस संस्कृति, अनात्म संस्कृति और रावण संस्कृति है। त्याग संयम-ब्रह्मचर्यवादी आत्म संस्कृति का विस्तार आर्यों का चिरकाल से धर्म रहा है। इसीलिये रावण का उच्छेद आवश्यक था।

विजयादशमी यह सन्देश लेकर आई है कि आर्यों को पुनः विश्वमार्यम् 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के वैदिक घोष को सार्थकता करने के लिये सन्नद्ध हो जाना चाहिये।

—आत्मानन्द शास्त्री

यम-यमी संवाद

—शान्तिस्वरूप गुप्त

ऋग्वेद के दशम मण्डल एवं अथर्ववेद के अठारहवें काण्ड में यम-यमी संवाद का आलंकारिक वर्णन है। सायणाचार्य ने इन्हें भाई-बहन मानकर संभोग का वर्णन किया है। वेद में, बहन-भाई से संभोग का आग्रह करे, भाई प्रतिवाद करे, ऐसी अश्लील कथा त्रिकाल में भी सम्भव नहीं। भाई-बहन के पवित्र सम्बन्ध में ऐसी कल्पना भी दुःखद है। इस सम्बन्ध की पवित्रता के बारे में मनु ने भी लिखा है—

माता स्वस्रा दूहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।

साथ ही साथ यम-यमी को ऋषि की संज्ञा भी दी जाती है। वेद के इस सूक्त में उनके भाई-बहन का सम्बन्ध कहीं भी प्रमाणित नहीं होता।

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिवांसति समितो नाशयामसि।

अथर्व—२०।१६।४५

[यदि तुम्हारा भाई पति होकर जार कर्म करे, और जारण सन्तान को मारने का प्रयत्न करे तो उसको हम दण्ड देते है।]

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च।
बजस्तान्त्सहता मितः। अथर्व ८।६।७

[सोते समय यदि तेरा पिता अथवा भ्राता भूलकर भी प्राप्त हो जाता है तो उसे हम नपुंसक बनाकर मृत्यु-दण्ड देते हैं।]

वास्तव में एक पुत्राभिलाषिणी स्त्री पितृ-ऋण-शोधन के लिए अपने पति से पुत्र प्राप्ति के हेतु आग्रह करती है। पुरुष पुत्रोत्पत्ति में असमर्थ है। अतः अपनी स्त्री से किसी अन्य पुरुष से नियोग-द्वारा सन्तानोत्पत्ति करने की शिक्षा देता है, जिस प्रकार प्रजनन में असमर्थ पाण्डु ने अपनी पत्नी कुन्ती और माद्री

को आज्ञा दी थी। पत्नी लज्जावश ऐसे सम्बन्ध का विरोध करती है। पति अपनी असमर्थता के कारण पत्नी को भाई-बहन की भाँति जीवनयापन करने को कहता है और पुनः उससे अपने इच्छानुसार पर पुरुष से संयोग करके पुत्रोत्पत्ति का आग्रह करता है। नियोग द्वारा-पुत्रोत्पत्ति से स्त्री के अपने पति की सम्पत्ति के दाय भाग में कोई अन्तर नहीं आता। विवाह कर लेने पर वह उससे वञ्चित हो जाता है। अतः, वेद में नियोग द्वारा सन्तानोपत्ति का निर्देश है। दूसरे, नियोग द्वारा उत्पन्न पुत्रों से उसके पति के वंश का विस्तार होता है। जिस प्रकार वेदव्यास-द्वारा उत्पन्न धृतराष्ट्र एवं पाण्डु के द्वारा कुरु वंश का विस्तार सम्भव हो सका था।

इसी उपदेश को यम-यमी-संवाद के रूप में वेद ने आलंकारिक भाषा में वर्णन किया है जिसे पाठक निम्न मन्त्रों द्वारा पढ़कर स्वयं निर्णय करने में समर्थ होंगे कि सायणाचार्य ने किस प्रकार वेद के अर्थों का अनर्थ किया है—

ओचित् सखायं सख्या वव्रृत्यां तिरः पुरु चिदर्णावं जगन्वान्
पितुर्न पातमा दधीत वेधा अधिक्षमि प्रतरं दीध्यानः।

सन्तानोपत्ति के उद्देश्य से मैं स्त्री (सख्या सखायं चित् आववृत्याम् उ) सखी भाव से सखा के समान पति को वरण कर चुकी हूं एवं (पुरु अर्णवम् चित् तिरः जगन्वान् वेधा ! मधिक्षमि) गृहस्थ-जीवन-रूपी महान् सागर को पार करने की क्षमतावाला पुरुष अपनी भूमिरूप जाया में (प्रतरम् दीध्यानः पितुः न पातम् अधिक्षमि आ दधीत) पुत्र को अपने पिता अथवा कन्या के पिता के वंश रक्षा करने के लिए गर्भ धारण योग्य पत्नी में आधान करे।

उशन्ति घाते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्या।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्य।

हे पते ! (ते अमृतासः घ एतत् उशन्ति) वे जीवन्मुक्त पुरुष भी यह कामना करते हैं कि (एकस्य मर्त्यस्य त्यजसंचित्) प्रत्येक मनुष्य के उत्तम पुत्र उत्पन्न हो। ते मनः अस्मे मनसि निधायि) तेरा मन मेरे चित्त में संलग्न है। तुम (जन्युः पतिः तन्वम् आ विविक्ष्याः) मेरे पति हो। अतः, मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर पुत्र उत्पन्न करो।

यमस्य मा यम्यं काम आगत्स्माने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां विचिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ।

विवाह से पूर्व पत्नी कहती है (समाने योनौ सहशेय्याम) हम पति-पत्नी एकान्त स्थान में शयन करने के लिए (मा यम्यम् यमस्य काम आगन्) यमी को यम की सन्तानोत्पत्ति के लिये अभिलाषा हुई (पत्युः जाया इव तन्वम् रिरिच्याम्) यह भी अभिलाषा हुई कि मैं ब्रह्मचारिणी अपने ब्रह्मचारी पति को अपना शरीर अर्पित कर दूं एवं (रथ्या चक्राइव विवृहेव वित्) रथ में लगे दो चक्रों के समान गृहस्थाश्रम रूपी रथ में जुड़कर गृहस्थ-भार वहन करने में योग्य हो जावें ।

पति कहता है—

न तिष्ठन्ति न मिषन्त्येते देवानां स्पशइहये चरन्ति ।
अण्येन मदाहनो याहि तूयं तेन विवृह रथ्येवचक्रा ॥

इह ये देवानामू स्वशः चरन्ति न तिष्ठन्ति न निमिषन्ति । राजा के रक्षक सिपाही जिस प्रकार न विश्राम लेते हैं—न झपकी लेते हैं अपितु सर्वदा विचरते रहते हैं । हे पुत्राभिलाषिणि (आहनः) कटाक्ष करने में समर्थ प्रियतमे (मत अन्येन तूर्य याहि तेन रथ्या चक्राइव विवृह) पुत्रोत्पादन में असमर्थ मुझ पति के अतिरिक्त किसी अन्य को साथी बनाकर गृहस्थ रूपी चक्रों का भार उठा ।

रात्राभिरस्या अहमिदर्शस्येते सूर्यस्य चक्षुर्मुहु रुन्मि भीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ॥

वह परमात्मा (रात्रीभिः अहमिः अस्मै दशस्येत्) अनेक दिन रात्रि अर्थात् चिरकाल के पश्चात् भी अभिलषित पुत्रादि संतान दे दिया करता अतः सम्भव है (सूर्यस्य चक्षुः मुहुः उत मिमीयात्) परमात्मा की कृपादृष्टि पुनः हम पर पड़े और हम (दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धु यमीः यमस्य अजामि विवृहात्) सूर्य एवं पृथ्वी के समान मिथुन बनकर मित्र समान रहते हुए संयमी एवं व्रतनिष्ठ होकर तप करें तो पुनः सन्तानोत्पत्ति सम्भव हो सकती है । (जिस प्रकार भगवान कृष्ण ने रुक्मिणी के साथ पुत्रोत्पत्ति हेतु तप किया था) ।

असमर्थ पति पुनः अपनी पत्नी को पर पुरुष संग के लिये प्रेरित करता है—

आघाता गच्छानुत्तरा युगानि यत्रजामयः कृणावन्नजामि ।

(ता उत्तरा युगानिध आगच्छन्) हमारे पश्चात् होने वाले पति पत्नी सम्भव है। दोष रहित सन्तान उत्पन्न करें। अतः हे (सुभगे वृषभाय बाहुम् उपबृहि) भाग्यवान स्त्री तू वीर्य सेचन में समर्थ अन्य पुरुष की बाहु के समान आश्रय लेकर उसको सुखी बना एवं (मत् अन्यत् पतिम् इच्छस्व) मेरी आज्ञा से तू दूसरे पुरुष को अपना पति बना।

इस आज्ञा के प्रति स्त्री लज्जावश अपने पति की भर्त्सना करती है—

किं भ्रातासद् यदनार्थ भवाति कि मु स्वसा यन्निर्ऋ ति निर्गच्छात्। काम-भूताबहु तद् स्यामितन्व। मे तन्वं सं विद्दग्धि।

लज्जावश स्त्री पुनः अपने पति को उपालम्भ देती है हे प्रियतम (किम् भ्राता असत् यत् अनाथम् भवति) आप मेरे भाई तो नहीं हैं जो पति के समान आचरण नहीं करते? और (किम् उ स्वसा निर्ऋ ति निगच्छात्) मैं आपकी बहन तो नहीं हूं जो पुत्रोत्पत्ति में पाप लगेगा अतः मैं (कामभूता एतत् बहु रपाभि) काम की अभिलाषा से आप से प्रार्थना कर रही हूं कि (तन्वा मे तन्वम् संपिपृग्धि) आप अपने शरीर से मेंरे शरीर को दृढ़ आलिंगन करें।

पुनः पति अपनी असमर्थता प्रगट करता हैं—

न ते नाथं यम्यत्रारमस्मि न ते तनूं तन्वा संपपृच्याम्? अन्येन मत प्रमुदः कल्प यस्व न ते भ्राता सुभगेवष्ट्येतत्। हे (यमि) पति के असमर्थ होते हुए भी संयम से रहनेवाली प्रियतमे (ते नाथम् अहम् न अस्मि) मैं तेरे पुत्र प्राप्ति रूप प्रयोजन को पूर्ण करने में सर्वथा असमर्थ हूं। अतः (ते तनुम् तन्वः न संपपृच्याम्) इसीलिये मैं तेरे शरीर का सम्पर्क नहीं करता हूं। (मत् अन्येन प्रमुदः कल्पयस्व) अतः तू अन्य पुरुष के साथ अपना मनोरञ्जन कर। (सुभगे ते भ्राता एतत् न वष्टि) सौभाग्यवती मैं तेरा असमर्थ पति भाई के समान तेरे शरीर सम्पर्क की कामना नहीं करता।

भाई बहन का यौन सम्बन्ध नहीं हो सकता अतः न वा उते तनूं तज्वासंप-पृच्या पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छत्। अयंयदेतन्मन सोह्वदो ते भ्रातास्वसुः शयने यच्छ्यीय।

असमर्थ पति जब अपने स्त्री को बहन के समान मानने लगता है तो कहता

है, हे प्रियतमे (तेननुम् तन्वा न वाउसम् पपृच्याम्) बहन की भावना से भी मैं अब तेरे इस शरीर का पति की भावना से स्पर्श नहीं करूँगा क्योंकि विद्वान् (पापम् आहुः यः स्वसारम् निगच्छात्) अपनी बहन के साथ सम्भोग करने को पाप कहते हैं। अतः (यत् भ्राता स्वसुः शयने शयीय मेहृदः एतत् असंयत्) मैं अपने संयम का भंग कर तेरा भाई होकर बहन की सेज पर सो जाऊँ तो मैं पाप का भागी होऊँगा।

'यतो वतासियम नैव ते मनो हृदयं चाविवाम। अन्या किलत्वां कक्ष्येऽव युक्तंष्वजातै लिबुजेव बृक्षाम्।

हे (यम) संयमी पुरुष रवतः असि ते मनः हृदयम् न अविद्याम) तू निर्बल है तेरे मनको और हृदय को हम नहीं समझ पाये। (किलत्वा कक्ष्या इव युक्तम् बृक्षम् लिबुजाइव अन्यात्वाम् परिस्वजातै) कि बृक्ष से आलिंगिलता के समान कोई दूसरी स्त्री तुमको आलिंगन करती है—जिससे तू मुझसे अपना मन चुराता है।

पुरुष पुनः उसके मन की आशंका दूर कर अन्य से सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा देता है :—

अन्यभूषु यम्यन्य उत्वापरिस्वजातै लिबुजेवबृक्षम् तस्य वातवं मन इच्छा सवा तवाव्या कृणुष्व संविदं सुभद्राम्।

अर्थात हे यमि (अन्यम् उसु) तू भली प्रकार (अन्य का ही आलिंगन कर और (त्वाम् अन्यः उलिबुजा बृक्षाम् इव परिस्वजातै) अन्य पुरुष तुमको बृक्ष की लता की भाँति अलिंगन करे। (वात्वम् तस्यमनः इच्छा सः वातव अधा सुभद्राम्) तुम दोनों मिलकर एक दूसरे की अभिलाषा करो एवं कल्याणकारी सम्बन्ध परस्पर निबाहो।

अब विज्ञ पाठक विचार लें कि सायणने अपने भाष्य में कहाँ भूल की है। और वेद ने भाई बहन के यौन सम्बन्ध का स्वयं इस कथा में कितना विरोध किया है। नियोग प्रथा वेद द्वारा प्रतिपादित एवं महाभारत काल में तो यह प्रथा आम व्यवहृत थी। कुरू वंश तो इसी प्रथा के द्वारा अग्रसर हुआ है। वर्तमान काल में यह व्यवहारिक नहीं प्रतीत होती है। अतः मैं इसका कोई पक्ष प्रतिपादन भी नहीं करता। मेरा उद्देश्य तो केवल मात्र सायण ने वेदार्थ में जो अश्लीलता दिखाई है उसका यथार्थ रूप विज्ञ पाठकों के सामने रखने का है।

भाई और बहिन

—श्री राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

अपनी अवस्था के अनुसार प्रत्येक बालक की परिवार में एक विचित्र स्थिति होती है—वह या तो सब से बड़ा होता है, अथवा सब से छोटा होता है अथवा बीच का होता है। इन स्थितियों के बालकों की मनोदशाएँ और मनोवृत्तियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। बालक जब अकेला अथवा इकलौता होता है तब तो उसकी गति सर्वथा ही भिन्न हो जाती है।

मनोविज्ञान-विशारदों ने इसी स्थिति-भेद के अनुसार बालकों की चार श्रेणियां बताई हैं। यथा—

१—इकलौता बालक।

२—सब से बड़ा बालक।

३—बीच का बालक।

४—सब से छोटा बालक।

अब हम इन चारों प्रकार के बालकों की स्थिति, समस्या आदि पर पृथक्-पृथक् विचार करते हैं।

१—इकलौता बालक—इकलौते बालक को उन लोगों के साथ रहना पड़ता है, जो सब के सब अवस्था में उस से बड़े हैं। वयोवृद्धों के साथ बालक का सदैव रहना-खेलना, खाना-पीना सर्वथा अस्वाभाविक है। अतः बालक को कभी इकलौता तो होना ही नहीं चाहिये। परन्तु हम यह भी जानते हैं कि संसार में अनेक इकलौते बालक हैं। इतना ही नहीं, प्रत्येक सब से बड़े बालक को कुछ समय तक इकलौते बालक के रूप में रहना ही पड़ता है।

इकलौते बालक पर पूरा परिवार लाड़ करता है, और वह एक प्रकार से परिवार के आकर्षण का केन्द्र अथवा परिवार का सब से अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति बन जाता है। वह भी ऐसा ही समझने लगता है। उसके लिये यह एक सामान्य बात बन जाती है कि सबकी दृष्टि उसी पर रहे तथा वही सब से अधिक

महत्वपूर्ण व्यक्ति समझा जाए। जब कभी भी इस लाड़-प्यार अथवा उसके महत्व की स्वीकृति में जरा सी भी कमी आ जाती है, तभी बालक समझ बैठता है कि उसका अपमान हो रहा है, उसकी उपेक्षा की जा रही है, और वह खीझ उठता है। सारांश यह है कि इकलौते बालक का अहम् बहुत बढ़ जाता है।

इकलौते बालक को सब प्यार करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति उसका कुछ-न-कुछ काम करता रहता है। इस प्रकार वह हर काम के लिये दूसरों की ओर देखने का काम अथवा दूसरों से सहायता प्राप्त करने का अभ्यास हो जाता है। परिणाम यह होता है कि आगे चलकर जब वह जीवन में प्रवेश करता है, तब उसे छोटे से छोटे काम में बहुत बड़ी कठिनाई दिखाई देती है। छोटा काम भी उसे पहाड़ के समान दिखाई देता है। "जिनको लाड़ घनेरे, तिनको दुख बहुतेरे।" वाली लोकोक्ति सम्भवतः इकलौते बालकों के लाड़-चाव के ओर ही संकेत करती है। इतना अधिक लाड़-प्यार न करें कि वह किसी काम को करने योग्य न रह जाए—अथवा बिगड़ जाए। माता-पिता उसके मुंह को ही हमेशा देखते रहते और उसकी सुन्दरता की प्रशंसा करते रहते हैं, वे उसके प्रत्येक काम को बहुत ही ध्यान से देखते और उसकी सराहना करते हैं, वे उसकी प्रत्येक बात को ध्यान से सुनते और उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते हुए अघाते नहीं हैं, आदि। इस सब का परिणाम यह होता है कि बालक अपने आपको अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ अथवा सर्वथा भिन्न एवं सर्वोपरि समझने लगता है। इसके अतिरिक्त वह अपनी अवस्था के बालकों के साथ नहीं रहता है, इस कारण भी अपने आपको अन्य बालकों की अपेक्षा भिन्न समझने लगता है। परन्तु कालांतर में, जीवन में, प्रवेश करते समय, जब उसे अन्य बालकों के साथ ही रहना पड़ता है, उन्हीं की भान्ति सब काम करने पड़ते हैं, तब उसके अहम् को चोट लगती है, मानों वह ऊपर से नीचे गिर पड़ता है और समाज के साथ घुलने-मिलने में उसे झिझक भी होती है और कठिनाई भी। मैं स्वयं अपने भाइयों में सब से बड़ा हूं, बहुत समय तक इकलौता बालक रहा हूं। मैं अभी तक यही चाहता रहता हूँ कि सब लोग मेरा ख्याल रखें, मैं जो चाहूं वही हो, मेरे सिर का दर्द सब के लिये सिर दर्द बन जाए—आदि।

जब तक बालक बहुत छोटा रहता है, तब तक वह घर की चार-दीवारी में

बना रहता है और घर वाले उसके मुंह की ओर देखते रहते हैं। बड़ा होने पर वह स्कूल जाता है। वहाँ वह अन्य बालकों से मिलता है। उसे मालूम होता है कि अन्य अनेक बालक ऐसे हैं जो उसकी अपेक्षा अधिक सुन्दर हैं, स्वस्थ हैं, बुद्धिमान हैं। इतना ही नहीं वे अपना काम आप कर लेते हैं, जब कि स्वयं उसे छोटे से छोटे काम के लिये किसी की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। बस, बालक के दिल को धक्का लगता है, हीनत्व भावना उसके मन में घर कर चलती है। इस प्रभाव की प्रतिक्रिया कई रूपों में होती है—वह शर्मीला हो जाता है, वह सुस्त हो जाता है, अपनी ओर अन्य व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित करने के लिये वह कभी लड़ने लगता है, कभी चिल्लाने लगता है कभी बिना मतलब हंसने लगता है—आदि। सारांश यह है कि वह अपने आपको एक सागर में खोया हुआ पाता है और अपनी इच्छा की संतुष्टि के लिये गलत तरीके काम में लाना शुरू कर देता है, ऊटपटांग काम व बातें करने लगता है। अन्य लड़के उसे बनाने लगते हैं। उसका व्यवहार विचित्र हो जाता है। हमें समझ लेना चाहिये कि विचित्र व्यवहार निराशा के फलस्वरूप होता है। इकलौते बालक प्रायः दुनियादार नहीं होते हैं। वे चाहते हैं कि दुनिया उनकी फिक्र रखे, दुनिया के पास इतनी फुरसत कहां है। जिन बालकों की बहुत देख-भाल होती है, उनकी दुनिया दूसरी हो जाती है वे जब इस दुनियां में आते हैं, तो उनके विचित्र व्यवहार पर दुनिया हंसती है। इकलौते बालक को आप इन लक्षणों के द्वारा सरलतापूर्वक पहिचान सकते हैं—वह अपने बारे में बहुत बातें करता है, अपनी शेखी मारता है, बात पीछे नाराज़ हो जाता है अथवा रूठ जाता है, जरा सी तकलीफ के होने पर हाय! हाय! करने लगता है—आदि।

२—सब से बड़ा बालक—सब से बड़ा बालक कुछ समय तक इकलौता बालक रहता है। अतः उसकी स्थिति बहुत कुछ इकलौते बालक के समान होती है। हाँ, इतना अवश्य है कि उसके सुधार के लिये काफी गुञ्जाइश रहती है।

अकेला होने के कारण, यह सब से बड़ा बालक कुछ समय तक सब की आँखों का केन्द्र बना रहता है। भाई अथवा बहिन के जन्म लेते ही उसकी देख-रेख में कमी आ जाती है, कम से कम माता की ओर से देख-भाल में निश्चित रूप से कमी हो जाती है, क्योंकि माता अब नवजात शिशु में व्यस्त

हो जाती है। बड़ा बालक समझता है कि इस नवजात बालक के कारण ही उस के लाड़-प्यार अथवा महत्व में कमी हो गई है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि वह अपने इस छोटे भाई अथवा बहिन को अपना शत्रु समझने लगता है। इस परिस्थिति में बड़े बालक के आचरण में एकाएक परिवर्तन हो जाता है। वह जिद्दी अथवा बदतमीज़ हो जाता है। वह जरूरत से ज्यादा ऊधमी अथवा शैतान हो जाता है—कभी वह अपने कपड़े गीले कर लेता है, कभी बिछौने भिगो देता है—तात्पर्य यह है कि वह किसी न किसी प्रकार सब लोगों का विशेष कर माता का, ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है। वह सोचने लगता है कि उसकी इज्ज़त में, उसके महत्व में कमी आ गई है तथा माता ने उसको धोखा दिया है। सारांश यह है कि छोटे भाई-बहिन के जन्म के फलस्वरूप परिवार वालों का प्यार बंट जाता है। इस कारण बड़े बालक को सदमा पहुँचता है—एक प्रकार की निराशा होती है।

माता-पिता यदि थोड़ी सावधानी से काम लें तो बालक को इस सदमे से बचाया जा सकता है। उन्हें चाहिये कि बालक को नये बालक के स्वागत के लिये तैयार रखें। जैसे ही नया बालक गर्भ में आये, वैसे ही वे बालक से इस प्रकार की बातें करना शुरू कर दें—अब तुम्हारे एक छोटा भाई होगा, तुम उसे खिलाया करोगे न ? हमारा बड़ा भाग्य है कि तुम बड़े हो गये हो, तुम से हमें बहुत सहारा मिलेगा, तुम न होते तो हमें और किसी का सहारा टटोलना पड़ता, तुम्हारा नया भाई छोटा सा और कमज़ोर होगा, हमें उसकी बहुत देख-भाल करनो पड़ेगी। तू तो हमारा प्यारा बेटा अथवा प्यारी बेटी है, तू भी उसे प्यार करेगी—आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि आप अपने व्यवहार के द्वारा बालक के मन में दो बातें बैठा दीजिए--(१) बालक आप का मित्र है और आप उस की सहायता पर निर्भर हैं तथा (२) नये बालक के कारण उसके प्यार में कोई कमी नहीं आने पायेगी।

आप अपने बालक की यह मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि तैयार कर लेते हैं, तो आप देखेंगे कि आपका बालक नये बालक के स्वागत के लिये उत्सुक हो उठता है, जन्म लेने पर उसका स्वागत करता है और उसके हृदय को किसी प्रकार का धक्का नहीं लगता है—उल्टा प्रसन्न होता है, क्योंकि उसे विश्वास है कि वह

अपने परिवार के कामों में हाथ बंटाने वाला एक महत्वपूर्ण व्यक्ति है तथा उसकी स्थिति सर्वथा सुरक्षित है। नये बालक के लालन-पालन में उसका योग बता कर आप उसके अहम् की तुष्टि कर देते हैं और उसके प्रति पूर्ववत् प्यार का आश्वासन देकर आप नये बालक के प्रति उसके मन में उत्पन्न होने वाली विरोध-भावना का निराकरण भी कर देते हैं।

कुछ लोग कह सकते हैं कि छोटा-सा बालक क्या समझता है और उससे ऐसी बातें कहने से कोई लाभ नहीं है। हम निवेदन करना चाहते हैं कि बालक सब कुछ समझता है। अगर आपका बालक केवल दो वर्ष का भी है, तब भी आपको चाहिये कि आप उसके सम्मुख ऊपर बताये ढंग—से बातें करें और नए भाई बहिन के स्वागत के लिये उसे तैयार कर लें। नए बालक के आगमन का सम्बन्ध में आप उससे कभी कोई गलत अथवा झूठी बात न कहें। ऐसा करने से आप बालक के साथ अपने सम्बन्धों को सदा-सर्वदा के लिये बिगाड़ लेंगे। आप इस रास्ते पर चल कर तो देखिये, आपके बालक पर कितनी स्वस्थ प्रति-क्रिया होती है।

जो बात सबसे बड़े बालक के लिये कही गई है, उसे अन्य बालकों के लिये भी समझ लें। जिस बालक के नया भाई-बहिन होनेवाला हो, उसी को उसके स्वागत के लिये इस प्रकार तैयार कर चलें। आप देखेंगे कि आपके बालक नए भाई-बहिन का सदैव स्वागत करते हैं और सब के सब आपस में खूब हिल-मिल कर रहते हैं।

३—बीच का बालक—हम यह तो देख ही चुके हैं कि इकलौता बालक परिवार के उसी व्यक्ति का अनुकरण करता है, जो उसे सबसे अधिक प्रभावित करता है। दूसरा बालक अन्य किसी का अनुकरण चाहता है। आप पूछ सकते हैं उसी व्यक्ति का क्यों नहीं ? यह एक बड़ी विचित्र बात है कि प्रत्येक बालक अपने आप को विभिन्न व्यक्तियों का बेटा-बेटी बताता है। कोई अपने चाचा से अधिक मिल जाता है, कोई ताऊ से, कोई दादी से, कोई नानी से, कोई बुआ से—आदि।

पहिला बालक प्रायः माता-पिता में से एक को चुन लेता है। दूसरा बालक शेष व्यक्तियों में से किसी को अपना लेता है। विभिन्न व्यक्तियों को अपना

आदर्श बनाने के फलस्वरूप सगे भाई-बहिनों के स्वभावों में काफी भिन्नता आ जाती है। आप देखेंगे कि बड़ा बालक यदि क्रोधी है, तो छोटा बालक शान्त स्वभाव वाला होगा, बड़े बालक का झुकाव गणित की ओर है, तो छोटा बालक साहित्य का प्रेमी होगा। ऐसा बहुत कम होता है कि दो भाइयों अथवा बहिनों के अभ्यास एक से हों अथवा उनकी रुचियां समान हों।

अब मान लीजिये तीसरे बालक का जन्म हो जाता है। दूसरा बालक और बीच का बालक बन जाता है। उसकी स्थिति भयंकर हो जाती है। उससे बड़ा बालक उसकी अपेक्षा विकसित अधिक है और उससे छोटे बालक पर माता-पिता का प्यार अधिक है। इस प्रकार वह बेचारा दोनों ओर से दबने लगता है। माता-पिता को चाहिये कि इस बालक का विशेष ध्यान रखें—उसे सदैव उत्साहित करते रहें। उसके छोटे-छोटे सद्गुण को देखें और जरा सा भी मौका पाकर उसे प्रोत्साहित करें, उसे कभी भी अनुभव न करने दें कि उसकी स्थिति नाजुक है उसे यह विश्वास करा दें कि अपने बड़े तथा छोटे भाई-बहिनों के समान वह भी उन्हें उतना ही प्यारा है तथा परिवार का वह भी एक उतना ही महत्व-पूर्ण सदस्य है।

आप सहमत होंगे कि माता-पिता इन बातों का प्रायः ध्यान नहीं रखते हैं। यही कारण है कि सबसे छोटे बालक तो लाड़ में बिगड़ जाते हैं तथा बीच के बालक का विकास—शारीरिक मानसिक सभी प्रकार का विकास—अवरुद्ध हो जाता है।

४—**सबसे छोटा बालक**—तीन भाई-बहिनों में सबसे छोटे बालक की स्थिति अब सरलता पूर्वक समझी जा सकती है। एक ओर, जहाँ अपने लिए महत्त्वपूर्ण स्थान बनाने का प्रश्न है, उसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, परन्तु दूसरी ओर जहाँ लाड़-प्यार का प्रश्न आता है, वह सबसे बाजी मार ले जाता है। माता-पिता तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों की सहानुभूति, उनकी चिन्ता उनके प्यार के अतिरिक्त उसे अपने बड़े भाई-बहिनों का भी दुलार प्राप्त होता है। मैंने अनेक माता-पिता को अपने सबसे छोटे बालक को कोख-पोछना अथवा कोख-पुछनियाँ कहकर अत्यधिक प्यार करते देखा है। मैंने यह भी देखा है कि अपने छोटे बालक के प्रति स्नेहाधिक्य के फलस्वरूप माता-पिता प्रायः

अपने बड़े बच्चों को भला-बुरा भी कह देते हैं। सबसे छोटा बालक प्रायः आजन्म छोटा ही बना रहता है। ऐसा बहुत कम देखा जाता है कि जो बालक अपने भाई बहिनों में सबसे छोटा हो, उसमें आत्म निर्भरता, धैर्य, बुद्धि की परिपक्वता आदि गुण पाये जाते हों। वह हमेशा अल्ल बछेड़ा, विटुआ, मुन्ना खोखा, वेबी, लल्ला आदि ही बना रहता है।

सबसे छोटे बालक के प्रति भाइयों और बहिनों का व्यवहार इस बात पर बहुत कुछ निर्भर रहता कि उसमें तथा उससे बड़े भाई-बहिन में कितने वर्षों का अन्तर है। यदि यह अन्तर कई वर्षों का होता है, तब तो उसके दोनों बड़े भाई-बहिन उसके लिये चाचा-चाची के समान हो जाते हैं और उसकी वही हालत होती है जो इकलौते बालक की होती है।

उससे बड़े भाई-बहिन और उसकी अवस्था में यदि थोड़ा ही अन्तर है, तो उसकी अवस्था विचित्र हो जाती है। उसे अपने लिये मार्ग स्वयं बनाना पड़ता है और वह एक प्रकार से विद्रोही बन जाता है। यह प्रायः देखा जाता है कि सबसे छोटे बालक की आदतें परिवार के अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा सर्वथा भिन्न ही होती है। वह अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अपने आप को दुर्बल पाता है। फलस्वरूप निषेधात्मक कार्य करने लगता है उसमें एक प्रकार की हीन भावना आ जाती है और अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये वह बहुत उट-पटांग काम करने लगता है, कभी उसमें बात-बात में मचलने की आदत आ जाती है, कभी वह लोगों का अपमान करना सीख जाता है। सारांश यह कि अपनी हीनत्व भावना की पूर्ति वह अपनी इच्छा के अनुसार काम करके कराके करना चाहता है। यह भी देखा गया है कि बालक कभी-कभी चोरी करना भी सीख जाता है ऐसे बालकों—सबसे छोटे बालकों के प्रति माता-पिता का कर्तव्य है कि उनकी हीनत्व भावना को दूर करने का बल्कि उनसे उसे दूर रखने का भरसक प्रयत्न करें। सबसे छोटा होने के फलस्वरूप वह जिस हानि का अनुभव करता है, उसकी पूर्ति के लिये माता-पिता को चाहिये कि उसे सदैव प्रोत्साहित करते रहें और उसे स्पष्ट करदें कि वह एक खिलौना मात्र न होकर हम सब की भाँति एक मनुष्य है। सारांश यह कि माता-पिता को इस बात का पूरा ध्यान

रखना चाहिये कि उनकी सब से छोटी सन्तान शीघ्राति-शीघ्र अन्य बालकों तथा परिवार के अन्य सदस्यों की भांति अपने पैरों पर खड़ा होना सीख जाए।

प्रश्न हो सकता है कि यदि तीन से अधिक बच्चे हों तो माता-पिता को क्या करना चाहिए ? उत्तर स्पष्ट है। सबसे पहले और सबसे पीछे वाले बालकों की स्थितियाँ तो स्पष्ट हैं ही, अन्य बालकों को बीच के बालक की भाँति देखा जाना चाहिए। बहुत से माता-पिता यह भी कह देंगे कि इन बातों की कोई आवश्यकता नहीं है। हाथ की सब अँगुलियाँ बराबर हैं, हम तो सब बालकों को समान रूप से प्यार करते हैं, हमारा निवेदन है कि हमारे अपने आपको समझा लेने से कोई काम नहीं चलेगा। हमें बालक की आवश्यकता के अनुसार अपने आपको ढाल कर व्यवहार करना पड़ेगा। बालक जिस क्रम से जन्म लेता है, उसी क्रम के अनुसार उसके विकास के लिए परिस्थितियाँ आवश्यक होती हैं। बालक का पालन करते समय हमें चाहिए कि स्थिति-जन्य इन अन्तर को ध्यान में रखें। हमारा प्यार बराबर अवश्य है, परन्तु बालकों की आवश्यकताएँ तो बराबर नहीं है। अतः हमें चाहिए कि अपने प्यार को विभिन्न साँचो में ढाल कर विभिन्न बालकोंके लिए उपयोगी बनाएँ।

सारांश

हम उपने प्रत्येक बालक के साथ समान व्यवहार नहीं कर सकते हैं। सफल माता-पिता बनने के लिए तथा अपने बालकों को सफल नागरिक बनाने के लिए हमें उनकी स्थिति को समझ लेना चाहिए। बालक जिस क्रम में उत्पन्न होता है, उसी के अनुसार परिवार में उसका स्थान निर्धारित होता है और उसी के अनुसार उसकी आवश्यकताएँ होती हैं। माता-पिता को चाहिए कि बालकों के लालन-पालन के समय इन सब बातों का ध्यान रखें। वे यह सूत्र गांठ बाँध लें— अपने बालक में हीनत्व भावना मत आने दीजिए। उसे सदैव प्रोत्साहित करते रहिए।

जीवन की दिशाएँ

—धीरेन्द्रकुमार झा, एम० ए०

गति जीवन का पर्याय है। गतिशीलता जीवन का सहज धर्म है। जीवन गति सापेक्ष होकर आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त करता है। किन्तु, जीवन में गति का विस्तार किस प्रकार हो? यह एक विचारणीय प्रश्न है। हम सब का जीवन एक दृष्टि से तो गतिशील है ही, फिर? जीवन की जिस गतिशीलता अथवा विकासोन्मुखता की ओर मेरा संकेत है, वह सामान्य गतिशीलता से परे की अनुभूति है। उस सत्य को कबीरदासजी ने अत्यन्त सूक्ष्मता से रेखांकित किया है :—'ज्यों तेली के बैल को घर ही कोस पचास।' तेली का बैल भी तो गतिसम्पन्न होता है, किन्तु क्या उसकी गतिशीलता की कोई रचनात्मक भूमिका है? मनुष्य का जीवन सर्वोपम माना जाता है, इसलिए उसके जीवन की एक भिन्न भूमिका भी स्वीकार की जाती है। जहाँ और पशु-प्राणी चरण से अधिक चलते हैं, वहाँ मनुष्य अपने विवेक से, अपने आचरण से, अपनी अन्तर्दृष्टि से चलता है। इसीलिए जीवन में निरन्तर अग्रसर होते रहने की बात प्रायः सभी महान तत्त्वचिन्तकों ने दुहराई है। चूंकि मानव-जीवन का सारा रहस्य उसकी अभिवृद्धि में है। इसी में जीवन की पूर्णता है और यही पुण्य-जीवन का काम्य है। कर्ममय जीवन ही जीवन है। जहाँ कर्मण्यता नहीं, वहाँ जीवन नहीं। गीता में योगेश्वर कृष्ण ने जीवन की सार्थकता की व्याख्या करते हुए कहा है—शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः। कर्म-स्खलित होने से मनुष्य पतित हो जाता है। कर्म ही मनुष्य के जीवन की गतिशीलता का मापदण्ड है। जिसमें कर्म के प्रति ऐसी दिव्य समर्पित भावना विद्यमान रहेगी, वह निश्चय ही अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में कृतकार्य होगा।

जीवन की दिव्यता का वर्णन करते हुए कवि ने कितनी मार्मिक पंक्तियाँ लिखी हैं :—

अपने उर में अविरत स्पन्दन,
बस इतना अपना धन है।
अविकल गिरना उठना, बढ़ना,
इतना अपना जीवन है॥

वस्तुतः कर्ममय एवं गतिशील जीवन की इससे अच्छी एवं उपयुक्त परिभाषा और क्या हो सकती है ? जिसने जीवन के उस दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार किया, वह कृतकृत्य हो उठा। उसकी जीवन-धारा ही बदल गई। इसके विपरीत जिसने जीवन के इस पक्ष को नहीं देखा, उसका जीवन ही निष्प्राण हो गया। क्योंकि—"जीवनमृतः कस्तु निरुद्यमो यः।" उद्योग ही मनुष्य अर्थात् चेतन-प्राणी का धर्म है।

अब तक तो हमने जीवन की गतिधर्मिता की व्याख्या की, अब हमें यह देखना है कि हम अपने कर्त्तव्यों का सम्पादन किस विधि से करें। केवल कुछ करना ही कर्म का लक्ष्य नहीं है। हम जो भी कार्य करें, वह दो दृष्टियों से समीचीन हों—प्रथम, उद्देश्य की दृष्टि से, द्वितीय—मनुष्यता की दृष्टि से। हमें ऐसे ही कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिए जिसका निर्माणात्मक मूल्य हो, जो बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय की मंगल लोक-भावना से सम्पृक्त हो। हमारे कर्मों में हृदय और बुद्धि का सामञ्जस्य हो। हम अपनी समस्त हृदयगत एवं बुद्धिगत संकीर्णताओं से ऊपर उठकर रचनात्मक एवं लोकसंग्रहकारी कृत्यों के सम्पादन में अपनी शक्ति, अपनी बुद्धि; अपनी चेतना का नियोजन करें। यह एक दुष्कर कार्य है, तथापि एक उदात्त मानवीयता का संवाहक है। आज जबकि समग्र विश्व अन्तर्विघटन एवं अन्तर्विरोध के दौर से गुजर रहा है, हम सबका यह प्राथमिक कर्त्तव्य हो जाता है कि हम ऐसी विषम परिस्थिति में अपने कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का सूक्ष्म अनिरूपण करें एवं इस संक्रमणकालीन परिस्थिति को एक मानवीय मोड़ दें। कविवर प्रसादजी के शब्दों में :—

'इस पथ का उद्देश्य नहीं है,
श्रान्त भवन में टिक रहना,
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर,
जिसके आगे राह नही।'

मानव-जीवन की भी कोई सीमा नहीं है, यह तो विराट् है, अनन्त है, अकूल है। इसकी विराटता का उत्स गतिशीलता में है। ईश्वर करे हम महाकवि प्रसाद की इन पंक्तियों का भाव-वैभव ग्रहण कर सकें एवं हमारे जीवन के पथ का उद्देश्य भी व्यापक हो और हम भी कर्म की उस सीमा पर पहुँच सकें जिसके आगे और कोई राह न हो।

महाभारत की एक उपदेशप्रद कथा—

जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन

समुद्र के समीपवर्ती किसी नगर में एक कौआ रहता था। वह लोगों की जूठ से पेट भरता था। आँख बचाकर वह खाने वाले पदार्थ को उठा लेता और छोटे बालकों से तो बलपूर्वक ग्रास छीन लेता था। छोटे-छोटे पक्षियों को तंग करना उसका स्वभाव था। उसे अपनी उड़ान पर भी अभिमान था। जब कोई उसकी ओर देखता, या जमीन पर हाथ लगाता, तो वह उस स्थान से उड़ने की करता। उसे अपनी चतुराई पर गर्व था।

एक बार वह समुद्र-तट पर गया। वहाँ कहीं दूर से आई हुई हंसों की टोली बैठी थी। कौए ने उनसे पूछा—"तुम कौन हो, कहाँ से आए हो?"

उनमें से एक हंस ने कहा—"हमारा घर मानस (मानसरोवर) में है। हम सारी पृथिवी का चक्र लगाते हैं। दूर उड़ान के कारण सब पक्षी हमारा मान करते हैं।"

"क्या तुम में से कोई मुझ जैसा उड़ सकता है? कौए ने गर्व से कहा—"मैं उड़ने के सौ प्रकार जानता हूँ। बहुत तेज उड़ता हूँ, दूर उड़ता हूँ और कई प्रकार की कलाबाजियाँ लगाता हूँ। तुम कितनी उड़ानें जानते हो?"

हंस नम्रता से बोला—"हम तो एक ही उड़ान जानते हैं और उसी उड़ान के सहारे लम्बी यात्रा पूरी करते हैं। आपकी विविध उड़ानें लम्बी यात्रा में सहायक सिद्ध न हो सकेंगी।"

"गलत कहते हो" कौए ने ग्रीवा ऊँची करके कहा—"जिसमें हौसला है, वह मेरे साथ उड़कर देख ले।"

कौए के आह्वान (चैलेंज) को सुनकर एक हंस पंक्ति से बाहिर निकल आया और उसने कहा—"भाई! यह सामने विशाल सागर है। आओ, हम

दोनों इसको पार करें। सौ योजन (चार सौ कोस) पर जो द्वीप है, वही हम दोनों का लक्ष्य हो। पहिले पहुँचने वाला विजयी समझा जाए।"

कौए ने कहा—"बहुत अच्छा।"

वे दोनों उड़ पड़े। हंस ने गति धीमी रखी, परन्तु कौआ पहिले आकाश में ऊँचा उड़ गया, फिर अपने पंखों को निश्चल करके नीचे आ गया। आरम्भ में ही अपनी तेज उड़ान से वह हंस से आगे निकल गया। वह फिर पीछे मुड़ आया और धीमी गति से उड़ रहे हंस को मुँह चिढ़ाने लगा। वह कई बार हंस को चोंच मार कर आगे निकल जाता और फिर मुड़ कर उसे निरादर-भरे वचन कहता कि देख ली तुम्हारी उड़ान! क्या इसी बलबूते पर मेरे साथ उड़ने लगे थे।

हंस अपने गंभीर स्वभाव के कारण उत्तर न देता और पहिले की भांति अपनी उड़ान ले लक्ष्य की ओर उड़ता रहता।

तट भूमि आँखों से ओझल हो ही गई। कौए का वेग भी कम होने लगा। वह इधर-उधर ग्रीवा घुमा कर देखता परन्तु उसे कोई भी स्थान विश्राम के लिये न दीखता। नीचे अथाह समुद्र था, जिसमें भयंकर जलचर अपना विकराल मुँह खोले पानी की सतह के ऊपर आते और फिर डुबकी लगा जाते थे।

कौए की गति बहुत धीमी हो गई थी। लक्ष्य का अभी कहीं पता न था। वह अपनी विविध उड़ानें भूल चुका था। वह हंस से पीछे रह गया।

हंस ने घूम कर देखा तो कौआ पानी के साथ-साथ बड़ी कठिनाई से उड़ रहा था। वह बहुत थक गया था। वह अब ऊँचा नहीं उड़ सकता था। कभी-कभी उसका शरीर पानी के साथ छू भी जाता था।

हंस ने पास आकर कहा—"भद्र! आप मेरा मजाक उड़ाते थे। अपनी विविध उड़ानों की दुहाई देते थे। अब यह कौन सी उड़ान है, जिससे अपने जीवन को संशय में डाल रहे हो। समुद्र के इस भयंकर जल से ऊँचे होकर उड़ो। पंख भीग जाने से उड़ नहीं सकोगे और सागर में गिरकर अपना जीवन समाप्त कर लोगे।"

कौए ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह बहुत थक चुका था। हंस के देखते ही देखते वह सागर के जल में गिर पड़ा और लगा डुबकियाँ खाने।

हंस ने यह उसकी अवस्था देखी तो दयालु होकर उसे अपने पंजों से पकड़ लिया, बड़ी कठिनाई से उसे अपनी पीठ पर चढ़ा लिया और वापिस तीर पर लाकर रख दिया।

जब कौए को चेतना हुई तो हंसों के मुखिया ने कहा—

१. "आप अपनी बहुत प्रशंसा करते थे। आत्म-श्लाघा उचित नहीं होती। उसका परिणाम यही कुछ होता है।"

२. आप बहुत सी उड़ानें जानते थे, परन्तु कुशल किसी में भी न थे। बहुविध ज्ञान से अच्छा है कि एक में पूर्णतया कुशल हो। हम लोग एक ही गति जानते हैं उसीका हमने अभ्यास किया है। उसीके सहारे हम अपने इष्ट स्थान को पहुँच जाते हैं।"

३. 'खेद न करो। हंसों का स्वभाव ही है कि वे दया का भाव अपने हृदय में रखते हैं। आप नगर में जाइये, फिर इस प्रकार की चेष्टा न कीजिए।"

कौए ने उनको धन्यवाद किया और बड़े नम्र भाव से कहा—"मैं जूठे अन्न से ही अपना पेट पालता हूं। इसलिये उस अन्न के प्रभाव से मेरे भीतर निरर्थक अभिमान आ गया था। आप मानस के मोती खाते हैं। उन शुद्ध और निर्मल मोतियों के आहार से आपके स्वभाव में निर्मलता है। मैं अपनी गलती अनुभव करता हूँ, फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा।"

आधुनिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति

प्रो० कृष्ण कमलेश

तकनीकी और वैज्ञानिक प्रगति के इस अभूत-पूर्व और असम्भवावित आयाम में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि क्या आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति भारतीय संस्कृति के विकास में बाधक है ? वस्तुतः इस प्रश्न की जड़ें हमारे हमारे सीमित-परिवेशगत संस्कारों और साधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के प्रक्रिया-स्वरूप बदलते जीवन-मूल्यों की परस्पर टकराहट में निहित हैं। सांस्कृतिक विडम्बना के जिस दौर से हम गुजर रहे हैं, उसमें संस्कृति बहुत धीमी रफ़तार से आगे बढ़ रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका विकास रुक गया है, सामर्थ्य चुक गया है और दूसरी ओर है विज्ञान की अन्धी रफ़तार। यह सच है कि वैज्ञानिक प्रगति की अति सभ्यता के क्षेत्र में विकृति बनती जा रही है। यान्त्रिकता, प्रगति की अन्धी दौड़, शक्ति के केन्द्रीयकरण की लालसा और सामूहिक यातना के युग में व्यक्ति का अस्तित्व खोता जा रहा है। अनवस्थितत्व, अनास्था और मूल्य-हीनता का एक रूप हिप्पी संस्कृति के रूप में सभ्यता के अपने आदिम गुनाहों के दौर में प्रत्यावर्तन का संकेत है, जब कि हमारे देश में सांस्कृतिक समानान्तरण को स्थिति बनी हुई है। एक और आकाश में जैट उड़ते हैं, दूसरी ओर सड़कों पर बैलगाड़ियां चलती हैं और इन दोनों के संधिस्थल पर रुका भारतीय व्यक्ति न तो नव-युग के द्रुत-पगों का साथ दे पाता है और न ही अपने संस्कारों से जुड़ा रह सकता है। विज्ञान भौतिक समृद्धि तो देता है; किन्तु व्यक्ति को मशीन या पशु बनने पर भी विवश करता है। भौतिकता के अधिक प्रभाव के कारण मनुष्य अन्य व्यक्तियों से स्वार्थपूर्ण सम्बंध रखना चाहता है। हरएक दूसरे को अपना साधन (टूल) बनाना चाहता है और इसके अभाव में सम्बन्धों की मिठास उसके लिये कड़वाहट में बदल जाती है। इसके विपरीत भारतीय संस्कृति मानवमात्र का संस्कार है, जीवन में आस्था का आख्यान है। वैज्ञानिक प्रगति की तर्क और प्रयोग-मूलक उपलब्धियों और

परम्परागत विश्वासों में विरोध का भाव लगभग डेढ़-दो शताब्दी पूर्व अधिक प्रबल था, जिसके फलस्वरूप गैलिलियों जैसे प्रतिभावान् वैज्ञानिक को जनता का कोपभाजन बनना पड़ा। विज्ञान विश्लेषक की दृष्टि लेकर चलना है, तर्क पर आधृत है। संस्कृति जल को ईश्वरीय देन और पंचतत्वों में से एक मान कर संतुष्ट हो जाती है, जबकि विज्ञान उसका रासायनिक विश्लेषण और प्रमाण चाहता है। विज्ञान की इसी विश्लेषक और प्रयोग-मूलक प्रवृत्ति ने प्रति-द्वन्द्विता को उकसाया है, जब कि भारतीय संस्कृति क्षमा, सहनशीलता, समन्वय एकीकरण और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के महान् उद्देश्य के विस्तार में विश्वास रखती है।

भारतीय संस्कृति और वैज्ञानिक प्रगति के विरोधाभासों की सत्यता को जांच करने से पूर्व विज्ञान और संस्कृति शब्दों के सही अर्थ, आशय, संदर्भ और क्रमिक विकास पर एक दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा। विज्ञान से तात्पर्य है विशिष्ट ज्ञान। संस्कृति हमारे मूल्यों, जीवन-पद्धतियों एवं जीवन-दर्शन की सामूहिक संज्ञा है।

संस्कृति की एक परिभाषा संस्कारों के संग्रह के रूप में भी की जाती है और संस्कार चेतन-अवचेतन के परिवेशगत परिवर्तनों के साथ बदलते हैं। अत-एव यह सच है कि भारतीय संस्कृति का रूढ़िप्रिय जड़ अंश अवश्य ही वैज्ञानिक प्रगति के साथ समझौता नहीं कर पाया है। एक नितांत व्यावहारिक उदाहरण लीजिये—परिवार-नियोजन देश के संतुलित विकास के लिये कितना उपादेय है, यह तर्क सिद्ध है। भारतीय संस्कृति की दुहाई देते हुए कुछ लोगों द्वारा इसका विरोध न केवल अन्ध-विश्वास और कूप-मंडूक की प्रवृत्ति प्रकट करता है, अपितु संस्कृति का गलत चित्र भी प्रस्तुत करता है। संस्कृति को धर्म या अन्ध-विश्वास का पर्याय मान कर चलना उसे विज्ञान की परिसीमाओं से दूर रखना है, परम्परा की मोहर लगा कर उसे परिवर्तन की ताजी हवा से वञ्चित रखना है। संस्कृति हमारे युग-युगों के संस्कारों का संग्रह है, जिसमें परम्पराओं एवं रूढ़ियों का उतना ही योग है जितना कि नवमूल स्थापनाओं और नूतन प्रयोगों का। जीवन जितना बहुमुखी और परिवर्तनशील है, संस्कृति भी उतनी ही है। युग-सत्य और चिरसत्य के दोनों छोरों से जुड़ी संस्कृति मनुष्य का भीतरी रूप संवारती है,

जबकि विज्ञान उसके बाह्य अलंकरण और उपभोग का साधन है। वास्तविकता तो यह है कि संस्कृति और विज्ञान दोनों ने ही मनुष्य जाति की प्रगति में सहयोग दिया है। संस्कृति किसी देश या जाति की वह आस्था होती है, जो परम्परागत रूप से मनुष्य में चली आती है और विज्ञान संस्कृति की आधार-भित्ति पर कुछ नये चित्र खींचता चलता है। संस्कृति को मात्र आस्था का विषय मान लेना उतना ही भ्रामक है, जितना कि विज्ञान को मात्र तर्क की वस्तु समझना। आस्था का विषय होकर भी संस्कृति विज्ञान से टूट कर नहीं जी सकती। विज्ञान से आशय है विशिष्ट ज्ञान और ज्ञान का लक्ष्य होता है तत्त्व की शोध। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति स्वयम् एक वैज्ञानिक संस्कृति है, क्योंकि यह काल के अविच्छिन्न क्रम के बदलते परिप्रेक्ष्यों में जीवन के सत्य की खोज का समन्वयात्मक, रचनात्मक आयास है। प्राचीन काल से वैचारिक स्वतन्त्रता का क्षेत्र यहाँ इतना विस्तृत रहा है कि तर्क और विश्वास में विसन्तुलन या विरोध की स्थिति कभी नहीं आ सकी। प्राचीन पाण्डुलिपियाँ, दुर्लभ ग्रन्थ और इस दिशा में हुए अब तक के शोध-कार्य यह सिद्ध करते हैं कि आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के सभी आयामों से प्राचीन भारतीय मनीषी गुजर चुके थे। तञ्जोर के पुस्तकालय में एक प्राचीन पांडुलिपि है, जिसमें आधुनिक जैट और ध्वनि की गति से अधिक गति वाले विमानों की रचना-प्रक्रिया का सविस्तार वर्णन दिया है। दूसरी ओर विज्ञान को मात्र तर्कशील और संशय-मूलक मान लेना भी ठीक नहीं। संसार में प्रथम अणुबम के प्रयोग में जो अणु-बम का विस्फोट हुआ था, उसकी चमक को रौबर्ट ओपन हाइमर ने अपनी नम्रता का परिचय देते हुए कहा है कि यदि आकाश में एक साथ सहस्र सूर्य उदय हो जायें, तो वह प्रकाश परमात्मा के तेज के समान होगा। यही नहीं, हाइमर के अनुसार प्रथम अणुबम के यश-अपयश का श्रेय भगवान को समर्पण करने में विज्ञान और संस्कृति का समन्वय ही तो है। उसने नये अस्त्र के उत्तर-दायित्व ग्रहण करने में भगवान् की स्वीकृति चाही। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि आर्म स्ट्रौंग के ईगल ने ज्यों ही चन्द्रतल का स्पर्श किया, उसने ईश्वर को धन्यवाद देने के तुरन्त बाद पृथ्वी के नाम पहला सन्देश यही भेजा कि हम यहां पर विश्व-शांति की भावना लेकर आये हैं। वस्तुतः विज्ञान जीवन

महत्त्वपूर्ण उपयोगिता की व्याख्या है और संस्कृति के क्रमिक इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि संस्कृति की उद्भावना भी इसी उपयोगिता की दृष्टि से हुई थी। मनुष्य प्रारम्भ ही से व्यवस्था में विश्वास करता आ रहा है। समाज में व्यवस्था और अनुशासन बनाये रखने वाले नियमों के उल्लंघन पर प्रकृति के प्रकोप का भय दिखला कर और यम-नियम-पालकों को सुख की आशा देकर ही शांति स्थापित की जा सकती है। यही नियम, देशानुक्रम से संस्कृति का रूप निर्माण करते चले आये हैं। कालान्तर में इसमें कुछ स्वार्थी तत्त्व आ मिले, और पाखण्ड और अन्ध-विश्वास का प्रवेश हुआ। विज्ञान ने इसी जड़ता पर प्रहार किया। संस्कृति की सचाई की पहचान कराने वाली प्राकृतिक शक्तियाँ मनुष्य के अधिकार में आकर विज्ञान की खोज का विषय बन रही हैं। हमारे दैनिक जीवन में विज्ञान की अनिवार्य उपयोगिता उन दोनों के अन्योन्याश्रितत्त्व को पुष्ट करती है। मन्दिरों में देवी-देवताओं को नाइलोन के वस्त्र पहनाये जाते हैं। रिकार्डों की सहायता से अमेरिका की मस्जिदों में अजान की कार्यवाही पूरी कर ली जाती है। भारतीय मन्दिरों व मस्जिदों में भी माइक और रिकार्डों का उपयोग देखा जाता है। विज्ञान ने कतिपय सांस्कृतिक मान्यताओं की सत्यता भी सिद्ध की है। उदाहरण के लिये चेचक से मृत्यु हो जाने से हमारी संस्कृति में शव को जलाने के बदले गाड़ने का विधान है। इस तथ्य को मान्यता विज्ञान ने इस आधार पर दी है कि शव को जलाने पर चेचक के कीटाणुओं के प्रसार की गति ३५ किलोमीटर तक बढ़ जाती है।

इसके बावजूद इस कटु सत्य की अवहेलना नहीं की जा सकती कि विज्ञान की प्रगति का हिंसात्मक और विध्वंसमूलक आयाम भारतीय संस्कृति के मूल आदर्शों के नितांत विपरीत है। परमाणुविक आयुधों के संहारात्मक प्रयोग और निहित स्वार्थों के ध्वंसात्मक विस्फोटों के विषाक्त वायुमण्डल में आज का मानव अपने अस्तित्व से टूट रहा है, बिखर रहा है, विज्ञान की बुलंदियों से सहमी हुई, वैज्ञानिक प्रगति की तेज मर्करी-लाइट से चौंधियाई हुई मानव-संस्कृति की असहायता इन पंक्तियों के लेखक की एक कविता में व्यंजित हुई है, उसका एक अंश उद्धृत है।

"हँसते खिलते खुशनुमा चमन
बरबाद करेगा यह—
रेगिस्तान बना देने की ठानी है।

और खड़ा विज्ञान अकेला—

खूब हँसेगा अपनी हुई जीत पर।"

हीरोशीमा और नागासाकी का भयानक अंत इस कथन का साक्षी है। वस्तुतः विज्ञान और संस्कृति दोनों ही जीवन-सत्य की खोज का रचनात्मक प्रयास है, परस्पर पूरक हैं। जहाँ तक विज्ञान के संहारमूलक पक्ष का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि कोई भी वस्तु अपने उपयोग के सन्दर्भ में अच्छी या बुरी होती है। आग घर में प्रकाश करती है, तो घर जला भी सकती है। अन्तर तो प्रयोक्ता की दृष्टि में होता है—वस्तु में नहीं। संस्कृति के विषय में भी यही बात स्पष्ट है। रावण भी भारतीय संस्कृति का उपासक था, शिव और शक्ति का साधक था, किन्तु उसके पतन का कारण साधनों का दुरुपयोग था। विज्ञान साधन मात्र जुटाता है, उसका प्रयोग और समन्वय संस्कृति का दायित्व है। दूसरे शब्दों में विज्ञान 'पथ की खोज है' और संस्कृति 'पथ की उपलब्धि'। इस संतुलन को बनाये रखने में असफल होकर एक ओर विज्ञान के सोपान लांघते जाना और दूसरी ओर संस्कृति के नाम पर नीचे फिसलते जाना ही आज के युग की विडम्बना है। अपने सही अर्थों और सन्दर्भों में भारतीय संस्कृति जीवन की विविधमुखी, संतुलित, समन्वयात्मक समीक्षा है। उसकी सर्वाङ्गीण दृष्टि का संकेत ईशोपनिषद् के 'अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते तथा 'विद्यांचाविद्यांच यस्तद् वेदोभयं सह' आदि वचनों में मिलता है। विविध तत्त्वों और प्रतिक्रियाओं को 'आत्मसात्' कर लेने की इसकी अपूर्व क्षमता के कारण ही, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय संस्कृति को 'महामानवेर सागर' कहा है, जिसमें प्राचीन-अर्वाचीन मूल्यों और मानदण्डों के संघर्षण, परिवर्तन और धर्म और विज्ञान के तथाकथित विरोधाभासों का समाधान है। आवश्यकता है मनुष्य-चेतन के प्रसार की, सर्वोदयवादी दृष्टिकोण और अपनी संस्कृति के सही अध्ययन की। सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में "विज्ञान की विश्वव्यापी विजय के युग में निस्संदेह मनुष्य को चेतना के अपने पिछले युगों के बौनेपन को अतिक्रम कर एक नवीन विश्व-मानव के रूप में, लोकमानव के रूप में, अपनी आन्तरिक एकता तथा वाह्य जीवन-समत्व की स्थापना के लिये निरन्तर विज्ञान और अध्यात्म में, धर्म और लोककर्म में स्वर्ण और पृथ्वी के अविच्छेद्य अविभाज्य सामंजस्य की स्थापन करनी होगी, जिससे मनुष्य की सृजनशील आत्मा का धर्म नवीन सौंदर्य, आनन्द तथा शान्ति की रचना करने में चरितार्थ हो सके।"

[सभार विश्व ज्योति से]

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ।।

(मनुष्य को चाहिये कि वह सत्य बोले, प्रिय बोले, कड़वे-सत्य को न बोले, या असत्य प्रिय मीठे लगने वाले झूठ को भी न बोले। यही सनातन धर्म है।)

—मनुस्मृति

प्रकाशक—स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती एवं पण्डित आत्मानन्द शास्त्री द्वारा सम्पादित, तथा शांति आश्रम प्रेस, गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास राउरकेला-४ में मुद्रित।

॥ ओ३म् ॥

वनवासी संदेश

वनवासी सांस्कृतिक समिति वेदव्यास, राउरकेला (ओडिसा) का मासिक मुख पत्र

संस्थापक- स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥

यजु० अ० ३२० मं० १४

अर्थः- हे अग्ने ! अर्थात् प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ! आप की कृपा से जिस बुद्धि की उपासना विद्वान्, ज्ञानी, और योगी लोग करते हैं उसी बुद्धि से युक्त हमको इसी वर्त्तमान समय में बुद्धिमान आप कीजिये । (स: प्र: सप्तम समु:)

O God ! the most glorious Supreme Being, make us wise in this very life time, bless us with that wisdom out of thy grace of which learned man and clairvoyants pray to Thee.

सम्पादक
पं० श्री आत्मानन्द शास्त्री

सह सम्पादक
पं० श्री देशबन्धु विद्यावाचस्पति

उद्देश्य

प्रथम— वनवासी सांस्कृतिक रक्षा
द्वितीय– वनवासी शिक्षा
तृतीय— वनवासी समाज संगठन व उन्नति

बाढ़ पीड़ितों को मुक्त हस्त से सहायता कीजिये ।

विषय - सूची

सितम्बर– १९७५ — पृष्ठांक

वनवासी संदेश

उत्कल जनता संस्कृति रक्षा वद्धकटिस्तमः स्तोमहतिदेशः
गुरुकुल सुपानपोषादुदयति वनवासी संदेशः ।।
यो भ्रष्ट ख्रीष्टमत दीक्षित मज्ञलोकम्
संस्कृत्य दूरयति तद्धृदयान्धकारम् ।।
श्री वेदव्यास सुगुरो कुल सन्निवेशः
सम्पूर्वादेरुदयते वनवासी देशः ।।

वर्ष ६ अंक ६	सितम्बर १९७५	वार्षिक मूल्य ५ रु एक प्रति ५० पैसे

* श्रुति-सुधा *

ओ३म् एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ।। सामवेद पूर्वाचिक ७ मन्त्र

(अग्ने) हे मुझे आगे ले जाने वाली यज्ञाग्नि ! मैं (ते) तेरे (सु) स्वागत में (एहि) आईये (ऊ) और (ईत्था) इसी प्रकार के (इतराः) अन्य (गिरः) वचन (ब्रवाणि) कहूँ । (एभिः) इन (इन्दुभिः) सोम रस की बूँदों से (वर्धास) तू अधिक प्रदीप्त हो बढ़ ।

मेरा ज़ी चाहता है— मुझे उस फरीवाले के दर्शन फ़िर-फ़िर होते रहें । मैं अपने रमते राम को फ़िर-फ़िर बुलाऊँ, फ़िर

फ़िर बुलाऊँ, उसका जी भरकर स्वागत करुँ। उसे जी ! आया कहूं। उसे हृदय के आसन पर बैठाकर पाद्य दूँ, अर्घ्य दूँ मधुपर्क दूँ। अपनी सारीं वाणी की विभूति से उसे "जी आया" कहूँ, "जी आया" कहूँ। एक जीभ से नहीं, हजार जीभों से। अंग-अंग की बोली में इन्द्रिय इन्द्रिय की भाषा में उस अलौकिक अतिथि का स्वागत करुं। रोम रोम का किवाड़ उसके प्रवेश के लिये खोल दूँ। मेरी नस-नस, नाड़ी-नाड़ी उस रमते राम का मूर्ति स्वागत हो जाए। मेरे जीवन-यज्ञ की आग ज़्वाला मुखी बनकर उस विश्व आग का हजार जीभ से आमन्त्रित करे, अभिनन्दन करे।

मेरी वाणी में ओज हो, तेज हो, ज़्वाला हो— आर्द्र ओज, आर्द्र तेज, आर्द ज़्वाला। मेरा मन भावना का घर हो। भावुक हृदय ही से मैं अग्नि–देव का स्वागत करूँ। मैं अपनी आँखों की चाँदनी इस अग्नि-देव के मार्ग में बिछा दूँ। चाँद आर्द्र ज़्योति है। इस में भावनाकी तरी सी-प्रतीत होती है। यज्ञाग्नि की प्रतीक्षा में मेरी आँखें 'इन्दू' बन जाएं। मेरे अंग-अंग में सोम-यज्ञ भावना का रस हो। यही रस में अपने पूज्य अतिथि-देव के चरणों में पाद्य के, अर्घ्य के, मधूपर्क के रूप में पेश करुं। मेरा अग्नि-देव मेरे इसी सोम का प्यासा है। यज्ञ की आग यज्ञ का रस पाकर और प्रज़्वलित हो। क्षण-क्षण में उसकी शोभा बढ़ती जाये आभा बढती जाए। यज्ञ याग को दिन दूनी, रात चौगुनी दीप्ति से देदीप्यमान होती जाए।

The strongest men of world is the one who stands most alone.

संसार का सबसे शक्तिशाली मनुष्य वही है जो अकेला रहता है।

इब्सन

महाभारत युद्ध में कितनी सेना थी ?

❁ अमर स्वामी परिब्राजक, गाजियाबाद

सारी सेना १८ अक्षौहिणी बताई गई है जिसमें ११ अक्षौहीणी सेना दुर्योधन के पास थी और सात अक्षौहिणी सेना पाण्डवों के साथ थी ।

अक्षौहिणी की गणित इस प्रकार है—

अक्षौहिण्या प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमा:
संख्या गणिततत्वज्ञै: सहस्राण्येक विंशतिः ॥ २३ ॥
शतन्युपरि चैवाष्टौ तथा भुपश्च सप्ततिः ।
गजानां च परिमाणमेतदेव विनिर्दिशेत् ॥ २४ ॥

सूतजी के पुत्र श्री उग्रश्रवाजी कहते हैं कि हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! गणित के तत्वज्ञ विद्वानों ने एक अक्षौहिणी में रथों की संख्या २१ हजार ८ सौ ७० कही है । एक अक्षौहिणी में इतने ही अर्थात् २१ हजार ८ सौ ७० ही जानने चाहिये ।

ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु ।
नराणांमपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघ ॥ २५ ॥

हे पाप रहित ब्राह्मणो ! एक अक्षौहिणी पैदल सेना की संख्या १ लाख ९ हजार ३ सौ ५० जाननी चाहिये ।

पञ्चषष्टि सहस्राणि तथाश्वानां शतानि च ।
दशोत्तराणि षड् प्राहुर्यथावदिह संख्यया ॥ २६ ॥

एक अक्षौहिणी में ६५ हजार ६ सौ १० संख्या घोड़े की जाननी चाहिये ।

दुर्योधन की सेना ११ अक्षौहिणी थी तो उसमें रथ दो लाख ४० हजार ५ सौ ७० हुए। एक रथ में कम-से-कम दो मनुष्य होते हैं। एक सारथी एक योद्धा। इस प्रकार रथों पर कस से कम ४ लाख ८१ हजार १ सौ ४० ममुष्य हुये। हाथी भी दुर्योधन के सेना में २ लाख ४० हजार ५ सौ ७० थे। उनके हाथी पर भी दुर्योधन की सेना में कम से कम दो मनुष्य होते हैं, एक चालक एक योद्धा। इस प्रकार हाथियों पर भी मनुष्य ४ लाख ८१ हजार १ सौ ४० हुए। घोड़े दुर्योधन की सेना में ७ लाख २१ हजार ७ सौ १० थे। एक घोड़े पर एक सैनिक होता है। इस प्रकार ७२१७१० मनुष्य घोड़े पर हुए।

पैदल सैनिक दुर्योधन की सेना में १२ लाख २ हजार ८ सौ पचास थे।

४, ८१, १, ४०	मनुष्य रथों पर
४, ८१, १, ४०	,, हाथियों पर
७, २१, ७, १०	,, घोड़ों पर
१२, २, ८, ५०	,, पैदल सैनिक
२८, ८६ ८ ४०	सर्वयोग

दुर्योधन की सेना में सब मिलाकर २८ लाख ८६ हजार ८ सौ ४० सैनिक थे।

२ लाख	४० हज़ार	५ सौ ७०	हाथी
४ ,,	८१ ,,	१ सौ ४०	रथों के घोड़े
७ ,,	२१ ,,	७ सौ १०	घुड़सवार सेना के घोड़े
१२	०२	६ २०	

१२ लाख	२ हजार	६ सौ	२० हाथी और घोड़े थे
२८ ,,	८६ ,,	८ ,,	४० मनुष्य
४० ,,	८६ ,,	७ ,,	६० सब जीव थे।

पाण्डवों की सेना सात अक्षौहिणी थी।
उसमें—

१ लाख ५३ हजार ९० रथ थे
२ ,, ६ ,, १ सौ ८० मनुष्य रथ सबार
१ ,, ५३ ,, ९० हाथी
२ ,, ६ ,, १ सौ ८० हाथियों के सवार
४ ,, ५९ ,, २ सौ ७० घोड़े
४ ,, ५९ ,, २ ,, ७० घुड़ सवार
७ ,, ६५ ,, ४ ,, ५० पैदल सैनिक
२ ,, ६ ,, १ ,, ८० रथों के घोड़े

---

२ लाख ६ हज़ार १ सौ ८० मनुष्य रथों पर
२ ,, ६ ,, १ ,, ८० ,, हाथियों पर
४ ,, ५९ ,, २ ,, ७० ,, घोड़े पर
७ ,, ६५ ,, ४, ५० ,, पैदल

---

१६ ,, ३७ ,, ० ,, ८० ,, सारे सैनिक पाण्डव दल में थे।

और १ लाख ५३ हजार ९० हाथी
४ ,, ५९ ,, २ सौ ७० घोड़े घुड़सवार सेना के
२ ,, ६ ,, १ ,, ८० घोड़े रथों के

(८, १८, ५४०)

हाथी, घोड़े १६, ३७, ०८० मनुष्य
८, १८, ५४० हाथी, घोड़े

२४, ५५, ६२० सब जीव

दोनों दलो के सब ३ लाख ९३ हजार ६ सौ ६० रथ
३ ,, ९३ ,, ४ ,, ६० हाथी
१८ ,, ४९ ,, ४ ,, ४० घोड़े
४४ ,, ८४ ,, २ सौ मनुष्य सैनिक थे।

दोनों दलों के ६७ लाख २७ हजार ३ सौ ८० जीव थे।

इतनी बड़ी सेना के हाथियों, घोड़ों, रथों और सैनिकों के लिये घृत, दुग्ध, आटा, शाग, दाल, भोजन, वस्त्र, बर्तन, शस्त्र-आदि के लिये कितने लाख मनुष्य काम करते होंगे उनका अनुमान सैनिक प्रबन्धों के जानने वाले ही ठीक कर सकते हैं ।

ऊपर जो संख्या दी गई है वह कम से कम है । क्योंकि कई रथों में चार घोड़े भी होते थे जैसे अर्जुन के रथ में चार घोड़े थे । और कई रथों पर दोनों ओर की दो योद्धा भी युद्ध करते थे । पर यहाँ एक रथ में दो घोड़े और एक योद्धा ही को गिना गया है ।

महाभारत युद्ध के समय भारत की लम्बाई चौड़ाई अब से बहुत अधिक, पर जनसंख्या अब की जनसंख्या आधी से बहुत कम कुल १८ करोड़ के लगभग बताई जाती है । पर सेना, (भारत की वर्त्तमान सेना जो ८ लाख बताई जाती है) से साढ़े पांच गुणा से अधिक थी इस समय भारत की जनसंख्या ४७ करोड़ से भी अधिक होगी क्योंकि सन् १९६१ की जनगणना के समय ४५ करोड़ बताई गई थी । भारत में ५० लाख मनुष्यों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती है । इस अनुपात से सेना अब १ करोड़ से अधिक ही होनी चाहिए ।

यदि भारत की ४७ करोड़ से अधिक की जनसंख्या में से १ करोड़ युवक भारत की रक्षा के लिये शस्त्रार्थं लेकर खड़े हो जायें तो कोई भी शत्रु भारत की ओर अंगुली भी नहीं उठा सकता है । एक करोड़ सैनिक युद्ध में उतर आयें तो युद्ध में दो चार लाख से अधिक नहीं मरेंगे । और यदि एक करोड़ सैनिक हमारे मर भी जायेंगे तो निश्चय ही दश करोड़ शत्रुओं को मार कर मरेंगे । भारतीय वीर संसार में अनुपम वीर हैं । ऐसे वीर संसार की किसी भी जाति और संसार की किसी भी देश में नहीं हैं । भारत सरकार को चाहिये कि वह करोड़ों बार युवकों को सर्व प्रकार की सैनिक शिक्षा दे जिस से भारत राष्ट्र सर्वथा सर्वदा सुरक्षित रह सके ।
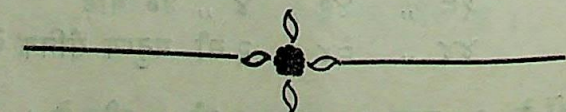
❊ ओ३म् ❊

—: जगदीश्वराय नमः :—

अथ ज्योतिष सुधा प्रारभ्यतेः—

ज्योतिष क्या है ?

ज्योतिर्विद् पं० इन्द्रदेव जी विद्याभूषण

प्रस्तुत लेख के लेखक "विद्याभूषण" जी वास्तविक गणित, ज्योतिष के ज्ञाता है। उन्होंने इस विद्या को पढ़ने के लिये जयपुर में एक गुरु के शरण में गये। वहाँ अनेकों कष्ट उठाकर उन्होंने इसे प्राप्त किया। जयपुर जो राजस्थान की राजधानी है वहाँ नक्षत्र विद्या (ज्योतिष शास्त्र) सम्बन्धी अतीव महत्व पूर्ण यन्त्र,ग्रन्थ आदि उपस्थित हैं। जहाँ पर नक्षत्र आदि को दिन में देखने, एवं वायु का प्रभाव आदि जानने के लिये प्राचीन राजा-महाराओं ने "हवा महल" नामक एक विशाल प्रासाद गढ़ा है। जो भारत नहीं अपितु संसार में प्रसिद्ध है, उसी जयपुरीय महाराजा मानसिंह ने दिल्ली में भी एक नक्षत्र विद्या विषयक यन्त्र बनवाया है जो जन्तर मन्तर के नाम से प्रसिद्ध है। इसको प्राय लोगों ने देखा ही होगा, परन्तु दुःख का विषय है हम दीर्घ सैकड़ों वर्षों से परतन्त्र रहने के कारण इन विद्याओं को भूल गये हैं, जिससे इसका (ज्योतिष एवं नक्षत्र सम्बधि जानकारी का) हमारे समक्ष कोई मूल्य नहीं है। इस कारण इसके यन्त्र आदि नष्ट होते जा रहे हैं। प्रस्तुत लेख में लेखक ने उस प्राचीन विद्या का सुन्दर ढंग से निरूपण किया है, और लेखक जी के इस लेख को हमारी पत्रिका के माध्यम से पाठकों तक पहूँचाने का हम पूर्ण प्रयास कर रहे हैं, एवं आशा करते हैं कि पाठक ध्यान तथा धैर्यता पूर्वक इस से कुछ प्राप्त करने की इच्छा से इस लेख को अध्ययन करेंगे। और हमें उचित सुझाव देंगे।

❁ सम्पादक

ज्योतिष सृष्टि से लेकर प्रलयान्त काल की गणना' सौर चन्द्रादि मानों का प्रतिपादन, ग्रह गतियों का निरुपण व्यक्त-अव्यक्त गणित का प्रयोजन, विविध प्रश्नोत्तर विधि-भूमि-ग्रह नक्षत्रों की स्थिति और नाना प्रकार यन्त्रों के सविस्तार वर्णन को ज्योतिष कहते हैं।

वेद, यज्ञ कर्म के प्रवर्त्तक है, और काल के अधीन सम्पूर्ण यज्ञ कर्म कथित है, जैसा कि लागध ऋषि प्रणीत याजुष ज्योतिष शास्त्र में कहा हैं :-

वेदा हि यज्ञार्थमभि प्रवृत्ताः कालानु पूर्वा विहित श्च यज्ञाः । तस्यादिदं काल विधान शास्त्रं ज्योतिषं वेद सवेद यज्ञम् ।।

(लागध ऋषि प्रणीत याजुष ज्योतिष शास्त्र)

सब जानते हैं कि वेद सब विद्याओं का आदि स्रोत है, इसी नाते यज्ञ कर्म में प्रवृति कराने वाला मूल वेद ही है। यज्ञ कर्म काल के अधीन है "अर्थात यज्ञ करने के लिये सर्व प्रथम काल ज्ञान होना आवश्यक है। अतः प्राचीन आर्यों को यज्ञों का ठीक समय जानने के लिये ज्यतिष शास्त्र के सूक्ष्म अवलोकनों की अवश्यता हुई, क्यों कि यह बात सबको माननीय है कि यज्ञ चाहे छोटे हो अथवा बड़े संधियों में होते हैं। इस कारण संधियों का जानना ज्योतिष शास्त्र द्वारा ही हो सकता है। यह साधारण बात है, की आप दिन और रात्रि की संधियों में ही यज्ञ करते है, इस लिये आप को उन दोनों सन्धियों को जानना अति आवश्यक है। आप दिन, रात्रि, पक्ष, मास की संधियों को सूर्य अस्त व सूर्य उदय तथा चन्द्रमा के स्थूल अवलोकन से अमावस्या एवं पूर्णिमा का ज्ञान प्राप्त कर सकते है, किन्तु ऋतु, अयन संवत्सर की संधियों का ज्ञान बिना ज्योतिष शास्त्रों के नहीं हो सकता। इसलिये इस काल विधान शास्त्र को अर्थात् ज्योतिष शास्त्र को जो जनता है वही वेद कथित यज्ञ कर्म का पालन भली भांति कर सकता है, अस्तु वेद के अंग ज्योतिष शास्त्र को अवश्य जानने चाहिये

क्योंकि इस शास्त्र से काल का ज्ञान होता है और वेदाङ्गों में इसे प्रधान अंग कहा है, यथा :—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा तद्वद्वेदाङ्ग शास्त्राणांज्योतिषं मूर्धनिस्थितम्"

अर्थात् जिस प्रकार मयूरों के सिर पर शिखा होती है और सर्पों के सिर पर मणि होती है, उसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र सब वेदाङ्गों में (शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द-ज्योतिष) प्रधान माना जाता है ।

इसी प्रकार भास्कराचार्य अपने "सिद्धान्त शिरोमणि" ग्रन्थों में लिखते हैं :—

शब्दशास्त्रं मुखं चक्षुषी, श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पकरौ ।
यातु शिक्षाया: वेदस्य सा नासिका पादपद्म द्वयं छन्द आद्यैर्नुधै: ।।

अर्थ:— वेद का मुख शब्द शास्त्र है, अर्थात् व्याकरण को मुख बतलाया है, जिस प्रकार मुख के विना हम अपने शरीर को पुष्ट नहीं कर सकते, बोल नहीं सकते, अर्थात् अपने विचार दूसरों के सामने प्रकट नहीं कर सकते, उसी प्रकार व्याकरण के बिना शब्द के स्वरूप को आप सम्मुख नहीं रख सकते हैं। इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र को चक्षु कहा है। जिस प्रकार बिना चक्षु के कोई भी जीव किसी भी कार्य को नहीं कर सकता है। यह ज्योतिष शास्त्र वेद का नेत्र रूप है । इसी कारण इस शास्त्र की सब वेदाङ्गों में श्रेष्ठता का वर्णन किया है अर्थात् प्रधान अंग माना है। आप जानते हैं कि कान नाकादि अवयवों से युक्त भी मनुष्य बिना नेत्र के किसी कार्य में योग्य नहीं रहता, इसी प्रकार निरुक्त को श्रोत्र, कल्प को कर (हाथ) शिक्षा को नसिका, छन्द शास्त्र को पैर कहा है। वैसे तो मनुष्य एक भी अंग के न होने से पूर्ण कार्य कर नहीं सकता, किन्तु जिस प्रकार मनुष्य के मुख्य अंग न होने से हानि होती है। उसी प्रकार वेद का मुख्य अंग ज्योतिष न जानने से

वेद वाच्चिक अर्थ का मनुष्य नहीं लगा सकता, इसलिये ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करना भी आवश्यक है । और भी वशिष्ठ संहिता में कहा है :—

वेदस्य चक्षुः किल शास्त्र मेतत्, प्रधानताङ्गेषु ततोऽस्य जाता ।
अंगैर्यतोऽन्यै परिपूर्ण मूर्त्ति श्चक्षु विहीन पुरुषो न किञ्चित् ॥

सब वेदाङ्गों में ज्योतिष शास्त्र को प्रधान अंग कहा है । जिस प्रकार सब अंगों से सुशोभित परिपूर्ण शरीर सुन्दर प्रतीत होता है, उसी प्रकार चक्षु के बिना मनुष्य का शरीर सुन्दर प्रतीत नहीं होता, अर्थात् चक्षु से रहित मनुष्य के अनेक कार्यों में बाधा आने लगती है । इन प्रमाणों से हमें ज्ञान हुआ कि प्रधान अंग ज्योतिष को भी जानना अति आवश्यक है, क्यों कि परम पिता ओ३म् की सत्ता का ज्ञान हम उसकी रचित सृष्टि से ही कर सकते हैं । जब हम इस अलौकिक दृश्यमान पदार्थों की ओर दृष्टि डालते हैं तब उस कारीगर की कारीगरी का ज्ञान होता है, जिसने यह लोक लोकान्तर रच हैं और नियमित रूप से उसे चला रहा है । इन सब ओ३म रचित लोक लोकान्तरों को ज्योतिर्मय आँख ही समझ सकती है । इस ज्योतिष शास्त्र से अनभिज्ञ होकर वेदों की गंभीर सतह में विखरे हुये रत्नों का पाना नित्यान्त कठिन है । अबतक आपके सामने ज्योतिष शास्त्र की श्रेष्ठता का वर्णन किया, किन्तु अब ज्योतिष शास्त्र की भीतरी बातों पर अपनी बुद्धि अनुसार लिखूँगा ।

कैसा आनन्द का विषय है उस परम पिता ओ३म की सत्ता का वर्णन योगी तथा ज्योतिष लोग ही कर सकते हैं, वे लोग रात भर जाग कर उस परम पिता ओ३म के गुणों का गान करते हैं । आप एक छोटे से उदाहरण से ही समझ जायेंगे ।

जब हम रात्रि को आकाश की ओर आँखें उठाकर देखते हैं तब हमें आकाश में बिखरे हुये सोने के टुकुड़े दिखाई पड़ते हैं । यह छोटे छोटे टुकड़े बहुत चमकिले तथा मनको लुभाने वाले होते हैं । ऐसा कोन अभागाहोगा जिसको उन चमकिले पदार्थों को जानने की इच्छा न होगी ।

—: ओ३म् :—

श्रीकृष्ण 'भगवान्' क्यों ?

एक नव युवक आर्य की जिज्ञासा का समाधान

जिज्ञासाः—

श्री पिण्डी दास ज्ञानी जी ! सादर नमस्ते ।

श्रीमान् जी ! आपके कर-कमलों द्वारा लिखित एवं प्रकाशित पुस्तक 'नीति-निपुण नन्द-नन्दन' से सम्बन्धित आपका मुद्रित पत्र प्राप्त हुआ । आप आर्य समाज़ के एक कर्मठ कार्यकर्त्ता एवं नेता भी हैं, इसकी मुझे प्रसन्नता है । मैं आपका ध्यान आपकी प्रेषित लघु पुस्तिका यानि पैम्फ़लैट की ओर दिलाना चाहता हूं । आपने जहाँ कहीं श्रीकृष्ण जी का नाम लिखा है, वहाँ उससे पहिले 'भगवान्' शब्द का प्रयोग किया है, जो सर्वथा आर्य-सिद्धान्तों के विरुद्ध है । क्या योगीराज श्रीकृष्ण को आप 'भगवान्' मानते हैं ? आर्यसमाज का दूसरा नियम हमें स्पष्ट भगवान् का रूप बतलाता है ।

अत: मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि यदि आपने इस ग्रन्थ में भी ऐसा ही किया हुआ है, तो इस भूल को सुधारने का कष्ट करें, या फ़िर मेरी शङ्का का निवारण करें ।

हो सकता है आपका दृष्टिकोण यह हो कि इस पुस्तक की अधिक बिक्री हो, जिसको सनातनी लोग भी अपनाएं । क्या यह उचीत है ? यदि आपने मुझे कोई सन्तोष ज़नक उत्तर न दिया तो मजबूर होकर यह लेख किसी आर्य प्रत्रिका में प्रकाशित करवाना होगा । शुभ कामनाओं के सहित

आपका
उपमन्त्री आर्यसमाज

समाधान—

श्रीयुत उपमन्त्री जी ! नमस्ते ।

आपका पत्र अमृतसर से होता हुआ मुझे यहाँ बम्बई में प्राप्त हुआ । एतदर्थ धन्यवाद । यदि मैं अमृतसर होता तो पुस्तक की पाण्डुलिपि तथा अपने छोटे- से पुस्तकालय की सहायता से शीघ्र और अधिक उपयुक्त उत्तर प्रेषित करता, परन्तु अभी मुझे मई मास भी प्राय: बाहर ही रहना है अत: अपने स्वभाव को दृष्टिगोचर रखते हुये कि यथासाध्य प्राप्त पत्रों का यथा शक्य उत्तर देना चाहिये, ये पंक्तियां लिख रहा हूँ, ध्यान पूर्वक पढ़ें ।

मुझे आपका पत्र पढ़कर प्रसन्नता हुई कि आप एक आर्यसमाज के उपमन्त्री और भावी मन्त्री अथवा प्रधान आर्य सिद्धान्तों से प्यार करने वाले युवक हैं । युवकों में जोश, उत्साह, सिद्धान्त-निष्ठा और सत्या सत्यान्वेषणकी उत्कट जिज्ञासा आदि उत्तम गुणों की विद्यमानता वस्तुत: श्लाघनीय एवं अनुकरणीय है ।

प्रियवर ! आपको श्रीकृष्ण को 'भगवान्' कहने पर आपत्ति है । आप इसे आर्य सिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध मानते हैं । आपकी अभिलाषा है कि यदि मैंने इस ग्रन्थों में भी ऐसा ही किया हुआ है तो इस भूल को सुधार लूँ या फ़िर आपकी शङ्का का निवारण करूं अन्यथा आपको मजबूर होकर यह लेख किसी आर्य पत्रिका में प्रकाशित करवाना होगा । आपकी यह भी धारणा है कि इस दृष्टिकोण से पुस्तक की अधिक बिक्री हो जिस से सनातनी लोग भी मंगवायें, मैंने श्रीकृष्ण को 'भगवान' लिख दिया है । जो आर्य समाज के दूसरे नियम में प्रतिकूल है ।

श्रीमान जी ! किसी भी और कैसे भी पत्र का यथोचित उत्तर देना मेरे दीर्घ जीवन का स्वभाव बना हुआ है । केवल इसी विचार से ये पंक्तियां लिख रहा हूँ । इससे आपका समाधान होगा या नहीं, यह मेरा दावा कदापि नहीं, क्यों कि जिस योगीराज 'भगवान्' दयानन्द का अनुयायी होने में प्रयत्नशील होने का

मुझे सौभाग्य प्राप्त है, उन्होंने भी नास्तिक मुन्शीराम के प्रश्नों का समाधान करते हुये कहा था, "मैंने अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया है; परमात्मा के अस्तित्व में तुम्हारा विश्वास तब होगा, जब तुम पर उसकी कृपा होगी"। हाँ, जहाँ तक पत्र पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित कराने की बात है, इस पर कोई पाबन्ध नहीं लगाया जा सकता। सब इस विषय में स्वतन्त्र हैं। मेरा निवेदन है—

१ "नीति-निपुण नन्द-नन्दन" नामी पुस्तक से सम्बद्ध पैम्फ़लेट-के छः पृष्ठों में केवल नौ बार ही 'भगवान कृष्ण' लिख पाया हूँ। अधिक बार लिख पाता तो मुझे और भी प्रसन्नता तथा गर्व का अनुभव होता।

२ प्यारे उपमन्त्री महोदय ! यह केवल समझ का फेर है अन्यथा जैसे विद्यावाला विद्यावान् या विद्वान्, धनवाला धनवान्, बलवाला बलवान्, नीतिवाला नीतिवान्, तेजवाला तेजवान् कहलाता है; उसी प्रकार भगवाले को भगवान् कहते हैं। भग शब्द भी अन्य शब्दों की भान्ति अनेकार्थबाची है यथा—भजनीय, सेवनीय, पूजनीय, ऐश्वर्यवाला: ऐश्वर्य प्रदाता आदि परमेश्वर परक हैं।

॥ शङ्का समाधान ॥

३ अथर्व वेद के चोदहवें काण्ड में आये पहले दो सूक्तों को 'सूर्यासूक्त कहा जाता है। इनमें से प्रथम में ६४ और द्वितीय में ७५ मन्त्र हैं। 'सूर्या' आदित्य ब्रह्मचारिणी, पाणिग्रहण, योग्य युवती को कहते हैं। इन मन्त्रों में दर्जनों बार 'भग' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसके छः अर्थ होते हैं- १. ऐश्वर्य, २. धर्म, ३. यज्ञ, ४. श्री, ५. ज्ञान, और ६. वैराग्य।

विवाह संस्कार के मन्त्रों में भी अनेक बार 'भग' शब्द व्यवहृत हुआ है। वहाँ भी ये छः अर्थ लिये जाते हैं। 'सूर्य' सूक्त में विशेषत: द्रष्टव्य है— १४-१-१८; १४-१-२०; १४-१-३१; १४-१-५१; १४-२-१३; १४-२-१५; १४-२-२१; १४-२-२२; १४-२-३० आदि।

ये छ हो गुण जिस भाग्यवान व्यक्ति में विद्यमान् हों, उसे 'भगवान्' कहते हैं। आपने पूछा है कि क्या मैं योगीराज कृष्ण को 'भगवान्' मानता हूँ? मेरा आग्रह पूर्वक निवेदन है कि मैं श्रीकृष्ण को योगीराज मानता हूँ और इस लिये ही उन्हें भगवान् कृष्ण मानता हूँ। मेरी धारणा है कि एक योगीराज में ही उक्त छः विभूतियाँ स्थित हो सकती हैं। इसलिये योगीराज ही भगवान् कहलाने का अधिकारी होते हैं।

४ एक अन्य स्थान पर कहा है—

उत्पतिञ्च विनाशञ्च अगतिंच गतिं तथा।
वेत्ति विद्याञ्चाविद्याञ्च भगवान् स उदीयेते ॥

अर्थात् सृष्टि की विद्या— यह कैसे बनी और इसका लय कैसे होगा- सुचाल और कुचाल, सांसारिक विद्या एवं अविद्या का जिसे विवेक हो, उसे भगवान् कहते हैं। क्या भगवान् श्रीकृष्ण में ये गुण नहीं थे ?

५ यजुर्वेद के चौतिसवें अध्याय के मन्त्र संख्या ३४, ३५, ३६, ३७ और ३८ में (जिन्हें प्रतिदिन प्रात: काल पढ़ने का भगवान् दयानन्द ने आदेश दे रखवा है,) चौदह बार 'भग' शब्द का प्रयोग हुआ है। उनमें से ३६ वें और ३८ वें मन्त्रों में हम प्रार्थना करते हैं– 'वयंभगवन्त: स्याम' हम सब भगवान बनें। एक वचन में 'भगवान' द्विवचन में 'भगवन्तौ' और बहुबचन में 'भगवन्त:' का प्रयोग करते हैं। प्रत्येक की अभिलाषा होती है कि प्रभुकी कृपा से हम में से हरएक 'भगवान्' बनें परन्तु जब तक उक्त गुणों को धारण न कर ले, 'भगवान्' नहीं बन सकते।

६ शेष रहा सनातनीयों में पुस्तक अधिक बिकने की बात। मुझे खेद है कि या तो आपने उस फोल्डर को आद्योपांत पढ़ने का कष्ट नहीं किया और प्रथम पृष्ठ पर ही 'भगवान्' श्रीकृष्ण के शब्द पढ़कर आप मानसिक सन्तुलन खो बैठे और लाञ्छन लगाने पर उतर आये; या यदि पढ़ा है तो उसको भलि भांति समझने का कष्ट नहीं कर पायें। वस्तुस्थिति यह है कि

१५२ पंक्तियों के इस विज्ञापन में ७५ पंक्तियों को छोड़ कर शेष ७७ पंक्तियां ऐसी है, जिन्हें पढ़ कर आपके तथा कथित सनातनी लोग पुस्तक को अधिक खरिदेंगे, या लेखक को ग़ाली प्रदान करते हुये पुस्तक को देखने का भी 'पाप' नहीं करेंगे। मेरा सुझाव है कि एक बार पुन: स्वयं इसे पढें, अन्य किसी सज्जन के सामने पढ़ा कर सुनें, फ़िर भी आपकी यही सम्मति होगी कि सनातनी लोगों में पुस्तक की अधिक बिक्री कराने की भावना से ही मैंने श्रीकृष्ण को 'भवगान्' लिखा है, तो मुझेसूचित कीजिये, मैं पुनरपि इस महती कृपा के लिये आपका धन्यवाद करूँगा। परमपिता परमात्मा आपके सिद्धान्त प्रेम में उत्तरोत्तर वृद्धि करें और आपको अधिक विवेक सम्पन्न बनाये, यही मेरी प्रार्थना है। इस सन्दर्भ में यदि और कुछ प्रष्टव्य होगा तो अपनी सीमित शक्ति अल्प विद्या और छिछले ज्ञान के अनुरूप निवेदन करने में मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी। शुभम्

शुभ चिन्तक पिण्डीदास ज्ञानी

—: ओ३म् :—

पाठकों से

प्रिय पाठक वृन्द !

आपकी हिन्दी मासिक पत्रिका "वनवासी-संदेश" अब आठ वर्ष वीता कर नौंवे वर्ष में प्रवेश कर चुकी है। "सन्देश" स्व जन्मकाल से अबतक कितने ही घात, प्रति घात और तूफानों से टकराते हुये, और कीसि का भी परवाह न करते हुये जनता की सेवा कर रही है।

हाँ यदि इस के प्रति आप हमदर्दी रखते हैं तो उसका उचित मुल्य केवल ५)०० भेजना न भूलें आप पत्रिका को देखते हुये न सही वनवासी सांस्कृतिक समिति के प्रति सहायतार्थ ही सही पूर्ण उदारता के साथ ५)०० बर्षिक शुल्क अवश्य एवं शीघ्र भेजेंगे यही आशा करते हैं।

व्यवस्थापक

मारिशस द्वीप को पूज्य स्वामी गंगेश्वरानंद जी द्वारा वेदोपहार

साक्षी

पिछले दिनों मारिशस द्वीप को जिस विभूति का स्वागत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ वह मारिशस की भूमि को पवित्र करने वाली ज्येष्ठतम, भव्यतम तथा पवित्रतम विभूति थी। इस विभूति के दर्शनों का सोभाग्य मारिशस-वासियों को पिछले दिनों तब हुआ, जब वेददर्शनाचार्य सद्गुरु स्वामी गंगेश्वरानन्द जी प्रज्ञाचक्षु भारत से मारिशस के हवाई अड्डे पर पधारे। संभवत: यह पहला अवसर था, जब इस द्वीप के लोगों ने अपार हर्ष के साथ भारत से आये एक ऐसे महान् पुरुष का स्वागत किया, जो एक ग्रन्थ के रूप में संकलित और प्रकाशित चारों पवित्र वेदों को मारिशस द्वीप को भेंट करने आया था।

हवाई अड्डे पर स्वामी गंगेश्वरानन्द जी का स्वागत भारी संख्या में उपस्थित भक्तों तथा मारिशस के नागरिकों ने किया। उपस्थित गण्यमान्य व्यक्तियों में उल्लेखनीय थे– माननीय और श्रीमती डी० बसन्त राय माननीय आर० मोहन, स्वामी भगवान् दास तथा अन्य। मारिशस की आठ संस्थाओं की ओर से स्वामीजी को अनेकानेक मालाएं पहनायीं या अर्पण की गयीं। हवाई अड्डे से स्वामी जी को फ़्लोरियल के श्री के० कलाचन्द जी के निवास गृह पर ले जाय। गया वहाँ वे इस चित्ताकर्षक उद्यान द्वीप जिसे मैं "भारतीय महासागर में पड़ा चीनी का एक बतासा" कहना पसन्द करूंगा, मैं अपनी यात्रा के पांचों दिन रहे।

१३ अप्रेल को स्वामी जी और उनके दल के सदस्यों का जिनमें उनके दो परम-भक्त स्वामी गोविन्दानन्द तथा वेदभक्त श्रीमती रत्नाबेन पोजदार भी सम्मिलित थे, आठ संस्थाओं द्वारा नियुक्त स्वागत समिति तथा उनके सदस्यों और प्रतिनिधियों की ओर से भव्य सावागत किया गया। स्वागत-समारोह के बाद, इन संस्थाओं ने स्वामीजी के करकमलों से भगवान् वेद का उपहार स्वीकार किया। साढ़े तीन बजे, हिन्दु सभा भवन में माननीय सर शिवसागर रामगुलाम, प्रधान मन्त्री, श्री मदन मोहन छुराना, मारिशस स्थित भारत के उच्चायुक्त, मारिशस मन्त्रीमण्डल के सदस्यों, तथा सब संस्थाओं के अध्यक्ष और सचिवों ने स्वामी जी का हार्दिक और आदर पुर्ण स्वागत किया। अपनी संक्षिप्त वार्ताओं में माननीय प्रधान मंत्री तथा भारतीय उच्चायुक्त ने भक्तिमय शब्दों में स्वामी जी का अभिवादन किया, तथा भारत से मानव इतिहास के प्राचीनतम पवित्र ग्रन्थ वेदों को जिनका उत्तराधिकार केवल हिम्नुओं का ही नहीं, जिन्होंने उन्हें सदियों तक अक्षुण रखा, वरन् समस्त मानव–जाति का है, मारिशस लाने वाले इस महान् पुरुष के प्रति अपना आभार व्यक्त किया। प्रधानमन्त्री ने भावविह्वल शब्दों में पुज्य स्वामीजी की आनन्द मय उपस्थिति तथा मारिशस द्वीप के निवासियों के लिये लाए गए पवित्र वेदों के उपहार के सम्बन्ध में अपने भावभीने उद्गार व्यक्त किये। इस द्वीप के इतिहास में इतना अधिक आनन्दमय जयजयकार पूर्ण तथा भव्य स्वागत–समारोह, जिसमें द्वीप के रङ्गिन समुदायों के सब गण्यमान्य व्यक्तियों ने भागलिया, पहले कभी आयोजित नहीं हुआ था। प्रधानमन्त्री, भारतीय उच्चा–युक्त, माननीय डी० बसन्त राय, अध्यक्ष आर्य रवि वेद सभा, सनातन धर्म ब्राह्मण महासभा, कबीर धर्म महासभा तथा अन्य महानुभावों ने वेदों, वेददर्शनाचार्य तथा उनके मिशन की प्रशंसा में भाषण किये। उन्होंने पूज्य स्वामीजी को आश्वस्त किया कि उन्हें पवित्र वेदो की जो प्रति भेंट में दी जा रही है, उससे उन्हें वेदों के संदेश को समझने तथा अपने जीवन में उन्हें उतारने में बड़ी मदद मिलेगी।

स्व० बद्रिप्रसादजी भोरुका

जिनके पुण्यस्मृति में उड़ीसा के पिछड़ा हुआ आदिवासी क्षेत्र फुलवाणी जिला में हेल्थ सेन्टर खोला गया है जिसमें नित्यप्रति शताधिक रोगियों को निःशुल्क चिकित्सा की जाती है।
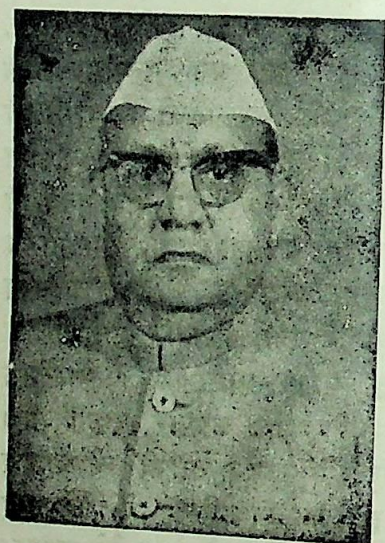
आर्य जगत् के यशस्वी दानदाता, निष्ठावान् ऋषि भक्त आदर्श गृहस्थ, कर्मवीर स्व० श्रीयुद बद्री प्रसाद जी भोरुका (मालिक ट्रान्सपोर्ट कर्पोरेसन आफ इण्डिया) के स्मृति में भोरुका चेरिटेबल ट्रस्ट, ट्रान्स्पोर्ट हाउस, बम्बई -६ की और से उड़ीसा के जंगलों से परिपूर्ण फुलवाणी जिला के चांचेड़ी में बद्री प्रसाद भोरुका हेल्थ सेन्टर (एलोपेथिक पद्धति में) खोला गया है, जिसका उद्घाटन स्व० भोरुका जी के कनिष्ठ भ्राता "ट्रान्सपार्ट कर्पोरेशन आफ़ इंड़िया" के मालिक दानवीर श्रीयुत् प्रभुदयाल जी अग्रवाल के द्वारा दिनांक १६-७-१९७४ को हुआ। हेल्थ सेन्टर दिन प्रति-दिन उन्नति के पथपर अग्रसर है। नित्यप्रति सैकड़ों रोगियों को निःशुल्क औषध देकर चिकित्सा की जाती है। उड़ीसा सरकार की और से ड़ाक्टर, कम्पाउण्डर और हस्पताल स्टाफ़ दिया गया है। स्टाफ़ क्वाटर निर्माण समाप्त हो गया है। ६ खाट विशिष्ट एक रोगी निवास निर्माण होने जा रहा है। यह अनुष्ठान चिर-स्थायी हो जनता की सेवा सुश्रुषा करता है। इस अनुष्ठान के लिये सारा व्यय भोरुका ट्रस्ट कर रहा है। इसके लिये वनवासी परि-वारों की और से हार्दिक धन्यवाद है।

उत्कल में आदर्श नारी शिक्षा केन्द्र:

आर्य कन्या गुरुकुल तनरड़ा

ले० श्रीमती अहल्या पति

भारत के इतिहासों की पृष्ठों को यदि हम खोलकर देखेंगे, तो उसमें हम देखने को पायेंगे कि अतीत काल से ही इतिहास में नारी जाति की भूमिका महत्व पूर्ण रही है। आज नारी महान् से महान् होती हुई, दुर्गा, सरस्वती के रूप में हमारे सम्मुख पूजा पाती है ।
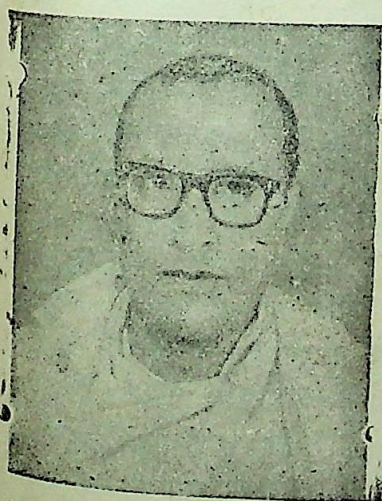
आज अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन के अवसर पर अनेकों प्रस्ताव पास करके नारियों को अग्राधिकार दिलाने का प्रयत्न चल रहा है, एवं संविधान में नारी अधिकार को बढ़ाने के लिये संशोधन भी हुये है ।

(संस्थापक- पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज)

परन्तु हम पुन: पिछे को मुड़कर यदि देखें तो प्राचीन काल में नारी को पुरुषों से अधिक सम्मान प्राप्त हुये मिलेंगे यथा — महापुरुषों के नामों को स्मरण करने से प्रथम उन महादेवियों का नाम उच्चारण करना पड़ता है। यथा- सीता + राम, गौरी + शंकर इत्यादि। इसके अलावा, गार्गी, मैत्रेयी, सीता, भारती, पद्मिनी, अनुसूया, सावित्री दुर्गादेवी, लक्ष्मीबाई, कर्णावती आदि विदुषी, सती वीरांगना हैं

ज़िनके नाम अधरों पर आते ही श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। आज भी इनके स्वर्णमय इतिहास से मानव समाज़ को गर्व है। अंग्रेज साम्राज्य को उखाड़ने महारानी लक्ष्मीबाई ने जिस अपूर्व परम्परा आरम्भ किया था, उसपर कितने ही वीरांगना, क्रान्ति कारिणी जैसे वीना, शीला बहन, दूर्गादेवो आदिने उस क्रान्ति रूपी मशाल को स्व ज़ीवन रूपी तेल से सिञ्चकर प्रज़्वलित रखा।

नारी-निर्माण कर्त्री—"माता"

नारी को ही शास्त्र में माता कहा है "माता निर्माता भवति" अर्थात् माता निर्माण करने वाली है। उसे वेद में पुरन्धी: :–राष्ट्र को धारण करने वाली, राष्ट्र का आधार माना है और घृतवती:- तेजवाली माना है।

इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि नारी माता रूप से राष्ट्र को धारण करने वाली है। हम देखते हैं कि माता कौशल्या के कोख से युगपुरुष राम, जीजा बाई के कोख से छत्रपति शिवाजी, एवं इसी प्रकार महाराणा प्रताप, सुभाष बोष इत्यादि सुपुत्रों नें मा के ही गर्भ से संस्कारित होकर ही पृथीवी पर जन्म लिया तथा राष्ट्रपर आयी विपत्तियों से जम कर टक्कर ली और कुसंस्कार, दासता, आसूरी प्रबृत्तियों को राष्ट्र से निकालने केलिये प्रयत्न किया। महात्मा गांधी जी को महानता की ओर लाने में कस्तूरबा का हाथ था यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी।

किन्तु पहले एक समय था, जब नारी की सार्थकता सन्तानोत्पति में लोग मानते थे। इसके कुछ कारण भी थे। समाज, राष्ट्र की सुरक्षा, प्रकृति पर विजय प्राप्त करने, लड़ाई में लड़ने केलिये मनुष्य को जनशक्ति की आवश्यकता थी। महाभारत के बाद प्राय: नारी एक विलासीता की उपकरण समझ जाने लगी। उसका केवल काम सेवा यथा गृह सेवा, पति सेवा, सन्तान सेवा इत्यादि रह गयी।

परन्तु मध्य युग में कुछ सन्तों ने नारियों के लिये इस प्रकार वातावरण बना दिया कि जिससे नारी का भविष्यत सदैव अन्धकारमय बन गया था ।

१८ वीं शताद्वी के भारत वर्ष में नारी जाति का सौभाग्य रूपी रवि उदय हुआ। इस शताब्दी में कुछ समाज सेवी, सन्तों का जन्म हुआ। जिससे भारत माँ की दासता, की बेड़ी टूटी, एवं कुरितियाँ, कुसंस्कार, सब दूर भगे ।

जिस समय नारी जाति पूर्ण रूप से अविद्या रूपी अन्धकार की गर्त में पड़ी कहार रही थी' उन महान् आत्माओं में से एक तपस्वी, ऋषि, जिसने अवलाओं के करुण क्रन्दन सुना, अवला प्रति हुये अत्याचारों को देखा ।

उस विश्व कल्याण कारी ऋषि ने, इस सब असह्य वेदना को देखकर, सर्वस्व त्यागी होकर, केवल एक कौपिनी धारण कर के कठोर तपस्या की । उसके पश्चात् अलौकिक प्रतिभा तेज से युक्त होकर इन कुरितियों से डटकर लड़ाई लड़ी ।

सर्व प्रथम ऋषि ने संसार को ज्ञान बताने का मूल स्रोत वेद की ओर देखा। वेद के अकाट्य प्रमाणों से विभिन्न बुराइयों से लोहा लिया । वो थे युग निर्माता, समाज सुधारक महर्षि दयानन्द।

दयानन्द ने शिक्षा के पद्धति को बदलने के लिये जी तोड़ प्रयत्न किया । इसलिये उन्होंने प्राचीन पद्धति के अनुसार राम कृष्ण के युग लाने के लिये गुरुकुलीय पद्धति का सूत्रपात किया । उसका संदेश था कि इस पद्धति से बालक वालिका, सुशिक्षित, सच्चे राष्ट्र भक्त, (राम, कृष्ण गार्गी, मैत्रेयी की तरह) बन सकेंगे । उन्होंने नारी शिक्षा के प्रति खूब ज़ोर दिया । अथर्व वेद के मंन्त्र "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" संदेश को दुनिया के समक्ष उपस्थित किया । अर्थात् ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याध्ययन करके लड़कियाँ गृहस्थी हों ।

ऋषि दयानन्द के इस संदेशानुसार उत्तर भारत के तपस्वियों ने जहाँ अनेकों गुरुकुल स्थापन किये हैं वहाँ उडीसा के त्यागी तपस्वी एवं ओजस्वी जननायक, धून के धनी पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती ने उत्कल में व्याप्त अविद्या अन्धकार के विरुद्ध उत्कल प्रान्त में गुरुकुलीय अभियान का श्री गणेश किया। सर्व प्रथम स्वामी जी ने बालकों का गुरुकुल प्रसिद्ध लौह नगरी राउरकेलाके समीप, पावन तीर्थस्थल, महर्षि वेदव्यास के जन्म स्थान वेदव्यास में स्थापित किया। वेदानुसार यह गुरुकुल "संगमे च नदीनां" अर्थात् नदियों के सङ्गम स्थल पर है।

इसके पश्चात् स्त्रियों के अधिकार अक्षुण्ण रखने, समाज में उनकी प्रतिष्ठा रश्मि को प्रज्वलित करने एवं उत्कल में आदर्श नारी निर्माण करने के लिये पूज्य स्वामी जी ने उड़ीसा के वयोवृद्ध, तपस्वी, समाज सेवक पूज्य श्रीवत्स पण्डा जी के स्थान तनरड़ा (जहाँ स्व० पण्डा जी ने एक गोरक्षा आश्रम खोला था) में एक कन्या गुरुकुल की स्थापना की। इस गुरुकुल का उम्र अभी अत्यल्प अर्थात् ५ वर्ष ही है। इन पांच वर्षों में यह कन्या गुरुकुल उन्नति के पथ पर तीव्र गति से बढ़ रहा है, जो प्रशंसनीय है।

प्रतिदिन प्रात: कालीन सूर्य रश्मि के आगमन समय में ब्रह्मचारिणियों के मधुर कण्ठ से पवित्र वेद मन्त्रों का गुञ्जन वहाँ के वातावरण को मधुरमय कर देता है। वहाँ प्रतिदिन योगासन, व्यायाम, प्राणायाम आदि योग क्रियायें भी सिखायी जाती हैं। इस पवित्र वातावरण, रहन-सहन एवं शिक्षा से प्रभावित तथा भौतिक आनन्दों से दु:खित धनाढ्य, अधिकारी वर्ग भी अपनी पुत्रियों को सहर्ष प्रवेश करा रहे हैं।

प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है कि इसी प्रकार वातावरण युक्त, अनुशासित संस्था में स्व सन्तानोंके तथा राष्ट्र के भविष्य निर्माण के लिये अपने पुत्र-पुत्रियों को प्रवेश करायें। जिससे वर्त्तमान भारत वर्ष में हो रहे विष युक्त वातावरण शीघ्र दूर हो जायेगा और (विश्वसे) उच्च स्वर में सुनेंगे :—

कहेगा जगत फिर एक स्वर से सारा
वही वृद्ध भारत गुरु है हमारा ॥
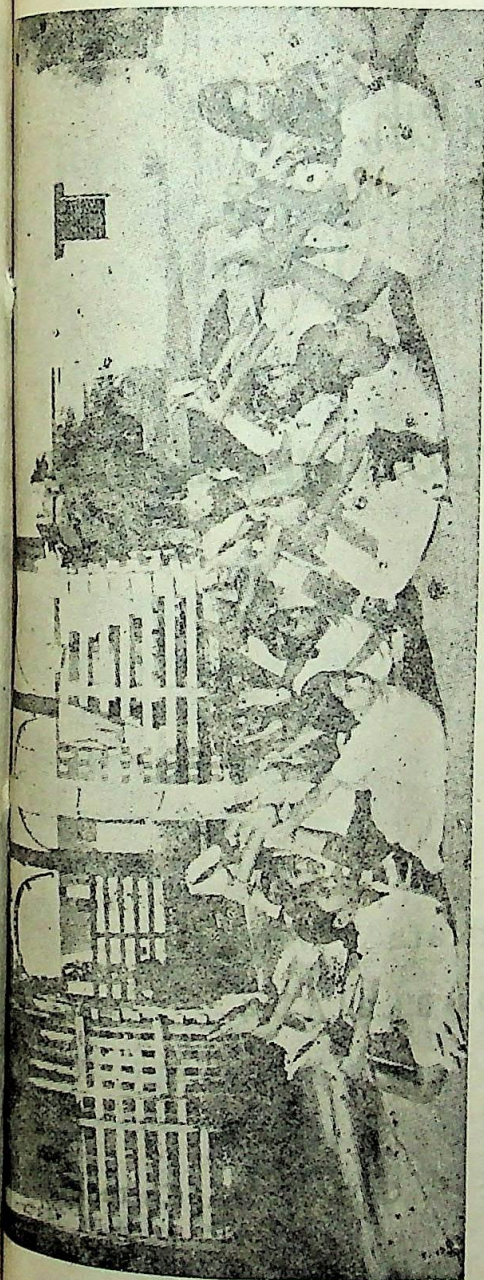
आसन रता ब्रह्मचारिणियों का समूह

सम्पादकीय

भारत वर्ष को दैवी प्रकोप का सामना प्रायः करना ही पड़ता है। भारत एक ग्राम प्रधान राष्ट्र है। इन दैवी प्रकोप से प्रायः ग्रामीण लोगों को ही विशेष हानीयाँ उठानी पड़ती है। जिस से भारतीय अर्थ व्यवस्था को भयङ्कर धक्का लगता है।

इसी प्रकार दैवी प्रकोप का ताण्डव नृत्य, इस वर्ष भारत के इतिहासों की पृष्ठों को रंगीन करदिया है। इस वर्ष आयी बाढ़ ने देश के विभिन्न प्रान्तों में अपूरणीय एवं आश्चर्य पूर्ण क्षती की है।

उड़ीसा, आसाम, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुज़रात, में आयी बाढ़ से जो क्षति हुई, उसका विवरण सुनने से सिहरन हो उठता है। पत्र पत्रिका एवं आकाश वाणि से सुने खबरों के अनुसार यह मालुम पड़ता है कि प्रकृति देवीने मानो इस वर्ष अपना तृतीय नेत्र खोल दिया, जिस से ग्रामीण लोग ही ज्यादा आक्रान्त हुये हैं।

इसी प्रकार उड़ीसा एक अभागा प्रदेश रहा है कि बाढ़ तो मानो उसक चिर परिचित साथी है। प्रतिवर्ष इस प्रदेश में बाढ़ से क्षती ही रहती है परन्तु इस वर्ष बाढ़ ने यहाँ के जन जीवन की रीढ़ की हड्डी मानो तोड़ ड़ाली है, यहाँ लोग सर्वहरा हो चुके हैं। दीर्घ ३।४ वर्षो से अकाल के सामना करते हुये उड़ीसा की जनता बेदम हो चुकी थी, परन्तु इस वर्ष दुर्भाग्य से उनके बचे खुचे साहास को मानो बाढ़ के पानी ने बहालिया है। इन सबका प्रत्यक्ष दर्शि लोग ही अनुभव कर सकते है। आजकल प्रवल बाढ़

क्यों आती है ? इस में कुछ संगठीत मत है कि, जब से देश में अरण्य नाश होने लगे घने ज़ंगलों से पेड़ कटकर ज़ंगल साफ़ होने लगे तब पानी पाहाड़ों से निर्विरोध भाव में मैदानि इलाकों में आ जाता है, ज़िससे नदियाँ, नाले, पूर्ण हो ज़ाती हैं। पाहाड़ों, पर्वतों पर घने जंगल के होने से पानी शीघ्र न आकर उसी पाहाड़ी क्षेत्र, ज़ंगलों में पेड़ों के रूकाबट के कारण मन्द गति में आता था। ज़िससे विशेष क्षती नहीं होती थी ।

अब इस प्रकार अपूरणीय क्षती को देखते हुये केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने विशेष आयोग की नियुक्ति की है। जंगलों में नवीन वृक्षा रोपण करके जंगलों को घना कर रही है। इत्यादि प्रयत्नों से बाढ़ नियन्त्रण के लिये सरकार प्रशंसनीय पदक्षेप ले रही है। यदि बाढ़ नियन्त्रणसंभव हो सका तो भारतीय अर्थ व्यवस्था दिनोदिन अग्रगति पर चलकर सबल होगा।

बलदेव वेदवागीश

* ओ३म् *

आर्य समाज रिलिफ् सोसायटी

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नईदिल्ली की ओर से आर्य समाज़ रिलिफ् सोसायटी, विहार, उड़ीसा, राज़स्थान, उत्तरप्रदेश, आसाम अदि प्रदेशों के बाढ़ पीड़ित इलाकों में विशाल पैमाने पर एवं अति लगन के साथ, अनाज, कपड़ा आदियों के द्वारा सहयता कर रही है ।

उडीसा में पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती के आह्वान पर सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रथम किश्त में १०,०००) (दश हजार) रूपयों की सहायता मिल चुकी है । एवं सम्बाद मिला है कि वस्त्र आदि अन्य सहायता सामग्री सार्वदेशिक भेज रहा है । तथा सभा की निर्देश से ज्ञात हो रहा है कि दीर्घदिन तक उड़ीसा में सहायता केन्द्र खोलकर राहत कार्य किया जायेगा ।

उडीसा के विशेष क्षति ग्रस्त क्षेत्र वालेश्वर जिला के चान्द वाली, भण्डारी पोखरी और कटक जिलाके आली थाने में वर्त्तमान कार्य प्रारम्भ हो गया है । रिलिफ् केन्द्र का उद्‌घाटन पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द ज़ी के तत्वावधान में २४–९–१९७५ को उड़ीसा विधान सभा के उपाध्यक्ष श्रीयुद चिन्तामणी जेना ने किया । वालेश्वर के ज़िलापाल महोदय कण्ट्रोल दर से अन्न, वस्त्रादि दे रहे है ।

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, देहली की ओर से श्रीयुत् स्वामी सर्वानन्द जी एवं वानप्रस्थी हरिहर जी आये हुये हैं । उक्त दोनों महानुभाव तथा गुरुकुल वेदव्यास (पानपोष) के स्वयं सेवक एवं स्थानीय व्यक्ति सब मिलकर तेजी के साथ राहत कार्य में जुटे हुये हैं ।

जिस इलाकों में सहायता कार्य हो ही नहीं रहा, वहाँ पर भी शीघ्र सहायता केन्द्र खुल रहा है ।

अतः अन्य सभी समाजों दानि महानुभावों से निवेदन है कि उड़ीसा में बाढ़ पीड़ितों को अधिक से अधिक बचाने के लिये शीघ्र सहायता राशी भेजें ।

उक्त सहायता राशी

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा

महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान — नईदिल्ली- १ के पते से भेज सकते हैं । अथवा जो व्यक्ति सीधा एवं शीघ्र सहायता राशी पहुँचाना चाहे तो निम्न पते पर भेजें ।

उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा

पो० वेदव्यास, राउरकेला-४ जि० सुन्दरगढ़ (उड़ीसा)
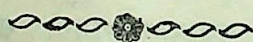
आदर्श दान

आर्य कन्या गुरुकुल तनरड़ा (गंजाम) को कलकत्ता ब्राह्मण समाज के भू० पू० प्रधान, समाज सेवी, धर्म और संस्कृति के उपासक, गरीबों के प्रति दयालु, पं० ब्रह्मानन्द जी कौशिक की स्वर्गीया धर्मपत्नी की स्मृति में उनके पौत्र आयुष्मान् श्री प्रेम प्रकाश जी कौशिक ने आर्य कन्या गुरुकुलस्थ श्रीवत्स गोरक्षाश्रम को एक गाय क्रय करने के लिये १०००) (एक हजार रूपये) पूज्य स्वा० ब्रह्मानन्द जी के पास प्रेषित किया है । तदर्थ दानी महानु भावों को शतश धन्यवाद है ।

※ ओ३म् ※

पं० धर्मदेव जी स्नातक का संन्यास ग्रहण

आर्य जगत् को यह जानकर हर्ष होगा कि गुरुकुल आमसेना जि० कालाहाण्डी उडीसा, के आचार्य, कर्मठ कार्यकर्त्ता नैष्ठिक ब्रह्मचारी पं० श्री धर्मदेव जी स्नातक ने दि० २७-८-१९७५ को उनके पूज्य गुरुदेव, हरयाणा के तपस्वी नेता पू० स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती (पूर्व आ० भगवानदेवजी) से श्रावणी के पुनीत अवसर पर गुरुकुल झज्जर में सन्यास ग्रहण किया, तथा स्वामी, धर्मानन्द सरस्वती के नाम से विभुषित हुये।

पण्डित जी ने पश्चिम उड़ीसा के पीछड़ा इलाका कालाहाण्डी जिला खरियार रोड में "उड़ीसा के तपस्वी सन्त पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती के प्रेरणा से गुरुकुल आमसेना का दायित्व संभाल लिये, यह गुरुकुल उनके त्याग तपस्या से दिनों दिन उन्नति कर रहा है। गुरुकुल आमसेना भी उडीसा में अपना विशेषत्व रखता है। अब संस्था उनके ही दायित्व में है।

इस शुभ अवसरपर पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी अपनी शुभ कामना व्यक्त करते हुये आशा करते है कि स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती उडीसा के उस पिछड़े इलाकों में वैदिक धर्म का प्रचार, साहित्यों का प्रकाश के साथ-साथ प्राचीन गुरुकुल शिक्षा का विस्तार करके लोगों को सद्मार्ग के पथिक बनायेंगे।

❀ सम्पादक

शोक–संवेदना

आर्य समाज जमशेदपुर (टाटानगर) के कर्मठ कार्य कर्त्ता समाज सेवी पं० श्री मङ्गत राम जी की धर्म पत्नी, श्रीमती भगवती देवी जी का वेद सप्ताह के अवसर पर, ७५ वर्ष की आयु में २४-८-१९७५ रविवार को सुबह ६ बजकर ५ मिनिट पर हृदय गति के रूकजाने से, जामशेद पुर हस्पिटल में स्वर्गवास हो गया, आर्य समाज जमशेदपुर और गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास की और से शोक सभा हुई, जिसमें दिवगंत आत्मा की सद्गती के लिये प्रभु से प्रार्थना की गयी। माताजी वैदिक धर्म के प्रति पूर्ण निष्ठा रखती थी। नित्य प्रति श्रद्धा, विश्वास के साथ, कठिनाइयों को परवाह न करके आर्यसमाज के सत्संग में सम्मिलित होती थी। माताजी, अतीव भक्ति परायणा, श्रद्धा सम्पन्ना, धर्म परायणा थी। स्व० माताजी का गुरुकुल वेदव्यास (पानपोष) के प्रति अटूट स्नेह था, जो इतने उमर के होने पर भी जल से में आया करती थी। माताजी अपने पिछे, २ पुत्र, २ पुत्री, ६ पौत्र, ३ पौत्री ३ प्रपौत्री छोड़ गयी है। हम आश्रम परिवार की और से हार्दिक दुःख प्रकाश करते हैं। सब आश्रम वासि सर्व शक्तिमान्, सर्वनियन्ता प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि प्रभु उन पुनीत आत्मा को सद्गति देने के साथ साथ शोक संतप्त परिवार को धैर्य प्रदान करें।

आप क्या जानते हैं ?

गोपालदेव शास्त्री

१. हमारा दिल एक मिनट में ७२ बार धड़कता है।
२. जिराफ जानवर गूङ्गा होता है।
३. विश्व में सबसे अधिक पागल स्विजरलेन्ड में पाये जाते हैं।
४. रविवार की छुट्टी सन् १८४३ में शुरु हुई।
५. संसार की सबसे बड़ी पुस्तक एक बाईबल है जिसका वजन ९ मन हैं।

दानी महानुभावों से

महाशय !

गुरुकुल वेदव्यास का मासिक व्यय ५०००) रू० से ज़्यादा होता है। सारा व्यय दानदाताओं के दान से ही सम्पन्न होता हैं। अतः सभी दानी महानुभावों से निवेदन है कि वो लोग इस गुरुकुल रूपि बृक्ष को अपने दान रूपि जल से सदैव सिञ्चन करते रहें, जिससे यह फ़लता पूलता रहेगा इससे आप लोग पूण्य के भागी होंगे।

जमशेदपुर से प्राप्त दान

गुरुकुल वेदव्यास को जमशेदपुर के निम्नलिखित महानुभावों से वार्षिक दान प्राप्त हुआ। यह दान उन्होने संस्थापक पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी के करकमलों में ही भेंट किया।

३६०·०० शारदना एण्डकम्पनी विष्णुपुर से वार्षिक १ ब्रह्मचारी का छात्रवृत्ति

३६०-०० श्रीमती विमला देवी जी खुल्लर-लेकव्यु से ,,

३६०-०० श्रीमती कलावती देवी जी खुल्लर -बैंकएरिया विष्णुपुर से ,,

३६०-०० श्रीमान् प्रेमसागर जी सहगल के. रोड़ विष्णुपुर से ,,

१०१-०० श्रीमती एस् चन्दर, सर्किट हाऊस एरिया से उनके स्व पतिदेव जी के स्मृति में गुरुकुल को दान

५१-०० श्री पं० मंगतराम जी आर्यसमाज जमशेदपुर स्व० धर्मपत्नी की स्मृति में

२१-०० श्री डा० ए० आर० कुमुन्द जी ने अपने पौत्र के जन्म दिवस उपलक्ष्ये गुरुकुलाश्रम को दान

सूचना :— श्रीमती माता माया देवी जी- जुगसलाई ने अपने सतत प्रयत्नों द्वारा दानी महानुभावों से एकत्रित निम्न दान राशी गुरुकुल को प्रदान किया।
४- थान कपड़े, १- चद्दर, ५- वाल्टी (लोहे की)

आर्य जगत्

"वेद सप्ताह एवं श्रावणी उपाकर्म"

गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास, गुरुकुल आमसेना, खरियार-रोड़, आर्य कन्या गुरुकुल तनरड़ा, तपोवन शान्ति आश्रम केलेमाहा (फूलवाणी) गुरुकुल संस्कृत विद्यापीठ सुन्दरगढ़, गुरुकुल वेद विद्यालय दशरथपुर, वैदिक सेवाश्रम पिछावणियाँ, आर्यसमाज हीराकुद, आर्यसमाज राउरकेला, आर्यसमाज पोलसरा आदि उड़ीसा के विभिन्न शिक्षा तथा धार्मिक अनुष्ठानों में दैनिक यज्ञ, उपदेश, वेदकथा इत्यादि के चहल पहलों से वेद सप्ताह पालीत हुआ। (स्मरण रहे– उपरोक्त गुरुकुल आश्रम सभी पूज्य स्वामी जी के तपस्या एवं कठोर परिश्रम का फ़ल है– सम्पादक)

संस्कृत दिवस पालन

विगत २१-८-१९७५ को संस्कृत दिवस सब जगह पालन किया गया था। उड़ीसा स्थित गुरुकुलों में भी यह दिवस सूचारू रूप से पालन किया गया। गुरुकुल वेदव्यास आश्रम में प्रातः कालीन विशेष यज्ञ एवं मध्याह्न २ बजे एक साधारण सभा अनुष्ठित हुई थी। ज़िसमें श्री राधाकान्त पण्डा ज़ी सभापति, पूज्य स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ, कुलपति गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास मुख्य अतिथी श्री नरदेव ज़ी नैष्ठिक, श्री प्रसन्न कुमार जी पृष्ठि (अध्यापक, विज्ञान) वक्ता के रूप में भाग लिये थे।

विशिष्ट अतिथी

कृषि मन्त्री जी का गुरुकुल वैदिक आश्रम परिदर्शन।

विगत १४-८-१९७५ को उड़ीसा के कृषि मन्त्री श्रीयुत् भगीरथि जी गमाङ्ग तथा कृषि निर्देशक गुरुकुल परिदर्शन में आये थे। गुरुकुल की ओर से अतिथि महोदय के अभिनन्दनार्थ एक सभा

का आयोजन हुआ था । जिसमें स्थानीय विशिष्ट व्यक्ति तथा S. D, O. आदि सम्मानित सभ्यबृन्द सम्मिलित हुये थे ।

जिस सभा में मन्त्री महोदय को अभिनन्दन पत्र भेंट के साथ साथ ब्रह्मचारियों ने संस्कृत में संभाषण, अन्त्याक्षरी, भजन आदि पाठकिये तथा योगासन का सुन्दर प्रदर्शन किया, जिससे मन्त्री महोदय ने मुक्त कण्ठ से विद्यार्थियों को धन्यवाद के साथ आश्रम के पवित्र एवं शांत वातावरण को खूब सहारा ।

पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्दजी के परिश्रम तथातपस्या को सहारना करते हुये मन्त्री महोदय वनवासियों के इस पीछड़े इलाके में स्थापित गुरुकुल के उत्तरोत्तर उन्नती की कामना किये थे ।

गुरुदिवस

विगत ५- ९- १९७५ को भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति आदर्श शिक्षक (गुरु) स्व० श्री राधाकृष्णन्जी के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में गुरूकुल में गुरुदिवस खूब शानदार रूप से पालन किया गया था। इस में ब्रह्मचा री गण गुरुओं की अभ्यर्थना के लिये एक सभा का आयोजन किये थे। जिसमें सभापति कुलपति पूज्य स्वा० शिवानन्द जी तीर्थ थे। अन्य सभी अध्यापक (गुरु) महानुभाव उक्त सभा में सम्मिलित होकर गुरुशिष्य के परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिये स्व० राष्ट्रपति जी के पदक्षेप को सराहना की । तथा वर्त्तमान गूरु शिष्यों में बढ़ते हुये कटुता को रोकने के विभिन्न उदाहरणों द्वारा उपदेश दिये तथा सभा में उपस्थित छात्रवृन्द को आशीर्वाद दिये। सभा के पश्चात् ब्रह्मचारियों के द्वारा आयोजित एक अल्पाहार (पार्टी) में भी सभी गुरूवृन्द सम्मिलित हुये थे ।

—: ओ३म् :—

आर्यसमाज जमशेदपुर

ताशी रोड़, जमशेदपुर द्वारा

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह

यजुर्वेद पारायण यज्ञ सहित १० नवम्बर '७५ से १६ नवम्बर '७५ तक

आर्यसमाज़ के विशाल प्रांगण

में मनाया जायेगा जिसमें निम्नांकित आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वानों के पधारने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है :

१. स्वामी सत्य प्रकाशानन्द जी सरस्वती
२. पं० शांति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी
३. पं० रामनारायण जी शास्त्री
४. आचार्य रामानंद जी शास्त्री
५. पं० प्रियदर्शन जी
६. पं० ओम्प्रकाश जी भजनोपदेशक
७. पं० वीरेन्द्र जी आर्य भजनोपदेशक

अतः आपकी उपस्थिति सपरिवार एवं इष्टमित्रों से प्रार्थनीय है।

पूर्ण आशा है कि आप इस यज्ञ को सफल बनाने में तन, मन धन से सहयोग देकर कृतार्थ करेंगें।

कार्यक्रम की सूचना निश्चित तिथियों से पूर्व दे दी जाएगी।

एस० पी० अरोड़ा एवं एस० एल० कोछड़ — मेहर चंद
उप प्रधान — प्रधान

— ओ३म् :—

बाढ़ की प्रलयंकारी ताण्डवलीला से उड़ीसा में खण्ड प्रलय राहत कार्य के लिये

मार्मिक अपील

सभी मानव प्रेमी नर नारियों को यह जान कर दुःख होगा कि दैवी प्रकोप से प्रतिवर्ष पिछड़ा इलाका उड़ीसा प्रान्त इस वर्ष बाढ़ की भयंकर ताण्डव लीला से तहस नहस हो चुका है ।

प्रतिवर्ष तो यहाँ पर दुर्भिक्ष (अकाल) और बाढ़ होती रहती है । परन्तु प्रकृति ने इस वर्ष बीते हुये दीर्घ ५० वर्ष के इतिहास कों दुहराया है । अति बुजुर्गों से सुनने को मिलता है कि इस प्रकार बाढ़ ५० वर्ष पूर्व कभी हुआ ही नहीं था ।

इस वैज्ञानिक युग में प्रकृति इस प्रकार निरीहता पूर्वक कुचल डालेगी यह विश्वास कोई भी कर नहीं सकता था । दीर्घ ५ । ६ सालों से इस प्रान्त में अकाल तो पड़ता ही रहता था । परन्तु इस वर्ष ५ । ६ सालों का व्याज स्वरुप वारीस ने अपनी करतूत दिखाई । उस हृदय विदारक विभत्स दृश्य को यदि कोई व्यक्ति देखे तो उसकी आखें बन्द हो जायेंगी एवं रोंगटे खड़े हो जायंगे ।

सर्व हरा

उड़ीसा के लोग अपने धन सम्पत्ति के अलावा भाई बहन माता पिताओं से सदा के लिये बिछुड़ गये हैं । उस बाढ़ की प्रकोप अबतक कम नहीं हुआ है । लोग कई दिनों तक पेड़ एवं घर के छप्पर के उपर **भूख से तड़पते हुये** जीवन बचाये हुये हैं । फसल की दशा तो अवर्णनीय है ।

सहायता का यही समय है

इस समय में यदि त्रस्त मानव को उदारता के साथ धनि मानव की सहायता नहीं मिलेगी तो भारत में मानवता का लोप प्राय: हो जायेगा । अत: प्रत्येक भारतीय नर-नारी का कर्त्तव्य है कि वह इस विषम परिस्थिति में हमारी अपील पर ध्यान देकर बाढ़ पीड़ितों के लिये **मुक्तहस्त से शीघ्र मदद भेजें ।**

नहीं तो विधर्मि लोग जिस लगन से बाढ़ पीड़ितों के लिये पैसा (धन) बहा रहे हैं, उसके फ़ल स्वरुप आपके प्रिय भारतीय भाई-बहनों की तेजी से विधर्मि बनने की सम्भावना है ।

यदि आप हमें सुनेंगे नहीं !

तो नीरिह, असहाय और छट पटाते गरीब जनता उनकी शरण निश्चय ही जायेगी । अत: यदि आपको भारतीय धर्म, संस्कृति और मानवता के प्रति प्रेम है तो शीघ्राति शीघ्र

योग्य पात्र में दान के लिये

आज ही आप हमें हर प्रकार से सहायता भेजें ।

प्रत्येक दानी, धर्मप्रेमी, सज्जनों से निवेदन है कि बाढ़ पीड़ित बुबुक्षु जनता के लिये शीघ्र धन, अन्न, वस्त्र, (नये पुराने कपड़े) कि सहायता भेजें जिससे गुरुकुल वैदिक आश्रम के कर्मनिष्ठ ब्रह्मचारी स्वयं सेवक गण ठीक समय पर बाढ़ग्रस्त इलाकों में आपके भेजे दान का उचित वितरण कर सकें ।

मनिअर्डर इनसोर्ड, आदि निम्न पते पर भेज़ें ।

निवेदक

सत्यपाल जुनेजा
प्रधान
उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा

स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती
गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास
(पानपोस)

पो० वेदव्यास, राउरकेला- ४
ज़ि० सुन्दरगढ़ (उड़ीसा)

★ कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ★

वनवासी सांस्कृतिक समिति, वेदव्यासस्य,
मासिकं मुख-पत्रम्

वनवासी संदेश

संस्थापक :—स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

—: वेद कहता है :—

ओ३म् प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥

ऋग्वेद १० । १०३ । १३

हे आर्यवीरों ! देश और राष्ट्र की रक्षा हेतु तन्द्रा त्याग उठ कर अग्रगामी बनो । शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो । तुम्हारी भुजाएँ प्रचण्ड पराक्रम से भर उठें, जिस से तुम कभी जीते न जा सको ।

संपादक	सह- संपादक
पं० आत्मानन्द शास्त्री	पं० देशबन्धु विद्यावाचस्पति

● नीति वचन ●

१- न मद्यं पिबेत् ॥

● कभी भूल कर भी मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिये ।

२- पंचविंशति वर्षं यावत् क्रीड़ा विद्यां व्यसनात् कुर्यात् ॥

● मानव जीवन के आरम्भिक २५ वर्ष शरीर एवं मस्तिष्क के निर्माण के निमित्त व्यायाम एवं विद्योपार्जन में पूर्ण मनोयोग के साथ लगाने चाहिये ।

३- अत उत्तरमर्थार्जनम् ॥

● २५ वर्ष की आयु के उपरांत परिवार एवं राष्ट्र की उन्नति के हित अर्थ अर्थात् धनादि के उपार्जन में लगना चाहिये।

४- नष्टे न स्थातव्यम् ॥

● जो मानव आचार-विचार की दृष्टि से पतित हैं अर्थात् जिन्होंने अपनी मानवता को ही नष्ट कर दिया है, उनके साथ कभी सम्पर्क नहीं रखना चाहिये ।

५- अल्पहानिः सोढ़व्या ॥

● यदि राष्ट्र के लिये हानि सहन करना अनिवार्य ही हो जाय तो अपेक्षाकृत छोटी हानि सह लेनी चाहिये ।

●

वनवासी-सन्देश

उत्कल जनता संस्कृति रक्षा बद्धकटिस्तमः स्तोमहतिदेशः
गुरुकुल सुपानपोषादुदयति वनवासी संदेशः ॥
यो भ्रष्ट ख्रीष्टमत दीक्षित मज्ञलोकम्
संस्कृत्य दूरयति तद्धृदयांधकारम् ॥
श्री वेदव्यास सुगुरो कुल सन्निवेशः
सम्पूर्वादेरुदयते वनवासी सन्देशः ॥

वर्ष ११ अंक ८	अगस्त १९७७	वार्षिक मूल्य ५ रु एक प्रति ५० पैसे

वेदोपदेश

ओ३म् अयं कविरकविषु प्रचेता
मर्त्येष्वग्निरमृतो निधायि ।
स मानो अत्र जुहुरः सहस्व
सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥

ऋग्वेद ७।४।४।

अर्थ :- (अयं) यह (प्रचेताः अग्निः) चेतन अग्नि (अकवि षुकविः) इन अकवियों में कवि हो कर (मर्त्येषु अमृतः) इन मरने वालों में अमृत होकर (निधायि) निहित है रखा हुआ है। (सहस्वः) हे बल तेज शान्ति वाले (सः) वह तू (नः अत्र मा जुहुरः) हमें इस संसार में कभी विनष्ट मत कर, किन्तु हम (सदा) सर्वदा (त्वे) तुझ में (सेमनसः) अच्छे मन वाले, प्रसन्नता पाने वाले (स्याम) बने रहें ।

भावार्थ :- मनुष्य अपने को ज्ञानी समझता है, कवि समझता है, परन्तु इस विश्व में यही आती है कि जो व्यक्ति जितना अधिक अज्ञान में डूबा रहता है, वह अपने को उतना ही बड़ा ज्ञानी मानता है, और जिसे जितना ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वह उतना ही अपने को अज्ञानी मानने लगता है। जर्मनी के अपने समय के सब से बडे ज्ञानी ने अपने ज्ञान की प्रशंसा दूसरों के मुख से सुन कर कहा कि "मैं तो लहराते हुए इस ज्ञान के समुद्र के किनारे खड़ा हूँ और अभी तो किनारे खड़ा कंकर ही बटोर रहा हूँ।" उपनिषदों ने ज्ञान के विषय में "नेति नेति" इतना ही नही कह कर ज्ञान की अगाध होने की सूचना दी है और भर्तृहरि जी ने इसे इन शब्दों में कहा है कि जब मैं कुछ नहीं जानता था, तब अपने को सर्वज्ञ समझता था, जब मुझे कुछ ज्ञान हुआ तो यह भाव हुआ कि मुझे कुछ आता है, परन्तु ज्यों ज्यों ज्ञान बढ़ता गया, त्यों त्यों मुझे यह प्रतीत होने लगा कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ। वास्तव में विश्व में यदि कोई ज्ञानी है, सर्वज्ञ है तो वह भगवान् है और वह भगवान् हम अज्ञानियों में बसा हुआ है। हम अकवियों में वह कवि निरन्तर निवास करता है। वह कभी मरता नहीं। यह विशाल सूर्य समाप्त हो जाएगा। ऐसे करोड़ों सूर्य भी जिनके सामने बून्द के बराबर है, ऐसे ये आकाश में चमकने वाले अगस्त्य, ज्येष्ठा और परम ज्येष्ठा नक्षत्र नष्ट हो जायेंगे, ये नदियां, ये विशाल समुद्र सूख जायेंगे और भारत का महान प्रहरी यह हिमालय के कण कण में विलीन हो जायेगा। उस समय भी यह प्रभु अपनी कृपा दृष्टि की वर्षा करता हुआ हमें आनन्द प्रदान करेगा। हम उस से ही प्रार्थना करते हैं कि हे बल, तेज और शक्ति के निधान! हमें इस संसार में कभी नष्ट न कर। यह शरीर तो नष्ट होगा, परन्तु हमें अपने गुण दे, जिससे हम अमर बने रहें और सदा तुम्हारे निकट विद्यमान रहें। प्रभु से दूर हटना मृत्यु है, प्रभु के निकट आना जीवन। वह जीवन का स्रोत है, आनन्द का निधान है, अतः प्रभु से प्रार्थना है वह हमें अपने निकट रखें, हमें दूर न रखें।

स
म्पा
द
की
य

स्वागत स्वतन्त्रते !

प्रति वर्ष १५ अगस्त को देश में हर्षोल्लास मनाया जाता है। यह तिथि २००४ वि० तदनुसार सन १९४७ ई० से भारत में हर्ष का विषय बनी हुई है। परन्तु जिन्होंने सन् १९४७ की इस तिथि का स्वयंभुव हर्ष देखा है और तदन्तर होने वाले इस तिथि के समारोहों को वर्षानुवर्ष देखने और सुनने का प्रयास किया है, वे हमारे इस कथन की साक्षी भरेंगे कि समय व्यतीत होने के साथ-साथ इस अवसर पर होने वाले हर्षोल्लास गम्भीरता, निराशा और भय में विलीन होता जा रहा है।

तब से लेकर देश का बहुत विस्तार हुआ है। इसकी जन-संख्या में भी आशातीत वृद्धि हुई है। देश में भव्य भवन बहु संख्या में दृष्टि गोचर होते हैं, साथ ही देश भर में झोपडियों, खोखों और निवास विहीनों की संख्या में भी अपार वृद्धि हुई है। नगरों के सिनेमा घरों की संख्या और उनमें जाने वाले दर्शकों की संख्या जाननी सुगम नहीं रही। परन्तु इसके साथ ही नगरों में होने वाली चोरियो, डकैतियों, हत्यायों, अपहरणों और बलत्कारों की संख्या में भी कम वृद्धि नहीं हुई है। धनी-मानी लोगों के लिये होटलों में भोजन व्यवस्था पर प्रति व्यक्ति, प्रति समय चालीस-पचास रुपये का व्यय एक साधारण बात समझी जाने लगी है और ऐसे लोगो की संख्या भी कम नहीं हो रही है, जिनको घी, दूध, हरी शाक-भाजी के दर्शन किये वर्षों व्यतीत हो गये हैं। यह सत्य है कि विवाहोत्सवों पर व्यय होंने वाली धन-राशि बहुत बढ़ गयी है। परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि इन उत्सवों में होने वाले आनन्दोल्लास का अनुभव वही नहीं रहा, जो आज से चालीस-पचास वर्ष पूर्व पर वर-वधू सास श्वसुर, भाई-वधुओं अथवा मोहल्ले-टोले के रहने वालों में होता था।

धन-वैभव और निर्धनता, महल-अटारियों और झुग्गी-झोपडियों तथा होटलों के डिन्नर खाने वालों और सूखी चबाने वालों में ३० वर्ष पहले के अनुपात और वर्तमान अनुपात में अन्तर आया है और अनुपात का यह अन्तर ही १५ अगस्त के समारोहों को देखने वालों के दुःख में विलीन कर निराशा आशंका और भय के लक्षणों में परिवर्तित कर देता है।

देश-विभाजन से उत्पन्न समस्या आज ३० वर्ष वाद भी विकराल मुख फैलाये विद्यमान है। देश विभाजन का विजारोपण हुआ था सन् १९०६ में। इसकी सिंचाई हुई थी, सन् १९१६ एवं १९२० से २४ में। विभाजन रुपी पेड़ के कांटे निकलने लगे थे सन् १९३७ में और ये चुभने लगे थे सन्

१९४० से । सन् १९४७ में इन कांटों का चुभना असह्य हुआ तो हमने विभाजन स्वीकार कर लिया । परन्तु उन काटों को जला कर राख करना तो दूर, उनको हमने रुई में लपेट कर अपनी छाती से लगाये रखा है । उन काँटों का पालन-पोषण भी हमने यत्न से किया और अब वे काँटे पुनः वैसे ही चुभने लगे हैं, जैसे सन् १९४० में चुभने लगे थे । इस बार एक भय की स्थिति यह हो गई है कि उन काटों को अपने राज्य के संरक्षण के साथ-साथ विदेशों से भी पोषक सामग्री मिल रही है ।

भाषा की समस्या दिनानुदिन अधिकाधिक विकट होती जा रही है । स्वराज्य मिलते ही भाषा का प्रश्न सम्मुख आया । यह लगभग निश्चय ही था कि देश की रज्य भाषा शिक्षा का माध्यम और सम्पर्क भाषा हिन्दी होगी, परन्तु इस में इतनी विषमता उत्पन्न की गई कि देश में चौदह भाषायें स्वीकार हो गई । सब-की-सब अपने-अपने क्षेत्र में राज्य भाषा बन रही है । केन्द्र के साथ राज्य अपनी क्षेत्रीय भाषा में पत्र व्यवहार करेंगे, अथवा अंग्रेजी या हिन्दी में करेंगे विश्वविद्यालय क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा देंगे । प्रत्येक हिन्दी भाषी राज्य में अंग्रेजी माध्यम के विश्व विद्यालय भी होंगे । कुछ एक दक्षिणी राज्यों में भी एक आध हिन्दी माध्यम का विश्व विद्यालय होगा ।

इस विषय में भी विद्वानों ने सरकार को सचेत किया था कि भाषा के आधार पर राज्य नहीं बनने चाहिये । परंतु सरकार मानी नहीं और भाषा वार राज्य बना दिये हैं । यह फूट का बीज है । एक राज्य इस विषय में पहले ही बागी हो चुका है ।

देश की आर्थिक उन्नति भी हुई है, परंतु किस कीमत पर और उस उन्नति की दशा क्या है ?

इस समय भारत पर विदेशों का ५० अरब रुपये से ऊपर ऋण हो चुका है । इसका वार्षिक व्याज ३ अरब

लगभग बनता है। देश के भीतर भी सरकार ऋणि है। औद्योगिक उन्नति की दिशा ऐसी है कि हमारा बनाया हुआ सामान देश के अन्दर खप नहीं सकता। इसका कारण यह है कि जन-साधारण उसको खरीद नहीं सकता। विदेशों में भी हम बेच नहीं सकते। समाजवादी सरकार और समाज सदा बड़े-बड़े उद्योगधन्धे खोलती है। बड़े बड़े उद्योग-धन्धो में नौकरी करने वालों की संख्या अधिक हो जाती है। परिणाम यह हो जाता है कि पूर्ण देश में अधिकांश लोग नौकरी करने वाले हो जाते हैं। नौकरी करने वाले इस विचार से शूद्र हो जाते हैं कि वे अपन कर्मों के स्वयं उत्तरदायी नहीं रहते। जिस देश में ऐसे शूद्रों की संख्या बढ़ जाये, उस देश में :—

यद्राष्ट्रं शूद्र भूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम् ।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥

(मनु० ८-१२)

अर्थात् :— जिस राष्ट्र में शूद्र तथा नास्तिक अधिक हो जायें और जहां द्विज कम हो जायें, वह राष्ट्र दुर्भिक्ष एवं व्याधियो से पीडित होकर नाश को प्राप्त होता है।

आज ३० वर्ष के बाद राष्ट्र क्रांति के कगार पर खड़ा हुआ है। कांग्रेस सरकार के अधपतन के बाद जनता सरकार का प्रादूर्भाव हुआ है एवं जनता सरकार ने ग्राम्य शिल्प तथा कुटिर शिल्प के प्रसार के लिये जोर दे रहा है साथ ही आदिवासी-हरिजनों के उन्नति के लिये योजना बना रहा है यह स्वागत योग्य है।

हम आशा करते हैं कि जनता सरकार देश के उन्नति के लिये नगरों की अपेक्षा गांव की और ध्यान देगी। कृषि, क्षुद्र शिल्प तथा सिंचाइ इत्यादि कार्य की और विशेष योजना बना कर कार्य करेगा। भारत के गरीब जनता उत्सुकता से सरकार की और निगाहे लगाये हुए है। देखे आगे क्या होता है। यही आज के स्वतन्त्रता दिवस कह रही हे।

आयुर्वेद-विश्लेषण

(छः रसों के लक्षण, गुण, पदार्थ)

● धर्मदेव मनीषी
"आयुर्वेदान्वेषक"

छः रसों के लक्षण :—

मधुर रस :— जो रस तुष्टि को उत्पन्न करता है, सुख उत्पन्न करता है, तृप्ति करता है, प्राणों को धारण करता है, मुख को मल से लिप्त करता है और कफ को बढ़ाता है, वह मधुर रस है।

अम्ल रस :— जो रस दाँतों में हर्ष उत्पन्न करता है, मुख से लाला का स्राव उत्पन्न करता है, भोजन में श्रद्धा को उत्पन्न करता है, वह अम्ल रस है।

लवण रस :— जो भोजन में रूचि उत्पन्न करता है, कफ का प्रसेक तथा मृदुता का उत्पादक है, वह लवण रस है।

कटु रस :– जो रस जीभ के अगले भाग को पीड़ित करता है, नासिका से स्राव बहाता है, वह कटु रस है।

तिक्त रस : – जो गले में खिंचाव (चूसने की तरह पीड़ा) उत्पन्न करता है, वह तिक्त रस है।

कषाय रस :— जो रस मुख को शुष्क कर देता है, जिह्वा को जड़ बना देता है, गले को रोक देता है, हृदय (आमाशय) को खींचता है और पीड़ित करता है।

छः रसों के गुण :—

मधुर रस के गुण :— रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि मज्जा, ओज, शुक्र, स्तन्य, (दूध स्त्रियों में) बढाने वाला, आँखों वाला तथा शरीर के वर्ण के लिये हितकारी है, बलकारक जोड़ने वाला, रक्त-रस को स्वच्छ करने वाला बालक, वृद्ध और क्षत क्षीण रोगी के लिये हितकारी, भौंरे और चिऊँटियों के लिये प्रियतर, तृष्णा मूर्छा दाह को शांत करने वाला, मन समेत पांचों ज्ञानेन्द्रियों को प्रसन्न करने वाला और कृमियों तथा कफ को उत्पन्न करता है। यह मधुर रस उपर्युक्त गुणों वाला होने पर भी अकेला ह' अधिक मात्रा में सेवन करने से— कास, श्वास, अलसक, वमन, मुख की मधुरता, स्वरभङ्ग, कृमि, गलगण्ड रोगों को एवं अर्बुद, श्लीपद, बस्ती-गुदा में चिपा चिपापन, नेत्र दुखना आदि रोगों को उत्पन्न करता है।

अम्ल रस के गुण :— आहार का पाचन करने वाला, दोष एवं आम का पाचन करने वाला, अग्नि दीपक, वायु को शान्त करने वाला, वायु मल मूत्र का अनुलोमक, कोष्ठ में विदाह करने वाला, बाह्य उपचार में शीतल, क्लेदक प्रायः हृदय के लिये हित होता है। इन गुणों वाला होने पर भी अकेला अम्ल रस ही अधिक सेवन करने से— दान्तों में जडता, आँखों का संकोच, रोम हर्ष, कफ का पतलापन और शरीर की शिथिलता को उत्पन्न करता है। चोट युक्त, जला हुआ ड़ँसा हुआ, भग्न, शूना, रुग्ण, स्खलित, मूत्र विष से दूषित को, विसर्प, छिन्न, भिन्न विद्ध-उत्पिष्ट आदि व्रणों को आग्नेय स्वभाव होने से पका देता है, गला छाती और हृदय को जलाता है।

लवण रस के गुण :— वमन-विरेचन द्वारा संशोधक, अन्न का पाचक, रस एवं मल का विश्लेषक, आहार का क्लेदक तथा शिथिलता कारक, उष्ण, सब रसों से विपरीत, विशोधक शरीर के सब अवयवो को कोमल करता है। इन गुणों वाला होने पर भी अकेला लवण रस ही अधिक मात्रा में सेवन करने से—शरीर में कण्डू, कोठ, शोफ,

विवर्णता, [illegible] इन्द्रियों नेत्रादि का उपताप (अपने कर्मों की हानि अर्थात् शक्तिनाश), मुख आँख का पाक, रक्तपित्त, अम्लोद्गार को उत्पन्न करता है।

कटु रस के गुण :— अग्निदीपक, आहार का पाचक, रोचक, शोधक, स्थूलता आलस्य कफ-कृमि-विष कुष्ठ कण्डू को शांत करने वाला, सन्धि-बन्धों का विच्छेदक, अनुत्साह उत्पन्न करने वाला, दूध शुक्र एवं मेंद को नष्ट करने वाला है। इन गुणों वाला होने पर भी अकेला कटु रस अधिक मात्रा में सेवन करने से – भ्रम, मद, गला-तालु-ओठ की शुष्कता गात्र संताप, बल का ह्रास, कम्प-तोद भेद उत्पन्न करता है, हाथ-पाँव पार्श्व-पीठ आदि अवयवों में वात जन्य शूलों को उत्पन्न करता है।

तिक्त रस के गुण :— कफ का छेदक, रोचक (स्वयं रुचिकर न होकर भी दूसरों में रुचि उत्पन्न करने वाला) कण्डू -कोठ प्यास-मूर्च्छा-ज्वर को शांत करने वाला, दूध का शोधक, मल-मूत्र आर्द्रता मेद-वसा-पूय को सुखाने वाला भी यह रस अकेला अधिक मात्रा में सेवन करने से -शरीर-मन्या (ग्रीवा की दो शिरायें) का स्तम्भ, आक्षेप, अर्दित, शिरःशूल, भ्रम, तोद भेद, छेद (विचित्र प्रकार की पीड़ा) मुख की विरसता को उत्पन्न करता है।

कषाय रस के गुण :— संग्राही, व्रणरोपक, स्तम्भक, व्रण-शोधक, लेखक, शोषक, पीडक, क्लेद (आर्द्रता) को सुखाने वाला है। यही रस इन गुणों के होने पर भी अकेला अधिक मात्रा में सेवन करने पर—हृदय की पीड़ा, मुख की शुष्कता, उदर में आध्मान, वाणी की जड़ता, मन्या स्तम्भ गात्रों में स्फुरण, चमुचुमायन आकुञ्चन आक्षेप आदि उत्पन्न करता है। (वायु के विकार उत्पन्न करता है)।

छः रसों के पदार्थ :—

मधुर रस के पदार्थ :— दूध, घी, शालि, शाठी जौं, गेहूँ, सिंघाड़ा, कसेरु, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, तुम्बी, तरबूज, निर्मली का बीज, पियाल, कमलगट्टा, गम्भारी, महुवा, मुनक्का, खजूर,

खिरनी, ताड़, नारियल, गन्ना और गन्ने के रस से बनी हुई वस्तुयें, खरेटी, अतिबला, बिदारीकन्द, गोखरु, तुरन्त प्रसूता गाय का सात दिन तक अशुद्ध दूध अर्थात् खीस, मधूलिका, पेठा आदि संक्षेप में मधुर वर्ग हैं।

अम्ल रस के पदार्थ :- अनार, आँवला, बिजौरा, आमड़ा कैथ, करौंदा, वृक्ष का बेर, झाड़ी का बेर, सूखा आँवला, इमली, कोशाम्र (आम का भेद) कमरख, पारावत, बड़हल, अम्लवेतस, निम्बु, दही, छाछ, काञ्जी, तुषोदक धान्याम्ल आदि संक्षेप में अम्लवर्ग हैं।

लवण रस के पदार्थ : - सैन्धव, सौवर्चल, विड़, पाम्य रोमक, सामुद्रक पक्त्रिम (पाक द्वारा बनाया), यवक्षार, ऊपर-लवण, सज्जीक्षार आदि संक्षेप में लवण वर्ग हैं।

कटु रस के पदार्थ :— पिप्पल्यादि, सुरसादिगण, सहजन, मूली, लहसुन, सुमुख (तुलसी भेद), कपूर, कूठ, देवदारु, मेथी, बावची बीज, चण्डा, गुग्गुल, नागरमोथा पीलु आदि संक्षेप में कटु वर्ग हैं।

तिक्त रस के पदार्थ :— मण्डूकपर्णी, हल्दी, दारुहल्दी, इन्द्रजौ, सतवन, छोटी-बड़ी कटेरी, शङ्खिनी, द्रवन्ती, निशोथ, तुरई, करेला, बैंगन, करीर, कनेर, शंखपुष्पी, अपामार्ग, पुनर्नवा, बिच्छूटी, मालाङ्गनी आदि द्रव्य संक्षेप में तिक्त वर्ग हैं।

कषाय रस के पदार्थ : - न्यग्रोधादि, त्रिफला, जामुन, आम मौलसरी, तिन्दुक, इन सब वृक्षों के फल, निर्मली, कच-नार, जीवन्ती, बथुआ, पालक, मूंग आदि दालें- संक्षेप में कषाय वर्ग हैं।

"तत्र मधुराम्ललवणा वातघ्नना:; मधुर तिक्त कषायाः पित्त्घ्नना:, कटुतिक्तकषायाः श्लेष्मघ्नना:,

(सुश्रुत सूत्रस्थान अ० ४२। ४)

अर्थ :— इनमें मधुर अम्ल और लवण वायु का मधुर तिक्त और कषाय पित्त का, कटु तिक्त और कषाय कफ का नाश करते हैं।

क्रमशः

श्रावणी का पावन पर्व

● पं० देशबन्धु विद्यावाचस्पति

संसार के सभी मनुष्य समूह, संप्रदायों जातियो और राष्ट्रों में विभिन्न समय विभिन्न प्रकार आनन्दोंत्सव के लिये अनेक प्रकार पर्वादि का सृष्टि हुआ है। किंतु जगत की आदि गुरु और संसार के सब से प्रथम सभ्यता तथा विज्ञान का प्रचार करने वाली आर्यजाति परमपिता परमात्मा के अमर सन्तान आर्य जाति वैज्ञानिक ढ़ग से अपना प्रत्येक कार्य संपादन करता है। अतः वे शारीरिक, सामाजिक, ऐतिहासिक तथा राजनैतिक रूप से पर्वों (त्यौहारों) को पालन करता है। पर्वों का मूल प्राकृतिक प्रवाह से नित्य घटना होती है और किन्ही का आधार कोई ऐतिहासिक आधार बन जाती है। कुछ पर्व ऐसे भी होते हैं कि जिन में दोनों घटनाओं का संमिश्रण हो जाता है। पर्व ज्ञान, कर्म उपासना और विज्ञान के साधन होते है। इन में श्रावणी पर्व नित्य प्राकृतिक आधार रखता है।

—: मूल कारण :—

जब-जब सृष्टि उत्पति होता है, तब मानवों को परम कारुणिक परमपिता परमात्मा वेदों का ज्ञान देता है। उसी समय से शांत वातावरण में बैठ कर गांव-गांव में वर्षात् के समय ऋषि मुनियों के द्वारा वेद कथा श्रावणी पर्व के रूप में मनाया जाता रहा है और सृष्टि के अंतिम काल तक मनाया जाता रहेगा।

सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु,

(ऋ० ७।१०४।५)

अर्थ :— (यत्) जब और जो (सुवाचः) वेद ज्ञान प्रवक्ता ऋषि (अध्यप्सु) समस्त ज्ञान कर्म विषयक (वद्थन) उपदेश मानव जाति को देते हैं (तद्) तब और वह (सर्वम्) सम्पूर्ण (एषाम्) वेदार्थ प्राप्त इन मानवों के लिये (समृधा) अत्यन्त वृद्धि (इव) के समान (पर्व) महोत्सव हो जाता है ।

—: श्रावणी नाम :—

अथर्व वेद के १६ वें कांड के ७ वें सूक्त में नक्षत्रों की गणना की गई है । उन २८ नक्षत्र में एक ',श्रवण'' नक्षत्र भी है । अथर्व वेद १६ । ७ । ४ ॥ चान्द्रमास की पूर्णिमा में जो नक्षत्र पड़ता है, वह मास उसी नक्षत्र के नाम पर कहलाता है । अतः श्रवण नक्षत्र युक्त पूर्णिमा वाले मास का नाम श्रावण मास होता है ।

—: श्रवणा नाम :—

नक्षत्रों के नाम वेद में यौगिक रूप में दिये गए हैं । ऋषि दयानन्द ने उणादि कोष में श्रवण शब्द की व्युत्पत्ति यह की है —

"शृणोत्यनया सा श्रवणा नक्षत्रं वा"

जिस के द्वारा सुना जाय वह श्रवणा होती है अथवा नक्षत्र का नाम भी श्रवणा है ।

—: श्रावणी पर्व :—

श्रावण मास की पूर्णिमा अत्यन्त महत्व पूर्ण है । श्रावण मास वर्षा ऋतु का होता है । इस में शब्द बहुल्या होता है । वर्षा का शब्द होता रहता है । जंगल में अनेक जन्तु भांति-भांति के शब्द करते रहते हैं । दिन रात जंगल शब्दों से

भरे रहते हैं रात्रि में जंगल में जाकर यह अनुभव किया जा सकता है, गांव, नगर और जंगल में वर्षा ऋतु में सर्वत्र जल ही जल रहता है। मेण्ढकों की ध्वनि का तो ठिकाना ही क्या है? मानों प्रत्येक जीव जन्तु इस समय परम पिता परमात्मा का गुण गान कर रहे हैं। अतः श्रावण मास को शब्द मास कह दिया जाय तो कुछ भी अत्युक्ति नहीं।

जैसा वर्षा ऋतु में अनेक जीव-जन्तुओं की अमैथुनि सृष्टि होती है, ऐसी ही सृष्टि के आरम्भ में मानव की अमैथुनि सृष्टि भी वर्षा ऋतु- श्रावण मास में ही होती है। तब ही परम कारुणिक परम पिता परमात्मा वेदोपदेश भी देता है और वही उपदेश श्रुति परम्परा द्वारा पहिले पहिले इसी भांति चलता है। अतः इस मास के पर्व को "श्रावणी पर्व या श्रावणी उपाकर्म" कहा जाता है। इस पर्व में उद्देश्य वेदों की रक्षा करना है रक्षा शब्द की व्याख्या करते हुए महर्षि पतंजलि ने लिखा : - "रक्षार्थ वेदानामध्येयं व्याकरणम्"। वेदार्थ रक्षा के लिये व्याकरण को भी जानना आवश्यक है। इसी हेतु इस दिन वेदों का स्वाध्याय करना चाहिये। गुरुकुलों में वेदारम्भ संस्कार इसी दिन होता था। कहा भी है—

श्रवणेन स्वाध्यायानुपाकरोति आचार्योऽन्तेवासिनां योगमिच्छन् जपति ऋतं वदिष्यामि ब्रह्म वदिष्यामि। ओ३म् भूर्भुवः स्वरितितिः सावित्रींमधीते— वराह गृह्य सूत्र—

अर्थात्— श्रवण नक्षत्र को लक्ष्य करके आचार्य शिष्यों के सम्बन्ध को चाहता हुआ स्वाध्याय को वेद के पठन-पाठन से प्रारम्भ करता है। पुनः संकल्प करता है कि ऋत-ज्ञान का उपदेश करुंगा। सत्याचरण, सद्व्यवहार का उपदेश करुंगा एवं शिष्य भी व्रत ग्रहण करता है। ऋत-ज्ञान का ग्रहण करुंगा। यज्ञ-कर्म और उपासना का पाठ पढुंगा। गायत्री जप करुंगा। "श्रावण्यां पौर्णमास्या मासादस्यां वोपाकृत्य तेषां माघ्यां वोत्सृजेत्" – बौधायन स्मृति चन्द्रिका –

उपरोक्त मान्यता के कारण श्रावणी पर्व को "ब्राह्मणों का पर्व कहा जाता है अर्थात् ब्रह्म सम्बध को धारण करने वाला पर्व कहा जाता है और यह ठीक भी हैं। वेद का प्रचार-प्रसार तथा मनन करना ब्राह्मणों का धर्म है। ब्राह्मण लोग यजमानों के हाथों में "रक्षा सूत्र" धागा बान्धते हैं। इसका अभिप्राय मुख्य रुप से यही है कि ब्राह्मण लोग अपने यजमानों को "रक्षा सूत्र"—यज्ञोपवीत- जनेऊ धारण करा के गायत्री के उपदेश पूर्वक वेद का अभ्यास कराते हैं। यज्ञ का अर्थ हुआ ईश्वरोपासना व विद्वानों का सत्संग, संगठन व दान समाज की धारणा इन्हीं तीन से तो होती है। दूसरे के विचारों का आदर करना, सौहार्दय और संगठन रखना तथा औरों के लिये त्याग की भावना रखना। इसीलिये तो कहा है कि "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है। यज्ञ के समीप ले जाने वाला यह अधिकार पट्ट, गाउन, चयराम या चिह्न है।

आइये हम विचार करें इस यज्ञोपवीत की बनाबट पर। धागे के यज्ञोपवीत के निर्माण के लिये प्रत्येक के लिये अपनी अंगुलियों के ९६ चौवों को नाप कर सूत लिया जाता है। ९६ का कुछ बिद्वान ८ प्रहर, ३ काल २ दिन रात ७ वार, १५ तिथियां, १२ मास, ६ ऋतु, २७ नक्षत्र, १२ राशियां इस काल गणना से जोड़ते हैं। दूसरे विद्वान इसे ४ वेद, ४ उपवेद, ६ वेदाङ्ग, ६ उपांग, ३ सूत्र, ९ आरण्यक, ६४ कलाओं से जोड़ते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने अंगुल से ९६ अंगुल का है। इस कल्पना के प्रत्यक्षी कारण हेतु हम इसे ९६ अंगुल का लेते हैं। अतः वेदादि शास्त्रों को पढ़ कर मानव जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रतिज्ञा करते हैं, साथ ही वेदों की रक्षा के लिये प्रतिज्ञा करते हुए अपने जीवन को वेदानुकुल बनाने के लिये ब्राह्मण लोग यजमानो को प्रतिज्ञा की गांठ बान्धते थे।

यज्ञोपवीत का सावित्री मन्त्र से विशेष सम्बन्ध है। इस मन्त्र में जिसे गायत्री वा गुरुमन्त्र भी कहते हैं, २४ अक्षर हैं और चारों वेदों में आया है, अतः २४×४=९६ से भी यज्ञोपवीत का संम्बन्ध है। यज्ञोपवीत के ३ धागे गायत्री के ३ पाद हैं। ब्रह्मग्रंथि प्रणव अर्थात् ओ३म् है और इसकी ग्रन्थियां महाव्याहृतियां हैं। इस मंत्र का ऋषि "विश्वामित्र" है, जिसका अर्थ सबका मित्र है। यज्ञोपवीत धारी भी 'धियो यो नः प्रचोदयात्" की प्रार्थना कर सब की बुद्धि को सन्मार्ग पर चलाने के लिये प्रार्थना कर सर्वमित्र बन जाता है। बिना भेद भाव के वसुधैव कुटुम्बकम् का पाठ पढ़ाता है। ऋषि दयानंद ने भी गायत्री द्वारा शिखा बन्धन करते हुऐ वेदों की पठन पाठन बतलाया है। निरुक्तकार महर्षि यास्क ने भी "गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मण नि० ७, १२" अर्थात् स्तुति करने वालों की रक्षा करने से गायत्री कहलाती है' गातारं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन गीयते (स्कन्द पुराण काशी खण्ड ४ पूर्वा अ० ९) अर्थात् गाने वालों की रक्षा करने से गायत्री कहलाती है। गायन् शिष्यान् यतस्त्रायेद् भार्यां प्राणांस्तथैवच (अग्निपुराण अ० २१ श्लोक १) अर्थात् गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, भाई-बहन सभी की रक्षा करने से गायत्री कहलाती है। इसलिये श्रावणी के पर्व पर गायत्री पूर्वक वेदाध्ययन का विधान है। इस प्रयोजन से श्रावणी पर्व के समय गुरु पूजा का भी विधान है। यह भी वेदरक्षा के महत्व को प्रकट करता है। यजमान और विद्यार्थी अपने आचार्यों और ब्राह्मणों का दान-धनादि से यथायोग्य सत्कार करते हैं। परन्तु यह उदात्त भावना लुप्त हो गई और बहन अपने भाइयों के करों में प्रचुर दक्षिणा दे इसलिये राखियां बांधती है और ब्राह्मण लोग भीं राखी के धागे लेकर शहरों में घूम घूम कर लोगों के हाथों में राखी बांध कर पैसे बटोरते हैं और राखी बांधते समय वे इस श्लोक को भी पढ़ते हैं :—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वा प्रतिबध्नामि; रक्षे मा चल मा चल ॥

श्लोक का अर्थ है कि महाबली दानवेन्द्र राजा बली को जिस से बन्धा गया था, उस से तुझे बान्धता हूँ, हे रक्षा तू मत चल तू मत चल ।

पौराणिक कथा है कि बलि बड़ा दानी था । विष्णु-भगवान ने वामन रुप धारण कर उस से तीन पैर पृथिवी मांगी । राजा बलि ने विष्णु से कहा कि तीन पैर पृथ्वी नाप लो, फिर तो विष्णु ने तीनो भुवन तीन पैरों में नाप लिया और राजा बलि को बांध कर पाताल में भेज दिया ।

कहावत भी प्रसिद्ध है कि :-

"बलि चाहा आकाश को, हरि पठावा पाताल" । विवाहादि के अवसर पर भी हाथों में रक्षा सूत्र बांधते हैं, उस समय भी वे इसी श्लोक को पड़ते हैं । (कभी इस विषय पर कभी आध्यात्मिक अर्थ "वनवासी-सन्देश" के प्रेमी पाठकों के समय रखेगें- लेखक)

—: ऋषि तर्पण :—

ऋषि तर्पण का अर्थ है ऋषियों को तृप्ति करना । ऋषियों को तृप्त किस प्रकार किया जाय एक विचारणीय प्रश्न है । प्राचीन ऋषि अब इस संसार में नहीं है, किंतु उनका दिया हुआ ज्ञान आज भी प्राणियों का परम उपकार कर रहा है, उस ज्ञान का फैलाना ही ऋषि तर्पण है । प्राचीन काल में ऋषि-मुनि आश्रमो में निवास करते थे, गृहस्थ लोग अपने बच्चों को लेकर उनके पास पहुंच कर निवेदन करते थे, कि महाराज हमारे पुत्रों को शिष्यत्वेन स्वीकार कर इन्हें शिक्षा दीजिये । ऋषि-मुनि उन नवीन छात्रों का उपनयन कर उनका वेदारम्भ संस्कार करते थे और उन छात्रों को समस्त विद्या देकर ऋषि ऋण से मुक्त हो जाते थे और यह ऋण छात्रों के कन्धो पर यज्ञोपवीत के रुप में रखकर उन से कहते थे कि पुत्रों ! इन तीनों ऋणों को चुका कर मानव जन्म का फल प्राप्त करना । कन्धे पर पडे यज्ञोपवीत के ३ धागे में हमें

देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण के भार सदा स्मरण करते हैं। इन तीनों ऋणों से उऋण होने के लिये यज्ञोपवीत धारी ईश्वरोपासना और व्रत कराता है और भविष्य के लिये संतति का निर्माण कर अच्छे नागरिक बनाता है और माता पिता की सेवा करता है। कन्धे के भार का वहन कमर कस कर हृदय से करता है। यज्ञोपवीत केलिये ३ धागे ब्रह्मचर्य गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम में धारण कर वेदों की रक्षा के लिये उत्तरोत्तर संन्यास आश्रम में पहुंच जाता है। "संन्यसेत् कर्माणि वेदमेन्न संन्यसेत्" अर्थात् संन्यासी सब कर्मों का त्याग कर दे किन्तु केवल वेद का त्याग न करें अर्थात् वेद सम्बन्धी स्वाध्याय का त्याग कभी न करें।

इस कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में स्वाध्याय को भी सर्वोपरी स्थान प्राप्त था। इसका एक मात्र कारण ही था कि मानव अन्न के द्वारा शारीरिक उन्नति तो कर सकता है किन्तु अपने मानसिक स्तर को उन्नत नहीं कर सकता है। इस मानसिक स्तर की उन्नति के लिये स्वाध्याय ही सर्व श्रेष्ठ साधन था और है। केवल शारीरिक उन्नति से सच्चे अर्थों में मानव नहीं बन पाता है। वह मानव तभी बन पायेगा कि जब उसका शारीरिक उत्थान के साथ ही मानसिक और आत्मिक उत्थान भी हो। स्वाध्याय की इस शतत शीलता के परिणाम स्वरुप मानव का मानस दर्पण इतना निर्मल और परदर्शी बन जाता है कि वह उस में पर-ब्रह्म परमात्मा का भी साक्षात्कार कर लिया करता है। स्वाध्याय की इस परम्परा से मानव "ऋषि" पद को भी प्राप्त कर लेता है क्योंकि स्वाध्याय के द्वारा वह मन्त्रों के विषयों का सक्षात्कार करने में भी समर्थ हो जाता है। मन्त्र द्रष्टा को ही ऋषि कहा गया है। जो वस्तु जिसको प्रिय हुआ करती है, उसी वस्तु के द्वारा उसकी अर्चना किया जाना सर्वश्रेष्ठ है। ऋषियों का स्वाध्याय के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। वे स्वाध्याय द्वारा ही "ऋषि" संज्ञा को प्राप्त होते हैं, अतः

उसको स्वाध्याय के द्वारा ऋषियों को भी तृप्त किया जाता है। इसी आधार पर इस पर्व को "ऋषि तर्पण" के नाम से कहा जाता है।

वेद-रक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में श्री ए० ए० मैकड़नल ने लिखा है "वेद अब भी उसी भांति कण्ठस्थ किये जाते हैं, जैसा कि सिकन्दर के आक्रमण से बहुत पहले किये जाते थे। और यदि उनकी प्रत्येक हस्त-लिखित (पाण्डुलिपि) अथवा मुद्रित प्रति विनष्ट हो जाय, तो उन धार्मिक आचार्यों के आधारों द्वारा पुनरपि उनका संकलन किया जा सकता है।" परम्परा गत कण्ठस्थ करते चले आने वाले निस्वार्थ वेद-पाठियों की कितनी विलक्षण देन है, उदार कृति है।

लबी नामी विदेशी अरबी विद्वान् ने वेद के सम्बन्ध में लिखा :—

अयि भाग्य शालिनी भारत भूमिः तू श्लाघा योग्य है, क्योंकि परमात्मा ने अपना सत्य ज्ञान तुझ में ही प्रकट किया।

महान् प्रभु के महत्त ज्ञान वेद की महत्ता मन-मस्तिष्क पर अंकित करने के लिये महान् दयानन्द ने श्रावणी उपाकर्म के महान् वेदाध्ययन पर्व पर महान् आर्य जाति का ध्यान दिलाते हुए आर्य समाज के ३ रा नियम में उल्लेख किया है कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। आओ सब मिल कर इसे श्रद्धा पूर्वक मनायें। इसी में हमारा कल्याण निहित है।

निबन्ध प्रतियोगिता

आर्य समाज, कलकत्ता, १९, विधान सरणी, कलकत्ता,-६

आर्य समाज कलकत्ता ने "भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्य समाज कीं देन" विषय पर एक निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया है ।

पुरस्कार की राशि :- प्रथम ११००)रु०, द्वितीय ७००)रु०, तृतीय ५००)रु० निबन्ध प्राप्ति की अंतिम तिथि - १५ सितम्बर १९७७ ई० ।

नियम-उपनियम

(१) निबन्ध हिन्दी अथवा अंग्रेजी भाषा में होना चाहिये ।
(२) अधिकतम शब्द संख्या ३००० हो सकता है ।
(३) लेख की मौलिकता का उत्तरदायित्व प्रेषक का होगा ।
(४) लेख दो प्रतियों में फुलस्केप पेपर के एक ही तरफ यथा-सम्भव टाइप किया हुआ या सुस्पष्ट शब्दों में लिखित भेजें ।
(५) लेख में कहीं भी लेखक का नाम, पता या हस्ताक्षर अंकित न हो । लेखक का नाम, पुरा पत्ता एवं हस्ताक्षर एक अलग स्लिप में लेख के साथ संलग्न होना चाहिये ।
(६) लेख के प्राप्त न होने अथवा क्षत-विक्षत अवस्था में पहुँचने पर आर्यसमाज उत्तरदायी नहीं होगा !
(७) विजेताओं का निर्णय आयोजकों द्वारा गठित निर्णायक मण्डल द्वारा होगा तथा निर्णायक मण्डल का निर्णय सर्व-मान्य होगा ।
(८) प्राप्त लेख वापस नहीं किया जायेंगे तथा समाज को उन्हें कहीं भी प्रकाशित करने का अधिकार होगा ।

(९) आयोजक समाज के अधिकारीगण एवं निर्णायक मण्डल के सदस्य इस प्रतियोगिता में भाग न ले सकेंगे ।

(१०) पुरस्कृत व्यक्ति को डाक द्वारा सूचित कर दिया जायेगा ।

(११) निबन्ध इसी आधार पर स्वीकृत किये जाएँगे कि लेखक को सभी नियम उपनियम मान्य है ।

कृपया अपना निबन्ध निम्न पते पर भेजें :—

मंत्री :- आर्य समाज कलकत्ता, १९, विधान सरणी
कलकत्ता-६

आर्य जगत्

शोक संवेदना

यह पढ़ कर बड़ी वेदना है कि आर्प गुरुकुल यज्ञतीर्थ एटा के संस्थापक, आर्ष पाठविधि के समर्थक, अनन्य ऋषिभक्त स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी का शरीर पात हो गया है। स्वामी जी के निधन से आर्य समाज की अपूरणीय क्षति हुई है ।

स्वामीजी एक निष्ठावान् संन्यासी थे तथा भारतीय दर्शन शास्त्र के प्रमुख व्याख्याता, यज्ञों के प्रति उनकी विशेष अभिरुचि रहती थी और सुचारुता के साथ सम्पन्न कराते थे ।

जब तक एटा गुरुकुल का भव्य वैभव विशाल यज्ञशाला रहेगा, स्वामीजी की शिष्य परम्परा कायम रहेगी, स्वामीजी यशः शरीर से अमर रहेंगे ।

स्वामीजी की वियोग जन्य वेदना से पीड़ित हमारी "वनवासी सन्देश" परिवार तथा गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास परिवार शोक संवेदना प्रकट करता है ।

"वनवासी सन्देश" तथा गुरुकुल के सभी सदस्य प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि दिवंगत आत्मा को शांति तथा गुरुकुल एटा के बटुको तथा अधिकारी वर्ग एवं कर्मचारियों को धैर्य प्रदान करें ।

★ गुरुकुल भूमि में स्वतन्त्रता दिवस पालन ★

१५ अगस्त १६७७ को गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास में ब्रह्मचारी, कर्मचारी तथा अध्यापकों ने स्वतन्त्रता दिवस यथा-विधि उत्साह पूर्वक मनाया गया । अपराह्न को पं देशबन्धु विद्यावाचस्पति जी के अध्यक्षता में एक सभा हुआ । जिस में मुख्यवक्ता के रुप में श्री धनेश्वर बेहेरा, श्री वैष्णव चरण जेना तथा अन्यान्य व्यक्तियों ने भाग लिये । अन्त में अध्य-क्षीय भाषण के वाद सभा समाप्त हुई । ●

सूचना

बीकानेर २६ अगस्त, नगर आर्य समाज का पाँच दिव-सीय वार्षिकोत्सव अक्तूबर ७७ के पहले सप्ताह में मनाया जाना निश्चित हुआ है, इसके लिये आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री, बरेली की श्रीमती सावित्री देवी आचार्या, अजमेर से कविरत्न श्री पन्नलाल पीयूष और आकाश-वाणी संगीतज्ञ श्री ओमप्रकाश अंबाली से तथा अन्य महानुभावों को आमन्त्रित किया गया है ।

समाज के उप प्रधान श्री यशपाल की धर्मपत्नी के ८ अगस्त को स्वर्गस्थ हो जाने के कारण तैयारी में व्यवधान आ पड़ा पर अब समस्त कार्यकर्त्ता गण धन संग्रह आदि में जोर सोर के साथ जुट गये है, उत्सव का स्थान व दिवस की घोषणा निकट भविष्य में ही कर दी जायगी ।

आर्य समाज

महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर- ३३४००१

वनवासी-सन्देश-ग्राहकों से नम्र निवेदन

वनवासी क्षेत्रों में हिंदू धर्म (आर्य) के रक्षा, तथा अराष्ट्रिय प्रचार निरोध कार्य को रोकने के लिये आपका यह "वनवासी-संदेश" सतत प्रयत्न शील है। अतः सभी पाठकों से नम्र निवेदन है कि वार्षिक रु ५-०० (पांच रुपया) देकर इस पत्रिका को सक्रिय करने की कृपा करे।

सम्पादक—

शुभ
कामनाओं के साथ

रिलायन्स टैक्सटाईल इंडस्ट्री लिमिटेड

अहमदाबाद - बम्बई :

विमलरेन्ज :

सुटिंग्स, सर्टिंग्स, साड़ी और

ड्रेस मटिरियल्स

BANAWASI SANDESH AUGUST 1977 Regd. No. 618

प्रकाशक— स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती द्वारा शान्ति आश्रम प्रेस, गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास, राउरकेला - ४ में मुद्रित ॥